MLAKAI
CHAND
RSVL
38856
38856

॥ श्रीः ॥

38856

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

११२

श्रीमन्नीलकण्ठदीक्षितविरचितः

नीलकण्ठविजयः

(चम्पूकाव्यम्)

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतः

व्याख्याकारः-

आचार्य रामचन्द्र मिश्रः

पाटलिपुत्रस्थराजकीयसंस्कृतकालेजप्राध्यापकः

015.3K37.1
N64;1
38856

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

॥ श्रीः ॥

38856

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

38856

११२

श्रीमन्नीलकण्ठदीक्षितविरचितः

नीलकण्ठविजयः

(चम्पूकाव्यम्)

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतः

व्याख्याकार :-

आचार्य रामचन्द्र मिश्रः

पाटलिपुत्रस्थराजकीयसंस्कृतकालेजप्राध्यापकः

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२१
मूल्य : ४-००

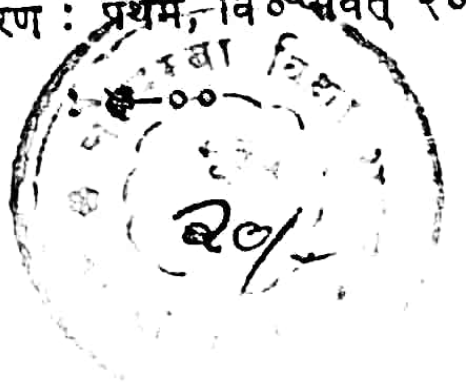

015.71K37.1
N71

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1 (India)
1964
Phone : 3076

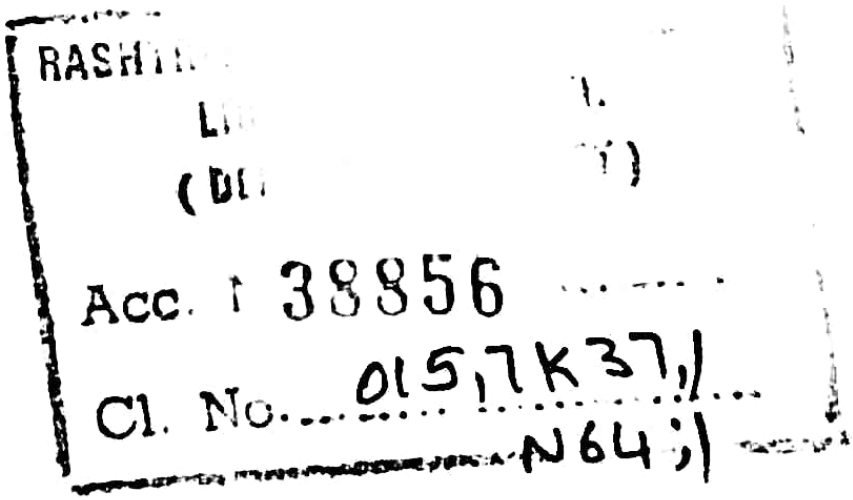

38856

THE
VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA
112

THE

NĪLAKANTHAVIJAYA

(CHAMPŪKĀVYAM)

OF

NĪLAKAṆṬHADĪKṢITA

EDITED WITH 'PRAKĀŚA' HINDĪ COMMENTARY

BY

ĀCHĀRYA RĀMCHANDRA MIS'RA
(Professor, Government Sanskrit College, Patna.)

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Post Box 8, VARANASI-1 (India) Phone : 3076
1964

Also can be had from

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Antiquarian Book-Sellers & Publishers

POST BOX 8. VARANASI-1 (India) PHONE : 3145

RASHTRIYA SANSKRIT VIDYAPEETHA
LIBRARY, TIRUPATI.
(DEEMED UNIVERSITY)
Acc No. 38856
Cl. No.

प्रस्तावना

यह सृष्टि कब प्रारम्भ हुई इस विषय में कितना भी मतभेद हो परन्तु जब निर्णय होगा तब समय का मापदण्ड लक्षाब्द में ही होगा। सृष्टि के आदि में ही मानवसृष्टि इस रूप में हुई होगी इस पर भी आपत्तियाँ हो सकती हैं, फिर भी जब मानवसृष्टि कुछ बौद्धिक प्राणी के रूप में पहुँची होगी तभी सृष्टि का याथार्थ्य सिद्ध हुआ होगा।

इसका कारण यह है कि मानव ही ऐसा जीव है जो अपनी संवेदना को दूसरों तक पहुँचाना चाहता है, अपनी अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाकर उन्हें लाभान्वित करना चाहता है। इसी तरह के प्रयासों में से एक प्रयास का फल काव्य है। मनुष्य का यह प्रयास नाना प्रकार का तथा नाना प्रकार की भाषाओं द्वारा हुआ। भाषा चाहे जो हो, सभी जगह प्रेरणा एक ही तरह की रही होगी, इस बात को ध्यान में रखकर ही आचार्यों ने कहा है—

"उक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवतु सा भवतु"

काव्य को, चाहे वह किसी भाषा का क्यों न हो, अपने प्रयोजन के विषय में कुछ प्रमाण देना है। इस अंश पर विचार करते समय दो शाखाओं पर ध्यान देना होगा। एक यह कि काव्य-प्रयोजन से काव्य-निर्माण का प्रयोजन क्या है यह विचारणीय है, और दूसरी बात यह कि काव्यज्ञान का प्रयोजन क्या है।

काव्य-प्रयोजन

काव्य-प्रयोजन बताते हुए आचार्य मम्मट ने कहा है—'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेश-

युजे' ॥ अर्थात् काव्य बनाने से तथा काव्य जानने से यश—कीर्त्ति प्राप्त होती है, अर्थ (धन) मिलता है, व्यवहार (लोकाचार) का ज्ञान होता है, शिवेतर (अकल्याण) की क्षति (विनाश) होती है, तत्काल में, काव्य-निर्माणकाल में और काव्यपरिशीलनकाल में एक विलक्षण प्रकार की आनन्दानुभूति होती है, और कान्तासम्मितरूप में अतिहृदयङ्गम (मनोभिलषित, नहीं टालने योग्य अनुरोध के रूप में) उपदेश प्राप्त होता है। सभी प्रयोजनों के उदाहरण भी काव्यप्रकाशकार ने दिये हैं। यहाँ उदाहरणों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस विषय की वास्तविकता आत्मा के स्वतः प्रतीत होती है। इस तरह काव्य के प्रयोजन प्रसिद्ध हैं।

काव्यों में चम्पूकाव्य

काव्य सामान्यतः दो प्रकार के माने जाते हैं, दृश्य और श्रव्य। श्रव्य काव्य के भी दो भेद हैं, गद्यकाव्य और पद्यकाव्य। गद्यकाव्य का गौरव उसकी अर्थप्रधानता से है क्योंकि पद्यकाव्य कुछ अंशों में राग के द्वारा भी श्रोता को आकृष्ट कर सकता है परन्तु गद्यकाव्य को तो अपने अर्थगौरव से ही श्रोतृजन-समावर्जन करना पड़ता है। गद्यकाव्य का अर्थगौरव और पद्यकाव्य की अर्थगौरवोपबृंहित रागमयता एक जगह मिल जाने पर अधिक चमत्कार उत्पन्न कर सकेंगे। इसी बात को ध्यान में रखकर चम्पूकाव्य की उद्भावना की गई। चम्पूरामायणकार भोजदेव ने भी इस प्रसङ्ग में यही कहा है कि—

'गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्तिर्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्मादधातु कविमार्गजुषां सुखाय चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया ॥'

अर्थात्—"गद्यसंबन्ध से सुन्दर पद्यसूक्ति वैसे ही अधिक मनोहर होती है जैसे बाजे से युक्त गायन। इसी कारण कविता के प्रेमियों को आनन्दित करने के लिये मैं चम्पूनिर्माण का मार्ग अपना रहा हूँ"।

इससे यह सिद्ध होता है कि एकमात्र गद्य तथा पद्य के निर्माण से उतना आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता जितना कि उभय-सम्मिश्रण से। जैसे केवल बाजा सुनते रहिये तथा केवल मौखिक सङ्गीत सुनते रहिये तो उतना आनन्द नहीं आवेगा जितना कि तानपूरे की आवाज के साथ गाना सुनने में।

चम्पूकाव्य का लक्षण सबसे पहले दण्डी ने किया—'गद्यपद्यमयी वाणी चम्पूरित्यभिधीयते'। इसी लक्षण को पीछे के आचार्यों ने दुहराया। किसी ने वाणी की जगह काव्य कहा, कुछ मौलिक मतभेद नहीं हुआ। यद्यपि कथा तथा आख्यायिका में 'क्वचिदत्र ॥ भवेदार्या क्वचिद् वक्त्रा-वक्त्रके। आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम् ॥' इत्यादि लक्षणानुसार गद्य-पद्य का मिश्रण होता है फिर भी वहाँ प्राधान्य गद्य का ही होता है, पद्य तो रस्म भर अदा करने के लिये लिखे जाते हैं। चम्पू में पद्य और गद्य की मात्रा बराबर ही होती है। यद्यपि नापकर नहीं देखा जाता है फिर भी इस पर दृष्टि रखनी होती है कि किसी एक पक्ष का अधिक प्राबल्य तो नहीं होता जा रहा है। सामान्यतः कथानिर्वाह के लिये गद्य का प्रयोग किया जाता है और किसी वस्तु के वर्णन के लिये पद्य का, परन्तु इस नियम का भी उल्लङ्घन होता ही रहता है। वास्तविक बात यह है कि इस विषय में चम्पूकारों ने पूरी स्वतन्त्रता से काम लिया है। इतना ही नहीं, रीतिकारों ने भी दृढ़तापूर्वक कुछ मात्रा-तारतम्य निश्चित कर देने की दिशा में प्रयास नहीं किया है।

सौभाग्यवश चम्पूकाव्य का बीज उन जातकग्रन्थों में भी निहित मिलता है जो १०वीं शती से पहले लिखे गये। चम्पूकाव्य में कोई ऐसी विलक्षणता नहीं है जो केवल गद्य या पद्य में न हो सकती हो, उसकी विशेषता केवल मिश्रणकृत चमत्कार में है।

सबसे प्राचीन जो चम्पूग्रन्थ उपलब्ध होता है वह है त्रिविक्रमभट्टकृत 'नलचम्पू' या 'दमयन्तीचम्पू'। त्रिविक्रमभट्ट ने राष्ट्रकूटराजा राजा इन्द्र

तृतीय का नौसारी शिलालेख ९१५ ई० में लिखा था, इसीसे उनका समय निश्चित-सा है। जैनकवि सोमप्रभ का 'यशस्तिलकचम्पू' राष्ट्रकूटराजा कृष्ण के समय में ९५९ ई० में लिखा गया। यह दोनों चम्पूग्रन्थ ही आगे चलकर लिखे गये चम्पूग्रन्थों के लिये आदर्श बने। जैनपुराण 'उत्तरपुराण' के आधार पर बने 'जीवन्धरचम्पू' का समय निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसके रचयिता का नाम 'हरिश्चन्द्र' है। यह ११ लम्भकों का विशाल ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से चम्पूग्रन्थ इनके ही पदचिह्नों पर चलकर बनाये गये हैं। रामायण के आधार पर 'रामायणचम्पू' बना जो 'भोजराज' की कृति है। 'अनन्तभट्ट' ने 'भारतचम्पू' नामक विशाल ग्रन्थ की रचना की। 'भागवतचम्पू' नामक तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं जिनके रचयिताओं के नाम हैं—१ चिदम्बर, २ रामभद्र, ३ राजनाथ। रामायण तथा महाभारत के आधार पर कुछ और चम्पूग्रन्थ बने हैं पर उनकी प्रसिद्धि नहीं हो पाई है। पुराणों के आधार पर बने चम्पूग्रन्थों की संख्या भी कम नहीं है। 'नृसिंहचम्पू' नाम के २ चम्पूग्रन्थ मिलते हैं, उनमें एक के रचयिता का नाम है 'केशवभट्ट' और दूसरे का 'सङ्कर्षण'। इन दोनों में प्रह्लाद की कथा वर्णित हुई है।

इसके बाद प्रसिद्ध चम्पूकार 'शेष श्रीकृष्ण' हुए जिनकी कृति 'पारिजात-हरणचम्पू' नाम से प्रसिद्ध है। इनका समय १६वीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है। समुद्रमन्थन की कथा को आधार बनाकर नीलकण्ठ ने 'नीलकण्ठ-विजय' नामक चम्पू की रचना की जो १६३७ ई० में हुई। 'वरदाम्बिका-परिणय' चम्पू की रचना स्त्रीकवि 'तिरुमलाम्बा' द्वारा इसी समय में की गई थी। इसके बाद चम्पू की एकरसता—उसी प्रकार की पौराणिककथा-वर्णनपरता से असन्तुष्ट होकर 'समुद्रपुङ्गव दीक्षित' नामक कवि ने 'यात्रा-प्रबन्ध' नामक चम्पू की रचना की। यह रचना भी १७वीं शती के अन्तिम भाग की ही है। इसके बाद से कवियों ने इधर ध्यान दिया कि पौराणिक विषयातिरिक्त विषयों पर भी चम्पूकाव्य लिखे जायँ, तदनुसार वेङ्कटाध्वरी ने

'विश्वगुणादर्शचम्पू' की रचना की। इसमें विश्वावसु तथा कृशानु की व्योमयात्रा का वर्णन है जो काल्पनिक होने पर भी बहुत रमणीय है। इसकी देखा-देखी अन्नार्य ने 'तत्त्वगुणादर्श' चम्पू की रचना की।

इसी शैली को देखकर लोगों ने शास्त्रीयतत्त्वप्रतिपादनार्थ गद्य-पद्यमय कवित्वाभास को चम्पूकाव्य कहना प्रारम्भ कर दिया। जैसे—वेदान्ताचार्य-विजय, विद्वन्मोदतरङ्गिणी आदि। इस तरह के शास्त्रतत्त्वप्रतिपादक ग्रन्थों को काव्य न कहकर दर्शन कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

नीलकण्ठ दीक्षित का समय

सी. शङ्कररामशास्त्री ने नीलकण्ठदीक्षित का समय १७वीं शती माना है। एम्. कृष्णमाचारियर ने अपने ग्रन्थ History of clas ical sanskrit literature में लिखा है कि नीलकण्ठ दीक्षित ने अपने नीलकण्ठविजय नामक चम्पूग्रन्थ की रचना १६३७ ई० में की। इससे भी शङ्कररामशास्त्री के कथन का समर्थन होता है। इनके वंशानुक्रम से भी इनका यही समय मालूम पड़ता है। स्वयं नीलकण्ठ दीक्षित ने लिखा है कि १६३६ ई० में यह ग्रन्थ लिखा गया। देखिये—प्रथम आश्वास का दशम श्लोक।

नीलकण्ठ दीक्षित का परिचय

नीलकण्ठ दीक्षित के पिता का नाम नारायण एवं माता का नाम भूमिदेवी था। यह मदुरा के राजा तिरुमलनायक के अमात्य थे। इनके पितामह का नाम अच्चान् दीक्षित था जो अप्पय्य दीक्षित के भ्राता थे। नीलकण्ठ ने गोविन्द दीक्षित के पुत्र वेङ्कटेश्वरमखी के चरणों में शास्त्रीय शिक्षा पाई थी। ये श्रीकण्ठमत के परम प्रवीण ज्ञाता तथा कैयट की टीका (अप्राप्य) के प्रणेता कहे जाते हैं।

'कल्याणसौगन्धिक' एवं 'काव्यालोक' के प्रणेता नीलकण्ठ, नीलकण्ठविजय प्रणेता नीलकण्ठ से भिन्न थे।

नीलकण्ठ दीक्षित के ग्रन्थ

(१) नीलकण्ठविजयचम्पू—(प्रकृतग्रन्थ, प्रथम बार मद्रास से प्रकाशित) की
(२) शिवलीलार्णव—(२२ सर्गों का महाकाव्य, प्रकाशित)
(३) गङ्गावतरण—(आठ सर्गों का काव्य) काव्यमाला में मुद्रित
(४) कलिविडम्बन
(५) सभारञ्जन
(६) अन्यापदेशशतक
(७) शान्तिविलास
(८) वैराग्यशतक
(९) आनन्दसागरस्तव

यह ४ से ९ तक के ग्रन्थ अमुद्रित रूप में मद्रास की लाइब्रेरियों में यत्र-तत्र प्राप्त हुए हैं।

नीलकण्ठ ने 'चित्रमीमांसा दोषधिक्कार' नामक अपने ग्रन्थ में पण्डितराज जगन्नाथ के द्वारा अप्पय दीक्षित विरचित चित्रमीमांसा पर किये गये आक्षेपों का जबर्दस्त उत्तर दिया है।

कवि के रूप में नीलकण्ठ बहुत विद्वत्-प्रिय हैं।

नीलकण्ठ दीक्षित के तृतीय पुत्र 'गीर्वाणेन्द्र' ने 'शृङ्गारकोपभाण' 'अन्यापदेशशतक' नामक ग्रन्थों की रचना की। नीलकण्ठ के चार भाई थे जो सभी पण्डित थे। उनके भाइयों में से एक भाई 'अतिरात्रयज्वन्' 'कुशकुसुद्वतीय' नामक ग्रन्थ लिखा था।

नीलकण्ठविजय का काव्यसौष्ठव

नीलकण्ठविजय का काव्यसौष्ठव अति प्रशंसनीय है। प्रारम्भ में ही जो अनुष्टुभ् छन्द का मङ्गलाचरण श्लोक है वही कुछ इस तरह की भङ्गिमा लिये हुए है कि हम पाठक एकाएक नयी दिशा का सङ्केत पाने लगते हैं—

वन्दे वाञ्छितलाभाय कर्म किन्तन्न कथ्यते।
किन्दम्पतिमिति ब्रूयामुताहो दम्पती इति॥

शिव-पार्वती के एकशरीर होने से उनमें जो एकात्मता आ गई है उसे व्याकरण के नियमों द्वारा सिद्ध करने के प्रयास में कवि की व्यग्रता भावध्वनि की ओर ले जाती है जो आस्वादप्रकर्ष में पर्यवसित है।

क्षीरसागर के वर्णन में कवि ने कुछ ऐसी उपमायें प्रस्तुत की हैं, कुछ इस तरह के श्लेष का प्रदर्शन किया है जो बड़ा चमत्कारकारी है। उदाहरण के लिये देखिये—

"क्षौमावगुण्ठनमिव क्षमायाः", "विधिना विलाप्य भुवि निषिक्तमिवरजताचलम्" "समवायमिव नैर्मल्यस्य" (उपमा)

"गङ्गातीर्थमिव गर्भस्थानेकमठराजिविराजितम्, कैलासशिखरमिव शैवलक्षणलक्षितद्विजखण्डमण्डितम्, निदाघभास्करमिव नितान्तमुत्तरङ्गत्वातिभीषणम्" (श्लेष)

इस तरह हम देखते हैं कि नीलकण्ठ दीक्षित ने कवित्व का अच्छा प्रकाशन किया है। कविता के प्राण सारल्य को कवि ने कहीं भी नहीं छोड़ा है तथा प्रसादगुण की मात्रा पर भी बराबर ध्यान रक्खा है।

एक उदाहरण देखिये, कितनी सरलता से कितना कोमल आशय व्यक्त किया गया है—

"मात्रार्पितं गरलमप्यमृतं शिशूना-
मित्यामनन्ति यदिदं विशदं तदासीत्।
दर्वीकरत्वमपि सा दधती यदित्थं
दिव्यं ददावमृतमेव शिशुष्वमीषु॥"

इस पद्य में 'दर्वीकर' शब्द में श्लेष के रहने पर भी कितनी सरलता है इस बात को कोई भी सहृदय पाठक सुख से जान सकता है।

प्रस्तुत संस्करण

'नीलकण्ठविजय' के साहित्यिक रस का आस्वादन हिन्दी के माध्यम से साधारण संस्कृतज्ञजन भी कर सकें, इसी उद्देश्य से हिन्दी व्याख्या सहित यह संस्करण प्रस्तुत किया गया है। इस संस्करण में व्याख्या की भाषा ऐसी रखने की भरपूर कोशिश की गई है जिसे मूल के बिना भी पढ़ने पर वैरस्य न होने पावे।

आशा है पाठकों को इससे सन्तोष होगा।

कार्त्तिक अमा
संवत् १९२१

रामचन्द्र मिश्र

नीलकण्ठविजयः

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतः

प्रथमाश्वासः

वन्दे वाञ्छितलाभाय कर्म किं तन्न कथ्यते ।
किं दंपतिमिति ब्रूयामुताहो दंपती इति ॥ १ ॥
दृष्ट्वा कौस्तुभमप्सरोगणमपि प्रक्रान्तवादा मिथो
गीर्वाणाः कति वा न सन्ति भुवने भारा दिवः केवलम् ।
निष्क्रान्ते गरले द्रुते सुरगणे निश्चेष्टिते विष्टपे
मा भैष्टेति गिराविरास धुरि यो देवस्तमेव स्तुमः ॥ २ ॥

वाञ्छित अर्थकी प्राप्तिके निमित्त जिसकी वन्दना करता हूँ, उस वन्दन-क्रियाके कर्मका निर्देश करना कठिन प्रतीत हो रहा है। यदि 'दम्पतिम्' इस तरह के एकवचनान्त रूपका निर्देश करता हूँ तो व्याकरणकी अशुद्धि होती है, क्योंकि जाया च पतिश्च इस विग्रहमें द्वन्द्वसमास करके बनाये जानेवाले दम्पति शब्दका द्विवचनान्त रूप शास्त्रसम्मत होता है, और यदि 'दम्पती' इसप्रकार द्विवचनान्त प्रयोग करता हूँ तो व्यक्तिकी एकताका व्याघात होता है, इसप्रकार दोनों तरफ आपत्तिको देखते हुए क्या कहूँ, कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १ ॥

समुद्र-मन्थनके बाद समुद्रसे निकली अप्सराओं और कौस्तुभ मणिको देखकर परस्पर झगड़नेवाले एवं केवल पृथ्वीके भारभूत देवता कितने हैं, कितने देव की वन्दना करता हूँ, समुद्रमन्थनसे विषके निकलने पर [illegible] हूँ अथवा खड़े हुए एवं विश्व निष्क्रिय हो उठा तब जिसने 'मर्त्य—मशास्त्रसे' उनको धैर्यप्रदान करते हुए आगे बढ़नेका साहस दिखाया था, उस सरस्वतीका स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

पि च—

ीढालीढपुराणसूक्तिशकलावष्टम्भसंभावना-
पर्यस्तश्रुतिसेतुभिः कतिपयैर्नीते कलौ सान्द्रताम् ।
ीकण्ठोऽवततार यस्य वपुषा कल्क्यात्मनेवाच्युतः
श्रीमानप्पयदीक्षितः स जयति श्रीकण्ठविद्यागुरुः ॥ ३ ॥

यः संरम्भः कृतिविरचने दुष्कवीनामभेद्यो
यच्चैकाग्र्यं तदुचितपदान्वेषणे चित्तवृत्तेः ।
भ्यं तच्चेदपि कवयतामन्ततस्त्रीण्यहानि
यादेवं किं सरसकविताराज्यदुर्भिक्षयोगः ॥ ४ ॥

। किमिति स्मरामि दुष्कवीनधुना ।
सकलभुवनैकमङ्गलशङ्करगुणवर्णनप्रवृत्तेन ।
न स्मरणीयाः कुधियो लोकायतिका इव व्रतस्थेन ॥ ५ ॥

पौराणिक सूक्तियोंके अंशका थोड़ा बहुत अध्ययन करके प्राप्त अहङ्कारवे
रा वैदिक मान्यताओंको अस्त-व्यस्त करनेवाले कुछ विद्वान् जब कलियुगके
गाढ बनाने लगे, तब जिस अप्पय दीक्षितके रूपमें—कल्कीके रूपमें विष्णु
ह—महादेव स्वयं अवतीर्ण हुए, उस श्रीकण्ठ दीक्षितके विद्यागुरु अप्
ीतकी जय हो ॥ ३ ॥

कुकवियोंको ग्रन्थ-निर्माणमें जिसप्रकार का अभेद्य आग्रह होता है, ग्रन्थ
र्माणोपयोगी पदोंके अन्वेषणमें जो चित्तकी एकतानता हुआ करती है, यदि
आग्रह तथा एकतानता अन्ततः तीन दिनोंके लिये भी मिल जाय तो सरस-
ेताके राज्य में दुर्भिक्षका योग न रहे, अर्थात् कुकवि लोग जिस मनोयोगसे
ना किया करते हैं, वह मनोयोग तीन दिनोंके लिये भी (हमारे सदृश सिद्ध
ोंको) प्राप्त हो जाय तो फिर सरस कविताकी कमी नहीं रह जाय ॥ ४ ॥

अथवा मैं इस समय दुष्कवियोंको क्या याद करूँ ?
समस्त भुवनके लिये कल्याणप्रद भगवान् शङ्करके गुणोंके
मैं कुकवियोंका स्मरण क्यों करूँ व्रतस्थलोग जैसे चार्वाक
हैं उसी तरह मुझे भी कुकवियोंका । नहीं करूँ ॥ ५ ॥

कति कवयः कति कृतयः
कति लुप्ताः कति चरन्ति कति शिथिलाः ।
तदपि प्रवर्तयति मां
शङ्करपारम्यसंकथालोभः ॥ ६ ॥

देवानामपि दैवतं गुरुमपि प्राचां गुरूणामिह
श्रीमन्तं मदनान्तकं कथमपि स्तोतुं कृतो निश्चयः ।
न त्वां त्वरयामि भारति बलात्कृष्टापि दुष्टे पथि
प्रासेनोपहतापि जातु कुपिता मा स्म प्रसादं त्यजः ॥ ७ ॥

हन्तव्याः कवयः कतीह बहुमन्तव्या रसज्ञाः कती-
त्येतावच्चलसः करोमि कवयो हृष्यन्तु रुष्यन्तु वा ।
गिरात्स्यायनतन्त्रमाश्रुतिशिरःसिद्धान्तमुच्चावचा
विद्या यत्प्रभवा जयन्ति भुवि तां वन्दे गिरां देवताम् ॥ ८ ॥

कितने कवि हो चुके हैं, कितने ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं, उनमें कुछ लुप्त गये, कुछ प्रचलित हैं, तथा कुछ लुप्तप्रचार हैं, फिर भी महादेवकी कथाकी चर्चा करनेका लोभ मुझे प्रेरित कर रहा है ॥ ६ ॥

मैंने देवोंके भी देव एवं प्राचीन गुरुओंके भी गुरु श्रीमान् महादेवके गुणोंकी स्तुति करनेका निश्चय कर लिया है, अतः मातः भारति, मैं तुमसे निवेदन कर रहा हूँ कि मेरे द्वारा दुष्ट मार्गमें घसीटी जाकर तथा प्रास (अनुप्रास तथा प्रासनामक अस्त्र) से आहत होकर भी तुम अप्रसन्न मत होना और कभी भी प्रसाद (कृपा तथा प्रसाद गुण) का त्याग मत करना ॥ ७ ॥

कितने कवि प्रणम्य हैं तथा कितने रसज्ञ आदरणीय हैं; मैं बड़ा ही आलस्य-ग्रस्त हूँ अतः मैं इतना ही करूँगा—चाहे कविगण प्रसन्न हों अथवा रुष्ट, मैं—जो, गिरात्स्यायनतन्त्रमाश्रुतिशिरःसिद्धान्तमुच्चावचा—व्याकरणशास्त्रसे लेकर वेदान्तके सिद्धान्त तक जिससे उत्पन्न विद्या प्रचरित है—उन, सरस्वतीकी स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥

चौर्येण प्रणयेन चापहरतः पल्लीषु गव्यान्यपि
स्त्यायन्ते चरितानि चेत्कविकुलोद्गीतानि गाथाशतैः ।
त्रैलोक्योद्भटकालकूटकबलीकारप्रकारं पुनः
स्तोतुं के प्रथमेऽपि नाम कवयो दूरेऽधिकारस्तु नः ॥ ९

अष्टत्रिंशदुपस्कृतसप्तशताधिकचतुःसहस्रेषु ।
कलिवर्षेषु गतेषु प्रथितः किल नीलकण्ठविजयोऽयम् ॥ १० ॥

अस्ति किल समस्तसुरासुरस्तोमवन्दितचरणारविन्दस्य भगव महेन्द्रस्य स्थानम्, आस्थानममृतान्धसाम्, आयतनमाश्चर्याणाम्, आक रत्नानाम्, अवधिर्वैषयिकानन्दस्य, किमपरमगोचरे गिराममरावती ना नगरी । तत्र च निरालम्बे नभसि वर्तमानतया सर्वपथीनद्वारतया पुनरनपेक्षितमूलशिलानिवेशनायासम्, अनाकांक्षितप्रतीहाररचनाप्रयास असंपादितशृङ्गसंबाधम्, असंभावितपरिखामण्डलम्, आचार इति केव

चौर्य तथा प्रणयसे पल्लियोंमें माखन चुराने वाले (श्री कृष्ण) की कथ भी नाना कवियों द्वारा नाना प्रकारकी गाथाओंमें वर्णित होकर यदि प्रथि होती हैं तब त्रैलोक्य-भयङ्कर कालकूट विषको निगलनेके प्रकारका (शिव द्वारा किये गये विषपानका) वर्णन करने में कौन पुराने कवि भी समर्थ सकते हैं, हमारे सदृश कवियोंका तो उस प्रसङ्गमें अधिकार की चर्चा दूर है ॥ ९ ॥

सैंतालीस सौ अड़तीस कलिवर्षके बीत जानेपर अर्थात् पन्द्रह सौ उनच शकाब्दमें यह नीलकण्ठविजयनामक ग्रन्थ निर्मित होकर प्रसिद्ध हुआ ॥ १० ।

समस्त देव तथा असुरगणसे बन्दित चरण कमल भगवान् महेन्द्रका स्था देवोंका निवासस्थल, आश्चर्योंका आकर, रत्नोंकी खान, वैषयिक आनन्द अवधि, और क्या कहा जाय वर्णनातीत अमरावती नामकी एक नगरी वह नगरी निराधार आकाशमें स्थित तथा सर्वतोद्वार है अतः उसके मू शिलान्यास की आवश्यकता नहीं है, दरवाजा बनानेकी जरूरत नहीं है, मकानके शिखरोंसे वह व्याप्त नहीं है, उसमें परिखाओंके होनेकी संभा

मभिनिर्वर्तितो नवः प्राकारः । प्रासादः पुनरस्ति वैजयन्त इत्यभूमिरारोहणोपयोगविधुरश्च । सर्वतोऽप्रतिहतचाराणां पौराणाममृतास्वादसुहितानामभ्यवहार्येण किं प्रयोजनम् । अपि च पुनरभिलषितमणिकनकभूषणाम्बरसंदायिषु मन्दारादिशाखिषु न किंचिदस्ति क्रेतव्यं विक्रेतव्यं चेति संज्ञामात्रशरण्याः पण्यवीथिकाः । किंच निरन्तरशिवध्याननिर्धूतकल्मषाः, निरतिशयतपोविशेषशोषिताः, वीतरागभयक्रोधमत्सराः, विषयपराङ्मुखाः, भुवि परमर्षय इति प्रथागताः पण्डिता एव प्रणयिनो वारमृगीदृशाम् । अश्वमेधयाजिन इति, अग्निचित इति, मासोपवासिन इति, मांसवर्जिन इति, राजसूययाजिन इति, रणदुर्मदा इति, अन्नदा वयमभयदा इति शंसद्भिरपदानानि संपतद्भिरितस्ततोऽप्यज्ञातमुखैर्जातुचिदवनिवासिभिर्जनैर्बलादपह्रियमाणेषु विमानेषु, आक्रम्यमाणेषु मन्दिरेषु, आकृष्यमाणे च बलादप्सरोगणे, न कश्चिदभिमन्यते ममेदमिति मन्दिराणि विमानानि मणिभूषणानि कलत्राणि वा नगरवासी जनः । कंचेदमपरमदेवतया न सुधाशनाः, अलाभादेव न तृणाशनाः,

---

नहीं है, केवल आचार समझकर वहाँ नया प्राकार बनाया गया है। वहाँ एक वैजयन्तनामक प्रासाद है जिसमें भूमि नहीं है और जिसपर चढ़नेका उपाय नहीं किया गया है। देवगण निर्बाधरूपमें सर्वत्र जा सकते हैं, और अमृतरसे तृप्त हैं, अतः उन्हें भोज्य वस्तुओंका कुछ प्रयोजन नहीं है। यथाभिलषित मणिभूषण तथा कनकभूषण तथा वस्त्र आदिके देनेवाले कल्पवृक्ष निश्चलके वर्त्तमान रहनेके कारण कुछ खरीदने तथा बेचनेके कार्यसे मुक्त रहनेके कारण वहाँकी बाजारें नाममात्रके लिये हैं। निरन्तर शिवके ध्यानसे पापरहित अतिशय तपस्यासे शोषित, राग-भय-क्रोध-मात्सर्यसे रहित विषयपराङ्मुख, भूतलपर परमर्षिके रूपमें प्रथित पण्डित ही वाराङ्गनाओंके प्रणयी हैं। यज्ञ करनेवाले, अग्निचयनसमर्थ, मासोपवासकर्त्ता, मांसत्यागी, राजसूय यज्ञवाले, रणदुर्मद, अन्नदाता एवं भयत्राता इत्यादि रूपमें कीर्त्तिगान करनेवाले इधर उधरसे आनेवाले अपरिचित अवनिवासी जन बलात् विमान छीन मन्दिर पर आक्रमण कर देते हैं, बलात् अप्सरायें छीन लेते हैं। फिर वहाँ यह अभिमान नहीं होता है कि यह मेरा मन्दिर है, यह मेरा यह मेरे मणि भूषण हैं, यह मेरी स्त्री है। इस नगरीका सम

पवनाशना एव परिशेषात्कामदुघा गावः, पराक्रमिणो मनोजवाः
वातरंहसश्च वाजिन इति सकलपुरविलक्षणं लक्षणम् । अपि च—

मूल्यं तत्किल वेश्मनां द्विजमुखे भक्त्यात्र यदीयते
वेश्यानां च पणः स एव सवने या दक्षिणा ऋत्विजाम् ।
पद्या सैव विशङ्कटा भवति या पद्यात्र तीर्थाम्भसां
द्वारं तत्र च तद्यदत्र करणद्वारं पिधेयं नृणाम् ॥ ११ ॥

अस्ति स्वादयितुं सुधास्ति वसितुं वासो नभश्चारिणां
धर्तुं सन्ति च भूषणानि शतशो न त्वस्ति धीर्जीवितुम् ।
येनान्यानुपजीव्यसर्वविभवे कर्मैकलभ्ये पदेऽ-
प्यायस्यन्ति वृथैव सेवक इति स्वामीति दुर्मेधसः ॥ १२ ॥

इदं च परमाद्भुतमुत्प्रेक्षितं तस्यां, यत्किल विविधतपःप्रबन्धनिस्तन्द्र

विलक्षण है, यहाँकी कामदुघा गायें देवता नहीं हैं अतः अमृतपर नहीं जीती हैं, और तृण भी नहीं खाती हैं क्योंकि वह मिलता नहीं है, फलतः हवा पीकर ही रहा करती हैं। यहाँके हाथी बड़े पराक्रमी एवं घोड़े हवाकी तरह शीघ्रगामी हैं। यह नगर सकल अन्य नगरोंसे विलक्षण है। और—

इस नगरीके भवनोंका वही मूल्य है जो यहाँ हम भक्तिपूर्वक ब्राह्मण
ा करते हैं, इस नगरीको वेश्याओंकी वही फीस है जो हम यहाँ य-
ोंको दक्षिणाके रूपमें देते हैं। इस नगरीका मार्ग वही है जो तीर्थ
दुर्गम मार्ग है, और यहाँ का द्वार यही है कि मनुष्य अपने इन्द्रियों
बन्द करता है ॥ ११ ॥

ाटनके लिये अमृत है रहनेको देवोंका मन्दिर है, पहननेको नाना
ण हैं, परन्तु जानेकी बुद्धि नहीं है जिसके चलते स्वार्थानरूपमें
लभ्य रहने तथा कर्मके बलपर पदोंके प्राप्य रहनेपर भी दुर्बुद्धि
वामी तथा सेवकके (निर्धारणमें) व्यग्र रहते हैं ॥ १२ ॥

वती नगरीमें अत्यन्त अद्भुत बात देखी गई है कि नाना प्रकारके

या विस्मृतलोकतन्त्रेषु, चिरविधृतब्रह्मचर्यजीर्णतया कालमृत्
कन्दर्पस्य ब्रह्मर्षिहतकेषु भूतलादागत्य प्रसक्तेषु क्रीडितुमप्सरोभिः, पर्ण
शालां प्रविशाम इति प्रविशत्सु केलीगृहं, विस्रंसय जटामिति वेणी-
मालम्बमानेषु, अपनय वल्कलमित्यपनेतुकामेषु कुचदुकूलानि, न
लोहितं कुर्यादिति निषेधत्सु नखक्षतानि, आः कष्टमसंमतोऽयं पन्थाः
शिष्टानामिति पिहितकर्णेषु चुम्बनभेदप्रस्तावनायां, निवीतधारणव्यग्रेषु
निवीमोचनावसरे, मन्त्रजपमुखरेषु मणितावसरे, आः स्मृतमद्य
ऋतीपात इत्यन्तरा गन्तुकामेषु, अनुयुञ्जानेषु पुनः पुनरार्तवदिनानि
पथपूर्वकम्, अतिक्रामति निषेकलग्नमित्यसहमानेषु बाह्यसुरतव्यापार-
विलम्बम्, अवधीरयत्सु पुरुषायितम्, असंमन्यमानेषु बन्धभेदान्, विगा-
हेषु वीटिकोपसेवनमप्यनुचितोऽयं काल इति, आनन्दमूर्च्छावसर

में लगे रहनेवाले अतएव लोकाचारको भूल जाने वाले; अति चिरकालपर्यन्त
चर्य धारण करके शरीरको जीर्ण बनानेवाले कामदेवके अभागे ब्रह्मर्षिगण
च्छा मृत्यु होकर यहाँ आने पर अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करने लग जाते हैं।
ह्मर्षिगण पर्णशालामें प्रवेश कर रहा हूँ ऐसा समझकर क्रीडाभवनमें
ा करते हैं, जटाको खोलो यह कहकर नारियोंके केशपाशका अवलम्बन
हैं, वल्कल हटाओ ऐसा कह करके नारियोंके कुचावरण वस्त्र दूर करते
खून नहीं निकालना चाहिये ऐसा कहकर (निषेधवचनका उच्चारण करके)
क्षत किया करते हैं, "बड़े कष्ट की बात है यह मार्ग शिष्ट जन द्वारा निन्दित
म्बन भेदके अवसरके आनेपर पूर्वोक्त रूपसे कहकर अपने कान बन्द कर
नीवीबन्ध खोलनेके अवसर पर अपने जनेऊको पकड़नेकी व्यग्रता प्र
रतिकूजितके अवसर पर मन्त्रजप करने लगते हैं, हाँ याद प
योग है ऐसा कहकर बीचमें ही चलने की इच्छा प्रकट क
र बार बार मासिक स्रावके दिन पूछा करते हैं, गर्भा
ा है—ऐसा कहकर बाह्य रतिक्रीडाजनित विलम्ब
विपरीत रतिकी निन्दा करते हैं, नानाप्रकार
करते हैं; यह ताम्बूल-भक्षणका समय
ायत किया करते हैं, रत्यन्त

पवनाः व निभृतमनुसंदधानेषु मन्त्रलिङ्गानि, परवशरतान्तनिद्रावसर
वाः यावत्संनिपातं च सहशय्येति परिहरत्सु पर्यङ्कशायिकां, द्वि
सुरतारम्भ एव देहि मे कमण्डलुमिति त्वरमाणेषु मन्दाकिनीगम
विहसन्ति विषीदन्ति विलज्जन्ते विस्मयन्ते च रम्भादिमेनका
देववारकान्ताः ॥

प्रसजति महोत्सवे वा प्रचलति रथ्यासु तत्र शक्रे वा ।
निम्नानि पूरयन्ते पवनमये तालवृन्तपवनेन ॥ १३ ॥

किं बहुना—

दुःखानां क्षतिरित्यबोधहतिरित्यानन्दविष्फूर्तिरि-
त्यन्तर्वाणिविकल्पजालजटिलान्मोक्षादपि ज्यायसी ।
यैषाऽविप्रतिपन्नसौख्यलहरीसंपातसंपादिनी
तत्सौन्दर्यविवेचने कवयतां मौनं क्षमं हीमताम् ॥ १४

शान्तभावसे मन्त्रोंका अनुसन्धान करने लगते हैं, रतिके अन्तमें होने
निद्राके अवसर पर ही संभोग पर्यन्त ही एक साथ शयन किया जाना च
ऐसा सोचकर शय्यापर एक साथ सोनेका परित्याग करते हैं, दूसरी
रतिक्रीडाके प्रारम्भ में ही—मेरा कमण्डलु लाओ—इस प्रकार कहते
मन्दाकिनी-तीर जानेकी जल्दी प्रकट करते हैं। ब्रह्मर्षिओंके पूर्वोक्तरूप आच
रम्भा-मेनका आदि देववालायें हँसती हैं, दुःखी होती हैं, लज्जित होती
आश्चर्यचकित भी होती हैं।

महोत्सवमें आसक्त रहनेपर तथा गलियोंमें घूमते रहनेपर भी
वृन्तोत्पन्न पवनसे खाली जगहोंको पूर्ण किया करती हैं ॥१३॥

निवृत्ति, अज्ञानकी समाप्ति, अथवा आनन्दका आविर्भ
जोंके विकल्पजालसे जटिल मोक्षसे भी श्रेष्ठ है
ने वाली अमरावती नगरी, इसके सौन्दर्
धारण ही श्रेयस्कर मार्ग है ॥ १४

तिनस्तस्या हरेः शासना-
ीकिलकलस्वाने विमाने स्थिताः ।
सचकितव्याघूर्णमानेक्षणा
। ततोऽवतरितुं प्रागल्भ्यमाबिभ्रते ॥ १५ ॥
तिकरच्युतपल्लवेषु
मूललवलीगृहमण्डपेषु ।
वेणिवलयेषु गलन्ति तस्यां
ह्यं वहन्ति सुरवासकसज्जिकानाम् ॥ १६ ॥
न्ति चाटु कथयन्ति पदा स्पृशन्ति
पश्यन्ति गाढमपि तत्र परिष्वजन्ते ।
न्यद्रुमानपि समेत्य सुपर्वकान्ता
मुग्धा द्रुमैस्तदितरैश्चिरविप्रलब्धाः ॥ १७ ॥
त च तामधिवसन्, वसन्त इव ऋतूनां, वासुकिरिव फणा

SANSKRIT VIDYAPEETH
TIRUPATI
38856
(DEEMED UNIVERSITY)
0157/37, 1
N64;1

की आज्ञासे उस अमरावती नगरीमें पृथ्वीपरके पुण्यात्मागण ल
बजती हुई मणिकिङ्किणीगणके मधुरस्वरसे युक्त विमानमें बैठ
व व्योमको देखकर आश्चर्यमें डूब गये, उनके नयन घूमने लगे,
वहाँ रहना चाहते थे और न वहाँ से नीचे उतरना ही चाहते थे ॥ १५

उस अमरावती नगरीमें मन्द मन्द बहनेवाली हवाके सम्पर्कसे मन्दारपु
से गिरा करते हैं, मन्दारतरुके मूलमें लवलीनिर्मित कुञ्जोंमें बैठी
प्रियतमकी प्रतीक्षापरायणा वासकसज्जाओंके केशपाशसे वायु कम्पित
गिरनेवाले फूल पुष्पशय्यानिर्माणकार्यमें वासकसज्जाओंकी सहायता करते हैं

अन्य वृक्षों द्वारा चिरकालसे ठगी गयी मुग्धा देवाङ्गनायें
समीप जाकर गाती हैं, खुशामदें करती हैं, चरणोंसे स्पर्श क
आलिङ्गन करती हैं ॥ १७ ॥

उस अमरावती नगरीमें वास करनेवाले—

भृता, चन्दन इव वृक्षाणां, चन्द्रमा इव
राजा त्रिविष्टपस्य, राजा त्रयाणां जगतां,
कर्ता शताश्वमेधानां, संहर्ता वृत्रासुरस्य,
दृहंप्रथमिकासंभुज्यमाननवयौवनश्रीः, अपर्यु
मदनमदारम्भसीमायाः कौमारहरः सदा शचीदे
गान्धर्वरहस्यसर्वंकषमनीषाविशेषनिरवद्यविद्याधरी
विपञ्चिकानिनादप्रपञ्चितोदारनिजभुजापदानसमाक
निर्वर्णनजनितामर्षजल्पाकनिखिलदिक्पालवदनावलो
लोचनः, चतुर्मुखवलयविहारिभारतीपरिगृहीतवैतालिक
पातासहिष्णुतयेव परिहृतशैलेन्द्रपक्षमण्डलः, चन्द्रचूडच
चरणानन्दसाम्राज्यधुरंधरः पुरन्दरो नाम ।)

श्लथे नीवीबन्धे सति रहसि यत्पाणिवलना-
न्नवोढाः पाणिभ्यामपि पिहितसप्ताष्टनयनाः ।

वासुकी नागकी तरह, वृक्षोंमें चन्दनकी तरह, नक्षत्रोंमें चन्द्रमाकी
तथा त्रिभुवनके राजा, ब्रह्माण्डमण्डलके शासनकर्त्ता, सौ अश्वमेधोंके
त्रासुरके संहारक पुरन्दर हुए, जिनके यौवनका प्रथम उपभो
तिस्पर्द्धापूर्वक रम्भा आदि विविध सुन्दरियाँ किया करती हैं,
नसे रमणीय काममदकी अवधिस्वरूप शचीदेवीका जो पति है, व
ाम, नाट्यशास्त्र और गान विद्याको जाननेवाली विद्याधरि
ग्रभागसे विपञ्चीके बजाये जानेपर उसके शब्दके साथ अपनी
करके रोमांञ्चित हुआ करता है, उसके उस रोमाञ्चको देखकर अ
पूर्ण हो गये इस बातको देवगणके मुख ही कहने लग जाते
इन्द्र उन अमर्षपूर्ण देवोंके मुखोंको देखकर अपनी सहस्रसंख्य
सार्थक किया करता है, ब्रह्माके मुखकमलोंमें विहार करनेवाली सरस्व
लिकी बनती हैं, वह इन्द्र पक्षपातको नहीं सह सकनेके कारण पर्वतों
का है वह महादेवके चरणोंकी सेवा करनेमें लगा हुआ रहता है
ीवीबन्धके शिथिल हो जानेपर नवोढ़ा ललना
न्द्रके सात-आठ आँखोंको बन्द कर देती हैं

सहस्रस्याप्यक्ष्णां युगपदपिधानाक्षमतया
पुनस्ताभ्यामेव स्वमपिदधते लोचनयुगम् ॥ १८ ॥

पि च—

न्यन्ते श्रुतिपाठशुष्कवदना विप्राः पदे वेधसो
वैकुण्ठे तुलसीवनानि सुलभान्यार्द्राणि शुष्काणि च
ा भूतगणाश्च सन्ति शतशः स्थाने भवानीपते—
रत्नान्यप्सरसः सुधेति तु पदे यस्यैव लब्धुं क्षम

38856

विधातुं कर्माणि व्यवसितवती यत्पदफला-
न्यसूयान्धा मध्ये श्रुतिरपि किमासीद्भगवती ।
अनुष्ठेयं कर्म स्वयमनभिसंधाय फलमि-
त्ययं बन्ध्यः पन्था यदनुपदमेव प्रकटितः ॥ २० ॥

बहुना—

न एक साथ उनकी हजार आँखोंको बन्द करनेमें वह समर्थ नहीं होती हैं, रकर वे अपने हाथोंसे अपनी आँखोंको ही मूँद लेती हैं ॥ १८ ॥

ये, व हनेके कारण शुष्कमुख ब्राह्मणगण ब्रह्माके घरमें मिल जाते हैं, निरालम गले तुलसीवन वैकुण्ठमें बहुत मिल सकते हैं, महादेवके घरमें भी त मिल सकते हैं, परन्तु अमृत, अप्सरायें, तथा रत्न तो इन्द्रके ही घरमें सकते हैं ॥ १९ ॥

श्रुतिने पहले तो इन्द्रपद प्रदान करनेवाले कर्मोंका प्रतिपादन किया, किन्तु श्रुति इन्द्रपदके सौन्दर्यको देखकर डाहसे अन्धी हो गई और उसी श्रुतिने ही यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि फलाभिसन्धि छोड़करके ही कर्म ा चाहिये, परन्तु यह फलाभिसन्धिशून्य कर्मका मार्ग तो निरा ल है ॥ २० ॥

अधिक क्या कहा जाय ?

लब्धुं तत्पदमूर्जितं शतमखी तस्यैव नालं भवेद्
द्रष्टुं तद्दयिताजनं दशशती तस्यैव नालं दृशाम् ।
वक्तुं तत्पुरभोगभाग्यमखिलं तस्यैव नालं गुरु-
र्मच्चेतोगतमद्भुतं कथयितुं नालं ममैवोक्तयः ॥ २१

स कदाचिदस्वप्नोऽप्याचार इति बोधितः प्रातरमरवैता आलोक्य निर्मलं पौलोमीकपोलदर्पणम्, अभ्यर्च्य कामधेनुम्, विविधविद्याधरीविलासपिशुनकुसुमशयनीयलोभनीयलतामन्दिरनिरु रोपान्तभुवम् अधःपरिवर्तमानविकर्तनबिम्बनिरर्गलनिर्गलदूर्ध्वमुखमयू संसर्गादुष्णीकृतामन्तरन्तः उपर्युपरि शीतलां भूतलासंस्पर्शेऽपि पुरु पुरुपचरणारविन्दसंबन्धादेव भुवनपावनीममरधुनीं, निर्वर्तितनिज भिषेचनः सिद्धचारणगन्धर्वसेविते सैकते तस्याः दहराकाशपरिपूजि दिव्यलिङ्गाकृति प्रतिष्ठाप्य चिन्तामणिमयं किमपि पारमेश्वरं लिङ्ग, अनुसंधाय तत्र नखलिखितशरच्चन्द्रचन्द्रिकासारसुन्दरं भगवन्तं

इन्द्रके द्वारा किये गये सौ यज्ञ भी इन्द्रके पदको प्राप्त करनेके लिये प नहीं हैं, इन्द्रके हजार नयन भी देवबालाओंके मुखोंको देखनेमें समर्थ नहं स्वर्गके सौभाग्यको कहनेमें इन्द्रके गुरु बृहस्पति भी दक्ष नहीं है और मेरे वर्त्तमान आश्चर्यको प्रकट करने में मेरी उक्तियाँ भी शक्त नहीं हैं ॥ २१ ॥

एक समय देव-वैतालिकोंने प्रातःकाल में इन्द्रको सुनाया कि जगज उचित आचार है; इसपर वह उठे, उन्होंने निर्मल शची-कपोलदर्पणमें अ मुख देखा, कामधेनुकी पूजाकी, फिर वह मन्दाकिनीके तटपर गये, जहाँपर मान लताकुञ्जके पुष्पशयन विविध विद्याधरियोंके विलासकी सूचना दे वह मन्दाकिनी ऊर्ध्वमुख सूर्यकिरणके सम्पर्कसे उष्णजलयुक्त अधोभाग होक ऊपरसे शीतल जलयुक्त हो रहा करती है, तथा वह मन्दाकिनी पृथ्वीके रहित होकर भी पुराण-पुरुष विष्णुके चरण-सम्पर्कसे ही पृथ्वीको पवित्रित करती है। इन्द्रने मन्दाकिनीमें स्नान किया, और सिद्धों चारणों एवं गन्ध सेवित मन्दाकिनीके तटपर दहराकाशमें पूजित दिव्यलिङ्गसमानाकृति चिन्त के लिये शिवलिङ्गकी स्थापना की, उस लिङ्गमें नखलिखित चन्द्रकलासे

न्तकम्, अभिषिच्य दिव्यापगासलिलैः, अनुलिप्य रोहिणीरमणहरिण-
पङ्कानुषङ्गिणा हरिचन्दनेन, समभ्यर्च्य गाङ्गेयविकचगाङ्गेयपङ्कजैः,
राध्य सुरभिघृतधारानुबन्धिना दिव्यधूपेन निसर्गचलितरश्मिमाला-
लापेन रत्नदीपेन च, साङ्गाय सायुधाय सावरणाय साभरणाय च
नवेद्य सद्यःसमाहृतनिष्पीडितेन्दुमण्डलनिष्यन्दमानापर्युषितान्यमृतानि,
दक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य प्रसाद्य पञ्चभिः प्रसूनाञ्जलिभिः, स्तुत्वा श्रुति-
रोभिः, कृत्वा विसर्जनम्, अथ स्मृत्वा चिरन्तनमात्मनि, विलास-
तीविहारकौतूहलेन निर्गत्य बहिः, इतस्ततो निरन्तरालमिलदाशोर्व-
रीमुखरगीर्वाणमुनिसंघसंकुलम्, अतिकोमलाङ्गुलिदलाघातशोधितमृदङ्ग-
नादभङ्गिभिः अधरनिवेशितापनीतवेणुभिः असकृदास्फालिताकृष्टवीणा-
गुणाभिः आकुञ्चितऋजूकृतभ्रूलतमाविष्कृतलुप्तसिराबन्धकन्धरमन्तरेव
ललमधुरमारब्धगीतिभिः द्विस्त्रिरास्फालितसव्यचरणमृदुरणितमञ्जीर-
झञ्जुलाभिरप्सरोभिरारभ्यमानतौर्यत्रिकम्, अत्युद्भटवेत्रिवेत्रलताघात
विद्रावितवीथीभवदमरमण्डलम्, अभितोऽपि दृष्टिगोचरसंनिधापितकरि-

भगवान् शिवका ध्यान किया, फिर इन्द्रने गङ्गाजलसे उस शिवलिङ्गका स्नपन किया, चन्द्रमाके अङ्कमें अवस्थित हरिणकी कस्तूरीसे सुरभित चन्दनसे उस शिवलिङ्गको चर्चित किया, उस शिवलिङ्गकी गङ्गामें खिले कमलोंसे पूजाकी, कामधेनुके घी की धारसे सुगन्धित धूप दिया, स्वाभाविक रोशनीसे परिपूर्ण रत्न-दीप दिखलाया, साङ्ग सायुध सावरण साभरण शिवको इन्द्रने तत्काल निचोड़े गये चन्द्रमण्डलसे निर्गत ताजा अमृतका नैवेद्य अर्पित किया, प्रदक्षिणा की, पुष्पाञ्जलि समर्पित की, वैदिक मन्त्रोंसे स्तुतिकी, फिर विसर्जन किया।

इसके बाद इन्द्रने पुराणपुरुष परमात्माका हृदयमें ध्यान किया, इधर-उधर सर्वत्र वर्त्तमान आशीर्वाद प्रदान करनेवाले देवों एवं मुनियोंसे व्याप्त, जहाँ अत्यन्त सुकुमार अङ्गुलियोंसे बजाकर मृदङ्गके नादकी परीक्षा करनेवाली, ओठोंसे वेणुको सटाकर देख लेनेवाली, वीणाके तारोंको ठीक करनेवाली, टेढ़ी करके भ्रूलताको सरल करके ग्रीवाको वक्र करनेवाली, एवं तत्काल मधुर गीत प्रारम्भ करनेवाली अप्सरायें नृत्य-गीत तथा वाद्यवादन प्रारम्भ कर रही हैं ऐसे, जहाँ द्वारपालोंकी वेत्रलताकी चोटसे देवगण तितर-बितर हो जाते हैं ऐसे

तुरगपर्यङ्किकादिनानाविधवाहनग्रासमालोक्य सेनामुखम्, आलोकि
विदितेङ्गितैराधोरणैरुपस्थापितमर्णवनिमग्नमैनाकपक्षरक्षणाभ्यर्थना
हिमवन्तमिवोन्नतमवदातं च किंचिदारुह्य मतङ्गजम्, अङ्गजराज्यसौ
देवतयेव शरीरिण्या ताम्बूलकरण्डधारिण्या मेनकया, मदनमद
सौवर्गकामिनीकटाक्षसंसर्गनिवारणायेव मणिचामरोपवीजनकुशल
रम्भया रम्भया च सविलासमध्यासितचरमभागः, पुरोभागचलद
भुजङ्गालकरितुरगसंघजङ्घाजवद्रवदमरभटकोटिसंमर्दशिथिलहारमुक्ता
नितमुक्तापरागसंबन्धादिव धवलीकृतेन ससंभ्रमवलदम्बरचरनितम्बि
लोकविकीर्यमाणमन्दारकुसुमवृन्दनिःसरन्मकरन्दधारानिरासायेव मुकु
मुपर्युपरि धार्यमाणेन सर्वतः प्रालम्बमुक्तासरकदम्बशालितया समन्त
निहितकुपितविधुन्तुदविकटदन्तक्षतविवरक्षरदमृतधारासहस्रमण्डितेन

एवं चारो ओर जहाँपर समीप लाये गये हाथी-घोड़े एवं पालकी आदि सवा
समुपस्थित हैं ऐसे वाहनयुक्त सैन्य-मण्डलीको देखा। इसके बाद इन्द्रने दे
मात्रसे इशारेको समझ लेनेवाले हथवाहों द्वारा लाये गये तथा मैनाकके पक्ष
रक्षाकी प्रार्थना करनेके लिये उपस्थित हिमालयकी तरह प्रतीत होनेवाले ऊँ
एवं स्वच्छ वर्ण ऐरावतपर आरोहण किया।

कामदेवके राज्यकी शरीरिणी सौभाग्य-देवताके समान दीखनेवाली ताम्बू
भाजनधारिणी मेनका तथा मदनमदसे किञ्चित् उष्ण स्वर्गीय ललनाओं
कटाक्षसंसर्गको बचानेके लिये मणिमय चामर डुलाती हुई रम्भाने सविल
आकर इन्द्रके पीछे भागमें आसन ग्रहण किया। इन्द्रने प्रयाणकालमें श्वेतचे
धारण किया, वह छत्र ऐसा लगता था मानो इन्द्रके आगे-आगे चलनेवा
बहुसंख्यक हाथी तथा घोड़ोंके वेगभयसे इधर-उधर होकर भागनेवाले देवों
संमर्दमें टूटकर गिरने एवं चूर्ण-चूर्ण हो जानेवाले मुक्तामाल्योंके रजके संपर्क
ही श्वेत हो गया हो, वह छत्र ऐसा प्रतीत होता था मानो शीघ्रतावश इध
उधर दौड़ती हुई देवाङ्गनाओं द्वारा बिखेरे गये पुष्पवृन्दके मकरन्दसे
क्षा करनेके निमित्त ही धारण किया गया हो। उस छत्रमें चारो ओर मो
गड़ियाँ लटक रही थीं, उनसे वह छत्र ऐसा प्रतीत होता था मानो राहुने कु
होकर दन्ताघात किया जिससे अमृतकी धारें वह चली हैं जिससे, वैसा

ण्डलेनेव शशाङ्कस्य महतातपत्रेण सफलयन्ननिमिषदृष्टिसृष्टिमम्भोज-
भवस्य, गन्धर्वकुलवाद्यमानबहुविधातोद्यनिनादकबळीकृताशावकाश-
येय सकुलचलितसेनासंघसंकटोन्मुक्तसिंहनादधारापथे निर्जगाम
ारापथे ॥

मञ्जीरैर्नटनार्भटीमुखरितैः स्वर्वारवामभ्रुवां
मन्दस्निग्धरवैश्च किन्नरकरव्यापारितैर्मर्दलैः ।
श्लाघाश्लोकशतैश्च चारणगणप्रोद्गीयमानैस्तदा
नादब्रह्ममयीव तत्र रुरुचे नासीरसीमा हरेः ॥ २२ ॥

पि च—

अग्रे पश्चादुभयत इति त्यक्तलोकव्यवस्थे
दिष्ट्या तस्मिन्नपि परिणते सर्वतः संमुखीने ।
सभ्रूभङ्गं नयनवलनं सस्मितं द्रष्टुकामा
भूयोऽप्यग्रे सुरपरिबृढास्तस्य पुञ्जीबभूवुः ॥ २३ ॥

गच्छन्नेव स नभसि, भसितावकुण्ठितसर्वाङ्गसङ्गलब्धपरभाग-

डल हो । उस छत्रको देखकर ब्रह्मा अपने अनिमेष नयनोंको सफल समझ
थे । इसप्रकार वह इन्द्र गन्धर्वों द्वारा बजाये गये नाना प्रकारके वाद्योंके
दसे समस्त दिशावकाशके व्याप्त हो जानेके कारण अत्यन्त संकीर्ण होकर
नेवाली सेनाके सिंहनादसे परिपूर्ण आकाशमार्गसे चले ।

देवाङ्गनाओंके नाचनेके उपक्रममें शब्दायमान मञ्जीरोंसे, किन्नरकराहत
नोंके मन्द मधुर शब्दोंसे, एवं चारणगण द्वारा उच्चारित स्तुतिके श्लोकोंसे
समय इन्द्रके पुरद्वारकी सीमा नादब्रह्ममयी हो रही थी ॥ २२ ॥

लौकिक व्यवस्थाको तोड़कर आगे, पीछे, दोनो ओर देवगण आकर खड़े
थे, सौभाग्यवश इन्द्रकी आँखोंकी संख्या हजार थी अतः वह सभीके
खीन प्रतीत होते थे, देवगण भ्रूभङ्गके साथ, आँखें नचा नचाकर मुस्कुराहट-
ाथ इन्द्रको देखनेको इच्छासे उनके आगेमें एकत्रित हो गये ॥ २३ ॥

आकाशमार्गसे जाते हुए इन्द्रने दुर्वासाको देखा, जो भस्मसे शुक्ल सर्वाङ्ग

भासुराभिरभिव्याप्य हृदयमधिकतया बहिर्निर्गमिष्यतः कोपानलस्य ज्वालाभिरिव पाटलाभिर्जटाभिरभिभवन्तमिव तटित्वन्तमभिनवं शारदाम्भोदम्, अपि च त्रिभुवनमुनिलोकवैलक्षण्यबोधिन्या शापमूलतपोलाभसंभवया कीर्त्येव त्रिपुण्ड्ररेखया परिकर्मितललाटमण्डलम्, अतिप्रचण्डनिजतपोऽनलज्वालाकलापपरिक्षेपमलिनतैः प्रतिशापाक्षरैरिव पारिकांक्षिणां रुद्राक्षमणिभिरभिवेष्टितं, सोदरशशाङ्कसंदेशहारिकाभिस्तारकाभिरिव कर्णपुटाभ्यर्णलग्नाभिः स्फटिकाक्षगुलिकाभिरभिशोभितम्, अगृहीतोत्तरासङ्गम्, अङ्गीकृतकौपीनमात्रपरिधानम्, आस्फोटयन्तमङ्घ्रिपद्मम्, अवरुन्धन्तमध्वनि मिलन्ति सिद्धवधूकुलानि, त्रासयन्तमिव कातरान्, तर्जयन्तमिव शुनासीरभटानपि, गर्जन्तमिव, गायन्तमिव, नृत्यन्तमिव, स्खलन्तमिव, हसन्तमिव, हृदयारविन्दकुहरविहरदुन्मत्तशेखरभावनानैरन्तर्यादुन्मत्तमिव, स्वयमप्यवाप्तसमस्तकामतया किंचिदपि आदृतलोकतन्त्रानुविधानं, त्रिलोचनावतारमप्यत्रिलोचनावतारसोदरम्

सम्पर्कसे कुछ अंशोंमें स्वच्छ और हृदयसे निकलती हुई कोपानलकी ज्वाला पाटलवर्ण जटाओंसे—जो बिजलीकी तरह लगती थी—शरदृतुके मेघको अभिभूत कर रहे थे। त्रिभुवनके मुनियोंका तप शापसे च्युत होता है परन्तु दुर्वासा तप शापसे बढ़ता है इसप्रकार जो त्रिभुवनमुनि-विलक्षण हैं इसप्रकारकी कीर्त्ति समान प्रतीत होनेवाला त्रिपुण्ड्ररेखासे उनका ललाट चित्रित था, उनके गले रुद्राक्ष थे जो ऐसे लगते थे मानो अन्य मुनियों द्वारा दिये गये प्रतिशाप अक्षर हों जो अति प्रचण्ड तपकी ज्वालामें झुलसकर श्यामवर्ण हो गये हैं। कानके पास लटकनेवाले स्फटिकमणिके दाने ऐसे लगते थे मानो दुर्वासाके ऊपर चन्द्रमाके सन्देश लेकर आये हुए तारे हों। उन्होंने चादर नहीं रखी थी केवल कौपीनभर धारणकर रखा था। वह पग पगपर जंभाई लिया करते थे। मार्गमें मिलनेवाले सिद्धवधूसमुदायको वह रोक रहे थे। कायरोंको भयभीत कर रहे थे, इन्द्रके वीरोंको वह तर्जितसे कर रहे थे, वह गरजते थे, गाते थे, नर्त्तन थे, लड़खड़ाते थे, हँसते थे, हृदयारविन्दमें वर्त्तमान शिवजीको निरन्तर भावना करते रहने से वह पागल से हो रहे थे, वह सकल कामना के प्राप्त हो जानेसे लोकाचार का तिरस्कार सा कर रहे थे, वह त्रिलोचन शिव के अवतार

अनसूयागर्भसंभवमप्यत्यन्तकोपनं, अतिकठिनतपोविशेषपरितोषित-गौरीप्रसादसमासादितामपि कयापि विद्याधरकन्यया प्रार्थनामात्रादेव शापभीतया प्रणिपत्य समर्पितां कामपि कनकारविन्दमयीमम्लानमालिकामानयन्तं, आपतन्तमग्रत एव निरर्गलमभिमन्त्र्य मुक्तामिव पाशुपतं शरमनतिलङ्घनीयतेजसं (दुर्वाससं नाम तापसमद्राक्षीत्।) जानन्नपि मनतिक्रमणीयतेजसं दुर्वाससं, जानन्नपि जगदेव निखिलमपलपितुमन्यथयितुं च नैपुण्यं ब्राह्मणस्य, जानन्नपि मुनिकुलन्यक्कारपरिणतां गतिं नहुषस्य, शिष्योऽपि बृहस्पतेः, शीलितमर्मापि धर्मशास्त्रेषु, परिचरितोऽपि निसर्गत एव ब्राह्मणानां, (आ चतुराननादा च कीटपतङ्गेभ्यस्तुल्यवदेव प्रभवन्त्या भगवत्या भवितव्यताया विलासेन) त्रिभुवनाधिपत्यमदान्धीकृतलोचनो धीमानपि सहस्रलोचनो न तं प्रत्यवरुरोह, न तरामुपचचार गिरा, न तमां च प्रणनाम, अपि च न केवलं ववज्ञे, अपि तु पुनरसंभावितेनापि तेन विसर्ज्यमाणामादाय साव-

---

र भी अत्रिलोचनावतार-चन्द्रमा-सोदर थे, वह (न असूया) अनसूया के से उत्पन्न होकर भी अत्यन्त कोपन थे, अत्यन्त कठोर तपस्या के द्वारा ई पार्वती की कृपा से प्राप्त करके कोई विद्याधरसुन्दरी एक माला ि थी, दुर्वासाके मांगते ही उस विद्याधरकन्याने शापके भयसे ा प्रणामपूर्वक दुर्वासाको सौंप दी थी, दुर्वासा उस मालाको लिये वह इन्द्रके आगे आ गये। वह मन्त्रपूत करके छोड़े गये पाशुपत ह बेरोक थे। उनका तेज अलङ्घनीय था।

इन्द्र जानते थे कि दुर्वासाका प्रभाव अनतिक्रमणीय है, इन्द्र जानते ब्राह्मण समस्त संसारको अन्यथा कर सकता है, इन्द्र यह भी जानते जनके तिरस्कारसे नहुषकी कैसी गति हुई थी। वह बृहस्पतिके शिष्य स्त्रके रहस्यका उन्होंने परिशीलन किया था, स्वभावतः वह ब्राह्मणोंकी में परायण थे, तथापि ब्राह्मणसे लेकर कीटपतङ्गपर्यन्त समानरूपसे प्रभाव वाली भवितव्यताके प्रभावसे त्रैलोक्याधिपत्यके मदसे अन्धे होकर, बुद्धिमान् भी इन्द्रने दुर्वासाको देखकर भी सवारी नहीं छोडी, न वचनोंसे उनका किया, और न उन्हें प्रणाम किया।

न्होंने केवल दुर्वासाका अपमान ही नहीं किया, अपमानित होकर

झमेकेन पाणिना मालिकां, पश्यत एव महर्षेः, अनुपनीय मुकुलित मनाघ्राय चान्ततः स्कन्ध एव सिन्धुरस्य निवेशयामास। निवेशि मात्रा च सा निसर्गनिरवग्रहेण वेतण्डेन शुण्डयाकृष्य निष्पिपिषे ॥

पश्यन् पदाग्रमृदितां महता गजेन
मालां प्रसादपरिपाकमयीं मृडान्याः ।
हस्तेन हस्तमभिहत्य स नित्यकोपः
कोपारुणं मुनिरधारयदक्षिकोणम् ॥ २४ ॥

वीरभद्र इव क्रुद्धे वीरमाहेश्वरे मुनौ ।
इतिकर्तव्यतामूढमिन्द्रमैक्षन्त देवताः ॥ २५ ॥

तदनु च—

यावत्सान्त्वयितुं तदन्तिकभुवं धावन्ति मन्दीभव-
त्काकुव्याकुलगद्गदस्तुतिवचोगुम्फा निलिम्पाः स्वयम्
तावद् देवपतिं शशाप कुटिल-क्रूर-भ्रमत्तारक-
भ्रूभङ्ग-व्यतिषङ्गदत्तभुवनातङ्को मुनिः शाङ्करः ॥

दुर्वासाद्वारा दी गई मालाको एक हाथमें लेकर महर्षिके सामनेतान झुकाये अथवा उसकी सुगन्धका आघ्राण किये ही उस मालाको हाथीने दिया। गलेमें डाली गई मालाको हाथीने तत्काल शूंड़से उतारकर तर

अत्यन्त कोपन मुनि दुर्वासाने जब देखा कि पार्वतीकी प्रसादि उस मालाको ऐरावत नामक उस महागजने पैरसे मसल दिया है, इन्द्र हाथसे अपना हाथ मला, तथा उनका नयनकोण कोपसे अरुण हो गया ने

वीर तथा महेश्वरभक्त महामुनि दुर्वासाके वीरभद्रकी तरह क्रु विकर्त्तव्यतामूढ़ इन्द्रकी ओर देवगण देखने लगे ॥ २५ ॥

जब तक देवगण व्याकुल तथा गद्गद् वाणीके साथ स्वयं दुर्वासाको लिये उनके पास जाते तब तक ही कुटिल भ्रूभङ्गके साथ घूमता हुई क द्वारा भुवनको आतङ्कित करनेवाले महामुनि दुर्वासाने देवाधिराज इन्द्र

देया ॥ २६ ॥

येयं त्रैलोक्यराज्यश्रीस्त्वदालम्बेन चेष्टते ।
सैवाद्य त्वदमित्राणां वशमापद्यतामिति ॥ २७ ॥
आलम्ब्य दैन्यमसकृत्पदयोर्निपत्य
संप्रार्थितो मघवता स्तुवता ततोऽयम् ।
शापान्तमाह कथयन्निव लोकरीत्या
गोविन्द एव कुशलानि करिष्यतीति ॥ २८ ॥

तदनु यथागतं गते दुर्वाससि, तावता वैभवेन विनिर्गतोऽप्यकैतोपनततदीयशापसमुत्सारितोत्साहः, समग्रेण मण्डलेन निर्जिहानो काशशाङ्क इव राहुमुखे पतितः, सुरपतिः अभितः प्रसार्यमाणरोषषादमन्दाक्षशबलकटाक्षसहस्रानियमितव्यापारमुखरमुरजमनाहतपटहं क्वणितवीणादिवादित्रं अवसन्नकिन्नरीगानमप्रवृत्तरम्भादिनृत्तसंरम्भं रसितवैतालिकलोककोलाहलं अप्रसक्तवेत्रिहाहारवं अनाशङ्कितभटसिंहनादं अस्तंगतान्योन्यसंकथं असंभावितपीठमर्दकविदूषकालापं,

---

यह राज्यश्री जो तुम्हारे आश्रयमें इस प्रकारकी चेष्टायें कर रही है, वही यश्री तुम्हारे शत्रु असुरोंके वशमें चली जाय ॥ २७ ॥

इसके बाद दीन भावका अवलम्बन करके, बारबार चरणोंपर गिरकर इन्द्रके ा स्तुतिके किये जानेपर दुर्वासाने लोकरीतिके अनुसार शापान्तके संबन्धमें ना ही कहा कि अब भगवान् विष्णु ही कुशल करेंगे ॥ २८ ॥

इसके बाद दुर्वासाके अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चले जाने पर, इन्द्र वैभवके साथ निकले थे उनका वह उत्साह अचानक उपस्थित दुर्वासा से समाप्त हो गया । पूर्णमण्डलसे उदित होकर राहुके मुखमें पड़ने माके समान इन्द्र पुनः अपने नगरमें लौट आये, जहाँ चारो ओर फैं विषाद-लज्जासे युक्त कटाक्षोंसे सारे व्यापार ठप पड़े हुए थे, वीणा आदि बाद्य यन्त्र नहीं शब्द कर रहे थे, कि गया था, रम्भा आदि अप्सराओंका नृत्त नहीं हो रहा हल समाप्त था, वेत्रधारी द्वारपालगण हा हा श ोकका सिंहनाद नहीं हो रहा था, परस्पर वार्तालाप

अश्वहेषितेऽपि सातङ्कसादिकुलं, अङ्घ्रिविन्यासशब्देऽपि सापराधसं दल्लजनं, अपनीतमातङ्गघण्टावलयं, आबद्धमिव मूकमिव बधिरमि मुग्धमिव प्रसुप्तमिव विकलमिव शून्यमिव, विन्यस्तमिव चित्रफल निखिलमपि विबुधबलमाकर्षन्नेव केवलं, आगत्य पुनर्नगरं, आवे वृत्तमिमं गुरवे वृत्तान्तं, अन्तःपुरं प्रविश्य, दुरन्तचिन्तानुबन्धनि न्नितः शयनागार एव जजागार तां रजनीम्। अथ तदानीमेव गू निहितचारनिवेदिततापसशापवृत्तान्तसमाकर्णनलब्धान्तरेण सन्त्रिण भार्गवेण समादिष्टाः, हृष्टाश्च चिरनिरीक्षितरन्ध्रलाभेन, दर्शयिष्यन्तः दृढपरिचितानि समरकौशलानि, सफलयिष्यन्तः साधितानि सह स्त्राणि, समुल्लिखन्तो वैरनिर्यातनप्रकारान्, अपनेष्यन्तश्चिरनिरूढम पयशोमालिन्यं, अभिनन्दन्तो दुर्वाससं, आवेदयन्तः परस्परमभ्यग दृष्टानि शुभनिमित्तानि, विवृण्वन्तो वीरवादान्, विभजन्तः प्रति सैन्यानि सैनिकानां, अवरुन्धन्तश्चारजनसंचारं, आसूचयन्तो गन्तव्य

तिदूषक आदिकी बातें असंभव हो रही थीं, अश्वोंके हिनहिनाने पर भी घुड़सवा आतङ्कित हो उठते थे, चरणशब्दके होनेपर भी कञ्चुकिजन अपराधयुक्त मा लगते थे, हाथियोंके घण्टे उतार लिये गये थे। वह नगर तत्काल बँधा हुआ सा मूकसा, बधिरसा, मुग्धसा, प्रसुप्तसा, विकलसा, शून्यसा, चित्रलिखितसा लग रहा था। नगरमें आकर इन्द्रने उस घटनाकी सूचना बृहस्पतिको दी, अनन्तर उन्हों अन्तःपुरमें जाकर नाना दुरन्त चिन्ताओंसे युक्त हो शयनागारमें जागकर ही वह रात बिता दी।

इसी तरह छिपे हुए गुप्तचरोंके द्वारा दुर्वासाद्वारा दिये गये शापकी बात सुन मन्त्री भार्गवने राक्षसोंको आदेश दिया। राक्षसोंको चिरकालसे प्रतीक्षित लाभसे बड़ी खुशी हुई। अच्छी तरह अभ्यस्त समर-चातुर्यका प्रदर्शन रखनेवाले, सीखे गये महास्त्रोंको सफल करनेकी इच्छा रखनेवाले लेनेकी इच्छा रखनेवाले, चिरसञ्चित अयशको दूर की प्रशंसा करनेवाले, एक-दूसरे से देखे गये शुभ शकुन वीरताकी बातें करनेवाले, सैनिकोंकी सेनाओंका वि बन्द करनेवाले, केवल आत्मीय जनको ही गन

पदमात्रवर्गेषु केवलं, आदिशन्तश्च घण्टापनयनमनेकपानां, अङ्गदा-संवट्टनमश्वोरसानां, अनुच्छ्रयणं ध्वजानां, अवादनं वादित्राणां, अश्वे-लनं च योधानां, अभिवन्द्य पुरोधसं, अनुमान्य योधमुख्यान्, आमन्त्र्य गुरुजनं, अनुज्ञाप्य मौहूर्तिकान्, भावयन्तः प्राचीनान् महासुरान्, पठन्तश्च तेषामेव वेदापहरणवसुधानिमज्जनादीनि प्रच-ण्डानि चरितमङ्गलानि, प्रस्थाय दानवाः कतिचिदतिचिरोपरुद्धकण्डू-लदोर्मण्डलतया कालविपाकपचेलिमया शक्तिमत्तया च, पर्यवसाय-यितुमिव भूधरानङ्गुलिस्फोटेन, परिक्षेप्तुमिव मुखमारुतेन सप्त सागरान्, उन्मूलयितुमिव समूलमेव पातालं, उत्क्षेप्तुमिव दूरमन्तरिक्षं, व्यत्यासयितुमिव विध्यण्डमण्डलं, निर्वापयितुमिव चन्द्रार्कदीपिकां, दग्धुमिव दहनमपि, भङ्क्तुमिव प्रभञ्जनमपि, बन्द्धुमिव पाशिनमपि, हन्तुमिव दुर्दान्तमन्तकमपि, संनह्यन्त्या किंचिदप्यज्ञातकार्यविशेषतया महामात्रकरचलनमात्रपरिज्ञातगन्तव्यदिशा, गगन एव नित्यनिवासेन

स्थानकी सूचना देनेवाले, हाथियोंकी घण्टायें उतार देनेकी आज्ञा प्रदान करनेवाले, प्रधान अश्वोंके संघर्षको बचानेकी आज्ञा प्रदान करनेवाले, पता-काओंके नहीं फहराये जानेकी आज्ञा देनेवाले दानवोंने यात्रा कर दी। उन्होंने बाजे बन्द करवा दिये, योद्धाओंको गरजने से रोक दिया, पुरोहितोंकी बन्दनाकी, मुहूर्त्तज्ञ जनसे अनुमति ली, प्रधानवीरोंकी अनुज्ञा प्राप्तकी, गुरुजनसे पूछा, प्राचीन महासुरोंको याद किया, प्राचीन महासुरों द्वारा किये गये वेदापहरण-वसुधानिमज्जन आदि चरित का पाठ किया। बहुत दिनोंसे रुकी हुई बाहुओंकी बुजलाहटसे तथा कालक्रमसे परिपक्व होनेवाली शक्तिसे वे पहाड़ोंको अङ्गुलीसे मसल देना चाहते थे, सात समुद्रोंको सुखमारुतसे दूर फेंक देना चाहते थे आकाशको ऊपर उड़ा देना चाहते थे, ब्रह्माण्ड-मण्डलको उलट-पुलट चाहते थे, सूर्य तथा चन्द्रमा रूप दीपको बुता देना चाहते थे, ा देना चाहते थे, हवाको भी भग्न कर देना चाहते थे, वरु ते थे, दुर्दान्त यमको मार देना चाहते थे। उनके साथ सेनापतिकी आज्ञामात्र पर विना कार्यविशेषकी जानकारीके अग्रसर होती थी, वह सेना नित्य आकाशवासिनी

कदाप्यनागतां मन्दाकिनीं संभावयितुमापतता पत्येव वाहिनीनां महत्या सेनया साकमागत्य शाखानगरममरावत्याः युगपदाहन्यमान पटहादिबहुविधवाद्यनिर्घोषपोषितकरिलोकबृंहितोपबृंहितभटकोटिसिंहना कोलाहलेन बोधयामासुरनाशङ्कितपरिभवातङ्कसुखशयितानमृताशनान्

क्रुध्यद्दानवयोधनिर्दयकरव्यामर्दभीमध्वन-
न्नानातोद्यनिनादकातरपरिक्रन्दद्दिगन्तद्विपम् ।
जातं प्रातरतर्कितागतमहातङ्कप्रसङ्गक्षण-
प्रक्षुभ्यत्पुनरुद्भटामरचमूनीरन्ध्रमैन्द्रं पुरम् ॥ २९ ॥

अपि च—

संरुन्धन्ति द्विषन्तो नगरमिति समायान्ति रुष्टाः पथीति
प्राकारान्तः प्रविष्टा इति चलति रणो दारुणः संप्रतीति ।
जीवग्राहं गृहीतः सुरपतिरिति च स्वैरमज्ञातमूलाः
सङ्के सङ्के प्रजानां नवनवमभवन् भिन्नभिन्नाः प्रवादाः ॥ ३० ॥

आए हुए सागरके समान लग रही थी, वह सेना अमरावतीके पास आई और उसने एक साथ बजनेवाले बाजेके शब्दोंसे समृद्ध गजोंके गर्जन एवं वीरोंके सिंहनादसे निःशङ्क सोते हुए देवोंको जगा दिया । प्रातः कालके होते ही कुपित दानव योद्धागणके निर्दय करताडनसे भीषणरूपमें बजनेवाले नाना वाद्योंके नादसे कातर होकर दिग्गजगण क्रन्दनकर उठे, अतर्कित रूपमें उपस्थित हाभयके प्रसङ्गसे देवसैनिकगण क्षुब्ध होकर इधर-उधर भटकने लगे, जिससे नगरी भर गई ॥ २९ ॥

नगरको घेर रहे हैं, कुपित होकर मार्गमें आ रहे हैं, प्राका हैं, इस समय भयङ्कर युद्ध चल रहा है, इन्द्र जीवितरूपमें ब इत्यादि नाना रूपके निर्मूल प्रवाद भिन्न भिन्न स्वरू लगे ॥ ३० ॥

तत्क्षणं च युगविगमसमयसंभिद्यमानसप्तार्णवोन्निनादशङ्कावहेन कोलाहलेन नागराणामवबुध्य विद्वषामभिषेणनम्, अनुल्लङ्घनीयतापस-शापानुसंधानकुण्ठीकृतोद्यमोऽपि कण्ठीरव इव करिलोकबृंहितेन परिज्वलितमन्युः, शतमन्युः उत्थाय शयनीयात्, उत्प्रेक्षितसमरसंरम्भया शचीदेव्या ससंभ्रमस्नेहसाध्वसोद्वेगमुपसृत्य स्त्रीस्वभावसुलभेन कार्तर्येण 'मानद, मा कुरु साहसमेवंविधम्, प्रेष्यन्तां प्रेषणीयाः' इत्यभ्यर्थ्य-मानोऽपि तामवधूय, परिजनवधूकरोद्वस्तविस्रंसमानसंव्यानपल्लवः, संरम्भशिथिलपदक्रमः समागम्य चकितसमुद्बुद्धदौवारिकजनोद्घाट्य-मानकवाटिकामूलपुञ्जीभवदनुक्षणायातचारवृत्तान्तसमावेदनसंनह्यत्कुब्ज-वामनजननिरन्तरालिन्दमन्तःपुरद्वारम्, अनाहृत्य किङ्करकरावलम्बनम् अनालोक्य निहितामप्यग्रतो मणिपादुकां, अनादिश्य सैनिकागमनम् अनाकाङ्क्ष्य वैनीतकानयनम्, अङ्घ्रिभ्यामेव परिक्रामन्, अनाकर्ण्य-न्निवृत्तिविज्ञापनान्यध्वनि मिलतां सैनिकानां, आकुञ्चिताभ्यां

तत्काल प्रलयकालमें एक दूसरेसे मिलनेवाले सात समुद्रोंके शब्दकी शङ्का उत्पन्न करनेवाले नगरवासियोंके कोलाहलसे शत्रुओं द्वारा की गई चढ़ाईका खबर प्राप्त करके—यद्यपि अनुल्लङ्घनीय मुनिशापके स्मरणसे इन्द्रका उद्योग शिथिल हो रहा था—तथापि गजगर्जनसे कुपित सिंहकी तरह इन्द्रका कोप प्रज्वलित हो उठा, इन्द्र बिछावन परसे उठे। युद्धकी भयङ्करताका अनुमान करनेवाली शची देवीने झटपट स्नेह, भय एवं उद्वेगके साथ समीप आकर स्त्रीसुलभ कायरपनसे प्रार्थनाकी कि आप मत बोलिये, साहस मत कीजिये, दूतोंको भेज दीजिये, लेकिन इन्द्रने शचीके कथनको ठुकरा दिया, परिचारिका रमणने उनकी गिरती हुई चादर सँभाल दी, वह घबराहटके कारण शिथिल चरणसे बाहर निकले, घबड़ाकर उठनेवाले दौवारिकोंने दरवाजे खोल दिये, वाटिकामें आकर इकट्ठे होनेवाले राजकीय गुप्तचरोंने जो खबरदी तदनुसार तैयार वामनोंसे अन्तःपुरका द्वारदेश परिपूर्ण हो गया, इन्द्रने भृत्यों छोड़कर, सवारीकी प्रतीक्षा किये विना ही, आगेमें रखी और दृष्टिपात नहीं करके, सैनिकोंको विना आज्ञा मलनेवाले सैनिकोंकी लौट जानेकी प्रार्थना नहीं

भ्रूलताभ्यामाकम्पितेन च मुखेन केवलमाकर्णयन्वचनानि चाराणां, अतिसंभ्रमोपसृत्वरमनिवर्त्यसमरसंरम्भमग्रत एव चलन्तमात्मजम् जयन्तमवरुध्य शपथशतैरन्तःपुररक्षणाय निवेशयन्नालयद्वारि, निःसरन्नपि बहिस्ततोऽप्यतित्वरितमालयबाह्यकक्ष्यासमानीतामाबध्य कक्ष्यां, आद्यवीथीमुखोपनीतामादाय दम्भोलिं, अर्धपथोपनीतमवमुच्य वारवाणम्, अधिगोपुरसदेशमानीयमानमारुह्य मातलिसनाथं रथम्, अतिलङ्घ्य संकुलचलदमरभटसंघसंकटम् दुर्गमं गोपुरद्वारम्, अतिक्रम्य निजमपि नासीरम्, अवगाहमानो दानवचमूम्, अलङ्घनीयवचनैरहंप्रथमिकाप्रतिज्ञातविजयैर्दिक्पतिभिर्निरुध्यमानः, चन्द्रोदयारम्भसमुज्जृम्भितसागर इव वेलानियन्त्रितः, क्षणादुद्ग्रीविकाभिलक्ष्यमाणदुर्निग्रहसमराग्रहः शरीरेण केवलमवातिष्ठत सेनामुखे ॥

भीमं भीमेन तस्याथ सैन्यं सैन्येन विद्विषाम् ।
समगच्छत कल्पान्ते सागरेणेव सागरः ॥ ३१ ॥

काँपते हुए सिरसे युद्धके लिये अदम्य उत्साह तथा रोषसे भरे आगे आगे चलनेवाले पुत्र जयन्तको उन्होंने शपथ देकर घरकी रखवालीके लिये नियुक्त किया, आगे बढ़े और घरके अग्रिम भागमें उपस्थित हो काछ बाँधली, पहली गलीमें लाये गये वज्र एवं आधे मार्गमें लाये गये कवचका परित्याग करके गाँवके द्वारके पास लाये गये मातलियुक्त रथपर आरूढ़ होकर, एक साथ चलनेवाले देव-योद्धाओंसे सङ्कीर्ण दुर्गम गोपुर-द्वार पार किया, अपनी ग्राम-सीमा पार की, दानव-सैन्यसे जा मिले, मान्यवचन दिक्पालोंने विजयकी प्रतिज्ञाके साथ लौट जानेका अनुरोध किया, चन्द्रोदय-कालमें बढ़े हुए सागरका नियन्त्रण जैसे तट करते हैं उसी तरह दिक्पालोंके वचनने इन्द्रका नियन्त्रण किया, इन्द्रने गरदन ऊँची करके चारों ओर देखा जिससे उनके समराग्रहका पता चला, वह केवल शरीर लेकर सेनाके सामने आ खड़े हुए।

प्रलयकालमें भयङ्कर एक सागर दूसरे भयङ्कर सागरसे
इन्द्रका भयङ्कर सैन्य शत्रुओंके भयङ्कर सैन्यसे

किंच—

यावज्ज्यावलयावलीढशिखरक्रूरप्रकारध्वन-
च्चापव्यापृतपाणिभिः स्थपुटितं नासीरमासीद्भटैः ।
तावद्देवपतिः क्व दानवपतिः क्वेति प्रवृत्तैः क्रुधा
सेनारक्षिभिरेव तत्र महते युद्धाय बद्धा मतिः ॥ ३२ ॥

तदनु शुनासीर एव स्वनासीरमुपेयुषि, चिरभुक्तभर्तृपिण्डानृण्यसंपादनावसरलाभसंभावितोत्साहतया तृणीकृत्य जीवितानि विगतबलानीव, विधूय समरभयं विकोशानीव शस्त्रास्त्रमण्डलानि, विस्मृत्य भर्तृविमाननाः कादाचित्कीः पुत्रदारपरिभवानिव, मनागप्यनपेक्ष्य जयश्रियमनुपतन्तीमिव मित्रवरूथिनीं, होष्यन्तः शरानलार्चिषि शरीराणि, चेष्यन्तः शरदिन्दुसुन्दराणि यशःकन्दलानि, महिषानिव मतङ्गजान्, सारमेयानिव सैन्धवान्, पांसुकणानिव पदातिगणान्, मशकानिव महारथिकान्, कुसुमविहारानिव कुन्ततोमरमुद्गरप्रहारान्, पटवासवृष्टिमिव

जब तक धनुषकी प्रत्यञ्चाके अग्रभाग द्वारा क्रूरशब्दकारी धनुषपर हाथके व्यापार करनेवाले योद्धागण पुरसीमापर एकत्रित हुए, इतनेमें ही कहाँ है देवेन्द्र तथा कहाँ है दानवेन्द्र ? इस प्रकारसे कहते हुए सेनापतियोंने कुपित होकर महायुद्ध करनेकी ठान ली ॥ ३२ ॥

इसके बाद इन्द्रके पुर-सीमापर आते ही अद्वितीय पराक्रमशाली देवभटोंने इन्द्रके हजार नयनोंको (अपने पराक्रम दिखाकर) सफल किया । वे देवभट चिरकाल तक खाये गये स्वामीके अन्नसे उऋण होनेके उत्साहसे परिपूर्ण होकर उसके लायक अवसरको पाकर उत्साहित थे, वे नंगी तलवारोंको नचा रहे उन्होंने युद्धका भय छोड़ दिया था, उन्हें कदाचित् किये गये पुत्र अ
के पराभवकी तरह स्वामीका अपमान स्मरण हो रहा था, वह
नहीं करके आनेवाली मित्रसेनाकी अपेक्षा किये बिना बाणाग्नि
करना चाहते थे, वे शरद्ऋतुके चन्द्रके सदृश स्वच्छ
वे हाथियोंको भैंसे, घोड़ोंको कुत्ते, पादचारी सैनि
भाले, तोमर एवं मुद्गरोंसे किये गये

बाणवृष्टिमपि मन्यमानाः, हन्यमाना अपि हर्षाट्टहासमुखराः, नखरायुधा इव हरिणार्भकेषु, नागान्तका इव राजिलेषु, दन्तावला इव कदलीवनेषु, दावानला इव जीर्णशाल्मलीगुल्मेषु, निःशङ्कमवगाहमाना दानवेषु, प्रहरन्तः परश्वधैः, कृन्तन्तः कुन्तैः, निपातयन्तः कृपाणिकाभिः, अभिन्नन्तः शतघ्नीभिः, खण्डयन्तो भिण्डिपालैः, अवकिरन्तः शरजालैः, अपविध्यन्तः शक्तिशूलैः, क्षिण्वन्तः क्षेपणिकाभिः, अवबध्नन्तः पाशैः, अभिमृद्नन्तः परिघैः, आकर्षन्तो लाङ्गलैः, आविध्यन्तो मुसलैः, अपहरन्तो जयध्वजान्, अवभिन्दन्तो वारवाणान्, विच्छिन्दन्तो धनुर्गुणान्, विस्रंसयन्तः सारथीन्, प्रवर्तयन्तो रक्तवाहिनीः, परितोषयन्तः कटपूतनाः, लिम्पन्तः शरीराणि रक्तधाराभिः, आवेष्टयन्तः करेष्वान्त्रमालिकाः, परिक्रामन्तो मुण्डमण्डलेषु, परिस्खलन्तः कबन्धेषु, अपश्यन्तः पुत्रानपि रणे हतान्, अतृप्यन्तो यूथंयूथमपि निपात्य प्रतिभटान्, अप्रतिभटा विबुधटाः साफल्यमनैषुरक्षिसाहस्रममरपतेः। आदिश्य च ततः शतमन्युरन्तकमग्रतः सेनामुखे, पार्श्वयोरस्य पवनपावकौ,

---

बाणवृष्टिको अबीरकी वर्षा समझ रहे थे। चोट लगनेपर भी वह हर्षाट्टहाससे मुखरित होते थे, वह हरिणके बच्चोंपर शेरकी तरह, सर्पोंपर गरुड़की तरह, कदली-स्तम्भपर गजराजकी तरह, पुराने सूखे सेमलके वृक्षोंपर दावानलकी तरह, राक्षसोंपर निश्शङ्क भावसे आक्रमण करते थे। वह परश्वध (फरसा) नामक अस्त्रसे प्रहार करते थे, भालोंसे भेदते थे, कटारोंसे काटकर गिराते थे, तोपोंसे चोट करते थे, भिन्दिपाल नामक अस्त्रसे काटते थे, शरजालसे व्याप्त करते थे, शक्ति तथा शूलसे विद्ध करते थे, क्षेपणास्त्रसे प्रहार करते थे, पाशोंसे बाँधते थे, परिघोंसे मसल देते थे, लाङ्गलोंसे अपनी ओर खींचते थे, मुसलसे ताड़ित करते थे, जयध्वजा छीन लेते थे, कवचका भेदन करते थे, धनुषकी रस्सी काट देते थे, सारथियोंपरसे गिरा देते थे, रक्तकी नदियाँ बहा देते थे, रण-चण्डियोंको रक्तधारासे शरीरको पोतते थे, हाथोंमें अन्त्रमालिका धारण दलपर चलते थे, कबन्धों पर फिसलते थे; युद्धमें मरते हुए पुत्रोंको भी करते थे, दलके दल शत्रुओंका संहारकरके भी तृप्ति का

आगे रहनेका आदेश दिया, वायु तथा अग्नि

पृष्ठतः स्वस्य पुण्यजनेश्वरं, अन्तिक एव धनदसाहवशूरान् सभाजयं अध्वनि शिबिरे च विद्विषामपांपतिं, आयुधक्षतान् भिषजयितुमाश्विनेय निशीथयोधिनीनां वैरिवरूथिनीनां निशैव मा भूदिति सन्ततवासर भावाय सहस्रभानुमप्यभितः प्रकाशितुम्, प्रतीक्षमाणोऽपि जयश्रियम्, परिशङ्कमानश्चेतसि तापसशापविपाकमाकस्मिकम्, किमप्यलीकनभोवि-भागसीमाधिपत्यलक्षणां लक्ष्मीमुद्दिश्य कलहायमानयोरमरासुरवाहिन्यो-रज्ञानविजृम्भितोपालम्भसंभवमट्टहासमिव परमेष्ठिनो घनस्तनितमनभ्र एव दारुणमशृणोत् । प्रहितोऽपि सेनामुखे पवनः पदे पदे यदावेद्यमावे-दयितुमाववृते तदेव तस्य प्रतिकूलपवनलक्षणम् दुर्निमित्तं परिणेमे । अस्रंसत च करादस्य दम्भोलिः, तदप्यायुधविस्रंसनमशनिपतनं चेति द्वेधा बभूव दुश्शकुनम् ॥

अत्रान्तरे रणहतोभयसैन्ययोध-
निर्भिन्नमण्डलतया तपनः समन्तात् ।

देवको उनके दोनों भागोंमें रखा, अपने पीछे वरुणको खड़ा किया । समीपमें कुबेर तथा युद्धमें शूर देवोंको रखा, मार्गमें तथा शत्रुओंके शिविरमें वरुणको व्यवस्थापित किया, आहतोंकी चिकित्साके लिए अश्विनीकुमारों को नियुक्त किया, शत्रु रातमें लड़ते हैं अतः रात नहीं हो इसके लिए बराबर दिन ही बनाये रखनेके लिए इन्द्रने सूर्यको आदेश दे दिया, जयलक्ष्मीकी प्रतीक्षा करते हुए भी वह आकस्मिक तापस-शापकी चिन्ता किया करते थे, इसी समय इन्द्रने मेघका गर्जन सुना जो बिना अस्तित्ववाले नभोविभागपर अधिकार स्वरू लक्ष्मीके लिए झगड़नेवाली देव-सेना एवं असुर-सेनाके विजृम्भित उल पूर्ण अट्टहासके समान लग रहा था । सेनाके आगे भेजे गये पवन कुछ कहनेकी नीयतसे जो लौटना आरम्भ किया उससे उसके प्र अपशकुनकी सूचना मिली । इन्द्रके हाथसे वज्र गिर गया, रूप अपशकुन ही हुआ, इस प्रकार इन्द्रके दो अपशकु

इसके बाद युद्धमें मारे गये दोनों ओरके

उद्दामदानवधनुर्गलदुत्प्रबन्ध-
नाराचदारिततया च शनैस्तिरोऽभूत् ॥ ३३ ॥

अतिप्रबन्धादिषुजालवृष्टरपक्रमाच्च द्युमणेरकाण्डे ।
आसीत्तमिस्रा जयदा रिपूणां पचेलिमा भाग्यपरम्परेव ॥ ३४ ॥

तत्क्षण च पुनरनुक्षणोपचीयमानममरबलं, अपक्षीयमाणमात्मबलं च निरीक्षितुमप्यतितिक्षवः, तरक्षव इव बुभुक्षिताः, दन्दशूका इव दण्डघट्टिताः, बलिबाणशम्बरजम्भनमुचिविरोचनमुखा महासुराः सरभसमवमुच्य वारवाणं, अवबध्य गोधाङ्गुलित्राणं, अपिनह्य निषङ्गमक्षयशरपूरितोत्सङ्गम्, अधिरुह्य शताङ्गमायोजितखरतुरङ्गम्, आबध्य निटिलेषु भ्रुकुटीविभङ्गम्, आसेव्य वीरपाणं, आलम्ब्य संशप्तकव्रतम् अनुज्ञाप्य परस्परम्, आपूरयन्तो दिङ्मुखानि गुणध्वनिभिः, अवभ्रंशयन्तो गगनतलादुडून्यट्टहासैः, विसंज्ञयन्तः खड्गविच्छुरणेन वीक्षितुमागतानि सिद्धचारणमण्डलानि, विस्मापयन्तः समरसंरम्भेणैव

भेदन किये जानेके कारण एवं दानवोंके प्रचण्ड-धनुषसे प्रेरित बाणोंसे विदारित होनेके कारण सहसा सूर्य छिप गया ॥ ३३ ॥

बाणजाल की अतिवृष्टि एवं सूर्यके असमयमें छिप जानेसे फैली हुई अन्धकारमयी निशा दानवोंके फलदानोन्मुख भाग्यकी तरह उनके लिए विजय प्रदा हुई ॥ ३४ ॥

तत्काल अनुक्षण बढ़नेवाले अमर-सैन्य तथा अनुक्षण घटनेवाले अपने सैन्य
नहीं सह सकनेवाले बलि, बाण, शम्बर, जम्भ, नमुचि, विरोचन प्रभृति
भूखे शेरकी तरह तथा दण्डाहत सर्पकी तरह झटपट कवच धारण करके,
ने बने हुए दस्ताने धारण करके, अक्षय बाणोंसे परिपूर्ण निषङ्ग
ी अश्वोंसे युक्त रथपर आरूढ़ होकर, ललाट पर भ्रुकुटी चढ़ा
द-पान करके, योद्धाका व्रत लेकर, एक दूसरे की अनुज्ञा
ाओंको प्रतिध्वनित करते हुए, अट्टहास द्वारा तारों
द्ध देखनेके लिए आये हुए सिद्ध-चारणगणोंको

कर्मन्दिनमपि कलहानन्दिनम्, उत्सारयन्तः पादातमूरुवेगेन, परिचूर्णयन्तो रथान् परिघाभिघातैः, विद्रावयन्तो हयान् करतालिकाभिः, विधूर्णयन्तो मतङ्गजानङ्गुलीयन्त्रणेन, संवर्तमारुतावर्तितसागरगर्तदुर्दर्शवक्त्रविवरोल्लसल्लेलिहानानिजरसनावलोकनजनितसाध्वसध्वस्तचेतनमासाद्य सेनामुखे निविष्टमन्तकम्, अपहृत्य तदीयमेव कालदण्डममोघं अभिहत्य तेनैव तम्, आदिमं जयमापेदिरे ॥

कालदण्डहतस्यास्य कण्ठे प्राणा जुघूर्णिरे ।
अन्तकं यद्धतं नेतुमन्तकोऽन्यो न विद्यते ॥ ३५ ॥

पार्श्वतस्तस्य परे केचिदतिचिरोपरोधसंवर्धितप्रतिघानलव्यतिकरविशेषभीषणज्वालाकलापदुरापमपि परिवृत्य जातवेदसं, प्रशमय्य परुषहुंकारभयंकरैर्मुखमारुतैरस्य दुःसहं ज्योतिः, अपकृष्य वाहनम् मेषमग्रचरणग्राहं, आहृत्य शक्तिमपि बलादस्य हस्ततलात्, 'अरे रे लब्धोऽयमन्नहरः क्रतुभुजां हव्यवाहो नाम निर्जरापशदः, तदद्य

तलवारकी चमकसे आश्चर्यमें डालते हुए, युद्धके संनाहसे कलहसे आनन्द पाने वाले कालको चकित करते हुए, पादचारी सैन्यको भयङ्कर वेगसे तितर-बितर करते हुए, परिघनामक शस्त्रके आघातसे रथोंको चूर्ण करते हुए, हाथ की तालियोंसे अश्वोंको भड़काते हुए, अङ्गुलीसे दबाकर हाथियोंको नचाते हुए, प्रलयकालिक संवर्त्त वायुसे उलटाये गये समुद्रके गर्त्तकी तरह दुर्दर्शनीय मुखविवरसे निकली हुई अपनी जीभके देखनेसे भयभीत अतएव गत-चेतन यमराजको सेनाके आगे खड़ा पाकर उसका ही कालदण्ड छीनकर उसीसे यमराजको आहत किया, वही उनकी पहली जीत रही ।

कालदण्डसे आहत यमराजके प्राण उसके कण्ठोंमें ही घूमते रहे, मारे गये यमराजको ले जानेवाला दूसरा यमराज नहीं था ॥ ३५ ॥

उसके एक भागमें कुछ दूसरे दानवोंने चिरकालिक उपरोध ज्वालापूर्ण अतएव दुराप अग्निदेवको पाकर अपने परुष हुंव मारुतसे अग्निदेवके दुःसहज्योतिको शान्तकर दिया, अग उनके वाहन मेषको खींच लिया, उनके हाथसे बलपू छीन लिया, "अरे रे, यही है अग्नि जो देवोंके लि

निर्वापयतैनमुदकुम्भैः, निक्षिपतैनमापूपिकानां वशे महानसेषु, सैवं सैवमुद्बोधयतैनमुचितैर्मुखमारुतैः, हस्ते कुरुत चैनमद्यैव दग्धुममरावतीं, परित्यजत रे रे बालिशा वाडवोऽयं शिखां प्रदर्शयति' इति परिहसन्तः परिक्षिपन्तस्तर्जयन्तस्ताडयन्तश्च पलाययामासुरसुरभटाः।

ततः समित्याहितमसुरभटैस्तदत्याहितमालक्ष्य सख्युराशुशुक्षणेः, क्षणेन सज्जीभूय भूयसा वेगेन सव्यापसव्यानि, संचरन्मण्डलानि, चण्डलाघवोत्क्षिप्ततरुकाण्डषण्डमाहिण्डमानोपलखण्डताण्डवोद्दण्डम्, अतिसंभ्रमभ्रमितपांसुसांसलतृणपूलसंघसंगतकङ्कगृध्रवायसादिविहङ्गमम्, अतिविशङ्कटशंकरशिरोघटितविकटजटाजूटसंकटभ्रमदभ्रसरिज्जलनिर्झरझलझलघोषभीषणझंकारमुखरितनभोविभागम्, आलम्ब्य युगविगमोचितं रूपम्, आपतन्नसुरबले, विधूर्णयन् जीर्णपर्णमिव दिक्षु विदिक्षु चाश्वीयम्, अवचूर्णयन् रथषण्डमारण्यमिव तरुकाण्डम्, अवकिरन्नुपलखण्डानिव मदोच्चण्डानपि वेतण्डान्, अन्धीकुर्वन् पदातिजातम्, अवरुन्धन् सेनापतीन्, परावर्तयन्नस्त्रशस्त्राणि, प्रभञ्जयन्नञ्जसैव जय-

---

गया यह, यह देवाधम है, आज इसे घड़ेके जलसे बुतादो, इसे पाचकोंके जिम्मे रसोई घरमें रखदो," "नहीं, इसे मुखमारुतसे प्रज्वलित करो और इसे अभी अमरावतीको दग्ध करनेके लिए हाथमें लेलो," "छोड़ो इसे, अरे मूर्खो, यह बड़वानल है, शिखायें प्रकट करने लगेगा" इस प्रकारसे उपहास करते हुए वे दानवगण देवोंको तर्जित एवं ताड़ित करते हुए भगाने लगे।

इसके बाद युद्धमें अपने मित्र अग्निदेवपर किये गये भयङ्कर अपमानको देखकर वायुदेव तुरत तैयार हो गये, दायें-बायें पैतरा किया, भयङ्कर वेगके कारण उखाड़ फेंके गये वृक्षोंको उखाड़ फेंका, पत्थरके टुकड़ोंका ताण्डव-त्य प्रस्तुत किया, अत्यन्त वेगसे घूमती हुई धूलके साथ मिले तृण एवं कङ्क ादि पक्षियोंको नचाते हुए आकाशमें अतिभयङ्कर रूपमें घूमती हुई पस्तकपर अवस्थित गङ्गाके जलके भीषण झलझल शब्दसे गुञ्जन कालका रूप धारण किया, असुर-सैन्यपर टूट पड़े, अश्वबलको ा दिया, जङ्गलके वृक्षकी तरह रथोंको चूर्णकर दिया, रकी तरह उलट दिया, पादचारी सैन्यको अन्धा बना स्त कर दिया, जयध्वजोंको तोड़ दिया, महासुरोंको

ध्वजान्, परिस्खलयन्महासुरानपि, संवर्त इव मारुतः समरसीमनि सर्वतोऽप्यक्रमेण पराचक्रमे । यावदित्थमस्पन्दत गन्धवाहः, तावदावर्तितलोचनो विरोचनः, प्रकटितसमराडम्बरः शम्बरः, सावष्टम्भो जम्भः, समरमदोल्बणो बाणः, संग्रामैकरुचिर्नमुचिः अतिबली च बलिः, आलक्ष्य वक्त्राणि परस्परम्, ईषदिव स्मयमानाः, विस्मयमानाः पराक्रमे बिबुधानामिदमूचिरे । हन्त कथममरा अपि पराक्रमन्ते, तेषु च दूत्योचितसंचारमन्थरः श्वा मातरिश्वा ।

संरुन्धते निभृतमन्तरपि द्विजा य-
मन्नं यमाहुरपि कीटसरीसृपाणाम् ।
यो जायते शिथिलशूर्पपरिभ्रमैर-
प्योजायते कथमसावपि गन्धवाहः ॥ ३६ ॥

अथवा नैतावदस्मिन्नभिनिवेष्टव्यमस्माभिः । अनुकूल एव खल्वयमस्माकमाशुगानलज्वालासंधुक्षणे सर्वथापि ॥

ी डिगा दिया । इस प्रकार वायुदेव युद्ध-क्षेत्रमें एक साथ अपना पराक्रम देखलाने लगे ।

वायुदेवने जब इस प्रकार प्रदर्शन करना प्रारम्भ किया, तब वैरोचनिने अपना नयन उधर घुमाया । शम्बरने युद्धका आडम्बर प्रकट किया । जम्भने कोप किया । बाणने युद्धका मद प्रकट किया । नमुचिने युद्धकी इच्छा प्रकट की । बलिने अतिशय बल प्रकट किया । उन लोगोंने एक दूसरेका मुख देखा, देवोंके पराक्रमपर आश्चर्य प्रकट किया, और कहा—

हन्त, अब देवगण भी पराक्रम दिखाने लगे ? उन देवोंमें भी दूतकर्मपरायण मन्दगति यह कुत्ता वायु भी पराक्रम दिखा रहा है ?

जिस वायुको ब्राह्मण भी अपने भीतर प्राणायाम द्वारा बन्द कर लेते हैं, जिसे सर्वोंका आहार कहा जाता है, जिसकी उत्पत्ति शिथिल सूपके परिचालनसे हुआ करती है, वह वायु भी इस समय कैसा पराक्रम प्रकटकर रहा है ॥ ३६ ॥

अथवा—इस पर हम लोगोंको इतना नहीं बिगड़ना चाहिये । यह तो हमारे बाणानलको प्रज्वलित करनेमें सर्वथा सहायक ही होगा ।

यश्चेष्टतेऽवकाशेषु ये चाप्येनं समाश्रिताः ।
निरुन्धीमहि तान् सर्वान्नीरन्ध्रे शरपञ्जरे ॥ ३७ ॥

इति कतिपये दैत्या वात्यानिबर्हणकौतुका-
द्धनुरनुगुणं यावज्ज्यावल्लिभिः सह युञ्जते ।
प्रसभमभितस्तावत्सावज्ञदैत्यभटोज्झिता
दिशि दिशि जगत्प्राणप्राणच्छिदो न्यपतञ्छराः ॥३८॥

वोऽवर्कशक्रवरुणानलदैवतान्य-
प्यस्त्राणि निर्जरवरैरभिमन्त्रितानि ।
ईशांबभूवुरसुरेषु न शासनानि
राज्यच्युतस्य नृपतेरिव नागरेषु ॥ ३९ ॥

दनुजभुजविकृष्टकोदण्डदण्डोपसंपातुक-
ज्वलदनलदुरापनाराचधारासमीरहताः ।

जो अवकाश पाकर पराक्रम दिखाता है तथा जो इसके आश्रित हैं, उन सभीको इस निश्छिद्र-शरपञ्जरमें हम बन्द कर लें ॥ ३७ ॥

इस तरह कुछ दैत्य जब तक वात्या (आंधी) को बंद करने की इच्छासे अपने समर्थ धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाते, तभीतक चारो ओरसे तिरस्कारकी भावनासे भरे हुए दैत्ययोद्धाओं द्वारा छोड़े गये बाण वायुकी प्राणवायुका हरण करनेके लिये गिरने लगे ॥ ३८ ॥

देवों द्वारा उत्कृष्ट मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित वायव्यास्त्र, इन्द्रास्त्र, सूर्यास्त्र तथा आग्नेयास्त्र भी असुरोंपर कारगर नहीं हो रहे थे, जैसे राज्यच्युत नृपतियोंके शासन नगरवासियोंपर प्रभाव नहीं रखते हैं ॥ ३९ ॥

दानवों द्वारा आकृष्ट धनुषसे छूटनेवाले प्रज्वलित अनलोपम बाणकी अनवरत वर्षासे आहत देवगण प्रलयकालमें नृत्यपरायण शिवकी भूषामें उपयुक्त सर्पके प्रतिमुखमें पड़नेवाली वायुकी स्थितिको प्राप्त करने लगे । अर्थात् जैसे प्रलयकालमें

युगविगमसमुच्चलच्चण्डचण्डीशभूपोरग-
प्रतिभयमुखवातजातां दशामुज्झगुर्निर्जराः ॥ ४० ॥

प्रचण्डे च वलति पवमाने, तूलवदुत्सार्यमाणेषु दूरत एव वारिधरेषु, सागरानपि शोषयतस्तस्य सनोडमागन्तुमनीहमानेषु च यादोगणेषु, स्वात्मैकशेषतया भग्नचेताः प्रचेताः, प्राकृतलोकसाधारणस्तटस्थ एव बहिरवतस्थे । अपि च रिपुचमूसमूहसमुत्सृज्यमानशरवर्षधर्षितेषु वर्मसु, भिद्यमानेषु चर्मसु, कर्मदेवाः 'कस्मादयमस्माकमाकस्मिको बुद्धिविपर्ययः, कस्मै वयमसुरैर्युध्यामहे, कस्य हेतोर्वध्यामहे, वुध्यामहे न हेतुमस्मिन्नायासे, के नो देवाः के च नो दानवाः, संभृत्य तपांसि दुश्चराणि संप्राप्ता वयममरपदम्, केन शक्या निग्रहीतुम्, केन शक्या अनुग्रहीतुम्, अधिष्ठास्यति यः स्वर्गं, अतिथयस्तस्य वयं भवाम' इति कृतनिश्चयाः संमन्त्र्य परस्परं संघशोऽपचक्रमुः समन्ततोऽपि समरमुखात् । अथ ये केचिदाहवमखे हुतशरीरा दनुजवीरा देवभावमापद्य दिवमारूढा गूढाभिसंधयस्ते किल

नृत्यासक्त शिवके भूषणसर्प सामने पड़नेवाली वायुको पीते जाते हैं उसी तरह दानवों द्वारा आकृष्ट धनुषसे छूटनेवाले बाणकी अनवरत वर्षासे देवोंका क्षय होने लगा ॥ ४० ॥

हवा जोरोंसे बहने लगी जिससे मेघ रुईकी तरह उड़ाये जाने लगे, समुद्रके शोषणकी शक्ति रखनेवाली उस हवाके समीपभी आनेकी क्षमता यादोगणोंमें नहीं रही, स्वमात्र शेष रह जानेके कारण वरुणका उत्साह समाप्त हो गया; वह साधारण पुरुषकी तरह तटस्थ रूपमें बाहर बैठे रहे । शत्रुसमूहद्वारा छोड़े गये बाणोंकी वृष्टिसे कवच अवसन्न होने लगे, चर्म छिन्न-भिन्न हो गये, तब कर्मदेवोंने सोचा—किस कारण हमारी बुद्धि विपरीत हो रही है, किस फलके लिये हम असुरोंसे लड़ रहे हैं, इस प्रयासका फल हम नहीं समझ रहे हैं, हमारे लिये देव कौन हैं ? दानव कौन हैं ? हम तो कठोर तप करनेके बाद अमरत्व प्राप्तकर सके हैं, न कोई हमारा निग्रहकर सकता है, और न कोई अनुग्रहकर सकता है । जो स्वर्गका अधिकारी रहेगा हम उसीके अतिथि रहेंगे । इस तरहका निश्चय करके कर्मदेव दलबनाकर युद्धक्षेत्रसे खिसक गये ।

कुछ ऐसे दानव भी थे जिन्होंने युद्धमें शरीरत्याग करनेके कारण देवत्व प्राप्त

सहृदया इव कंचित्कालमहृदया एव परिक्रम्य, परिज्ञातमर्माणः सवता निर्वापयामासुरतर्किता एव गीर्वाणबलम्। अपसरतः कर्मदेवान्, अभिघ्नतो दैत्यदेवान्, आपततः शरानाशीविषानिव दृष्टिविषान्, उत्सर्पतो विशृङ्खलमसुरभटानुल्लङ्घितवेलानिव कल्लोलान्महोदधेः, अप्रभवतः सेनापतीन्, अप्रतिपत्तिमूढमपि पश्यन्तः स्वामिनम्, अपश्यन्तस्त्रातारम्, अवशा देवमुनिशापतेजसा प्रविश्य हृदयानि प्रक्षोभ्यमाणाः, स्तब्धा इव, मुग्धा इव, दग्धा इव विषानलैः, दिग्धा इव मोहनचूर्णैः, लुब्धाः परम् जीवितेषु, लब्धामपि जयश्रियम् चिरादीषद्विवेकसुनियन्त्रणेन क्षणिकदुर्मन्त्रणेन विनाशयन्तः, पश्यन्तोऽप्यचक्षुषः, शृण्वन्तोऽपि बधिराः, जानन्तोऽपि जडाः, परिगृहीता इव दुर्यशसा, परिष्वक्ता इव भाग्यविपर्ययेन, विस्मृत्य कुलशीलानि, विसृज्य निःशेषमपत्रपां, अवरोप्य निषङ्गम्, आवेशयन्तः पृष्ठतो बुद्धिं, अवमुच्य

किया था, वे दानव देव कुछ दिनों तक निष्क्रियभावसे सहृदय बनकर अपने अभिप्रायको गुप्तरखकर देवोंके सारे रहस्य जान लिये, और अपने प्रयत्न द्वारा उन्होंने देवोंके सैन्यको हतोत्साह कर दिया।

उनकी मन्त्रणासे हतोत्साह देव-सैन्य भागते हुए कर्मदेवों, प्रहार करते हुए दैत्यदेवों, दृष्टि विष सर्पोंकी तरह गिरते हुए बाणों, इतस्ततः विशृङ्खल भावसे वेला नहीं लांघनेवाले सागरोंके तुल्य आते हुए दैत्यों, अशक्त सेनापतियों और किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्वामीको देखकर किसी रक्षकको नहीं देखते हुए, मुनिप्रदत्त शापके प्रभावसे विघटित हो गये, ऐसा लगता था मानो मुनिशापने उनके हृदयमें पैठकर उन्हें क्षुभितकर दिया हो, वे स्तब्ध हो रहे थे, वे किंकर्त्तव्यविमूढ़से लगते थे, वे विषानलसे दग्धसे हो रहे थे; वे मोहनचूर्ण से प्रभावितसे हो रहे थे, उन्हें केवल प्राणोंका लोभ था, मिली हुई जयलक्ष्मीको भी वह थोड़ेसे विवेकके नियन्त्रित हो जानेके कारण दैत्योंकी दुर्मन्त्रणाके चलते नष्टकर रहे थे। वे देवगण उस समय देखते हुए भी अन्धे, सुनते हुए भी वधिर और जानकर भी जड़ हो रहे थे, उन्हें दुर्यशने परिगृहीतकर लिया था, उन्हें भाग्यविपर्ययने आलिङ्गितकर लिया था, वह अपना कुलशील भूल गये थे, लज्जा खो चुके थे, उन्होंने तरकस उतार दी, बुद्धिको पीछेकर दिया, विजयकारी आयुध छोड़

जयायुधानि, आददाना भिक्षाकपालानि पाणिभिः, आसर्गादा च महाप्रलयादध्वरहविर्भिरेव द्विजन्मनामविश्रान्तपरिपुष्टतयेव, प्राप्ते समरे सायुधाश्च, सवाहनाश्च सैकता इव सेतवः, सर्वतोऽपि विजघटिरे विबुधभटाः ॥

धावद्दैवतयोधयूथपदवीसंरोधकौतूहल-
क्रामद्भामरघोरवैरिपरिपन्नासीरसीमोद्भवैः ।
भेरीभांकरणैरमर्त्यनगरीसंवर्तमौहूर्तिकैः
संभ्रान्ताः प्रतिपेदिरे युधि निवृत्ताशा दिगीशा दिशः ॥४१॥

वल्मीकेष्वहयो वसन्ति मुनयो घोराः समीराशनाः
कान्तारेषु च कन्दरेषु लवणे सिन्धौ क्व वातस्थितिः ।
आक्रान्ते भुवने परैस्तृणमपि स्प्रष्टुं न शक्यं मया
किं कर्तव्यमिति व्यलीयत जवाद्दैत्याशुगेष्वाशुगः ॥४२॥

दिये, हाथोंमें भिक्षाके पात्र ले लिये, सृष्टिसे लेकर प्रलयपर्यन्त यज्ञके हव्योंसे ही ब्राह्मण सदा पोषित होते आये हैं ऐसा निश्चयकर लिया, और युद्धके उपस्थित होनेपर आयुध तथा वाहनके रहनेपर भी बालूकी भीतकी तरह चारों ओर बिखर गये ॥

भागनेवाले देव-सैन्यके मार्गको रोकनेकी इच्छासे इधर-उधर चलते हुए भयङ्कर शत्रुगणकी सीमापर होनेवाले वाद्य-शब्दोंसे विजयके विषयमें निराश दिक्पालगण घबड़ाकर भाग खड़े हुए, वह वाद्य ऐसा प्रतीत होता था मानो देवपुरीके प्रलयकालकी सूचना देरहा हो ॥ ४१ ॥

हवापीकर रहनेवाले भयङ्कर तपस्यापरायण सर्पगण वल्मीकोंमें निवास किया करते हैं, वनों कन्दराओं तथा लवणसिन्धुमें कहाँ हवाकी सत्ता बच गयी है, शत्रुओं द्वारा संसारपर अधिकार कर लिये जानेके बाद हम एक तृण भी नहीं छू सकते हैं, फिर हमको क्या करना चाहिए इस प्रकार सोचकर हवा शीघ्रतापूर्वक शत्रुओंके बाणोंमें लीन हो गई ॥ ४२ ॥

(अनन्तरमित्थमतर्कितमनिमित्तमपध्वंसमानमसुरबलमभितोऽपि वि-
प्रकीर्णमिव भुवि निपत्य गगनतलम् परिवहदिव भिन्नमर्यादमर्णवस्रोतः,
शतशः परीक्षितमपि सौहार्दे सहस्रशो गृहीतजयमपि समरसंमर्दे,
कदाप्यशिक्षितायुधग्रहमिव अनाकर्णितसंग्रामसंकथमिव, वायसयूथमिव,
वानरानीकमिव, केरलसैन्यमिव, ग्रामपालकजालमिव, करतालिका-
मात्रकातरममर्त्यबलमप्यालोकयन्, दशभिः शतैरक्ष्णां वासवः स्वयमेव-
मालोचयामास। (अहो दुर्वाससो ब्राह्मण्यम्,) अहो निगमागमप्रामाण्यम्,
अहो पाशुपतेषु माहात्म्यम्, अहो दुर्निमित्तेषु याथार्थ्यं, अहो कर्म-
परिणतेः प्राबल्यम्, अहो देहिषु श्रियश्चाञ्चल्यम्, अहो पुरुषकारस्य
वैफल्यं, अहो परमेष्ठिनः कौशल्यं, आहवो नाम कियानयं, असुरा नाम
कियन्त इमे, कीदृशाः पलायन्ते, कीदृशाः पराक्रमन्ते, किं बन्धुभिः,
किं सचिवैः, किं बलेन, किं धनेन, किमनेन दम्भोलिना, किमन्ततोऽपि
मया, कथं दृश्या दाराः, कथं दृश्याः पौराः, किमतो निहतेन जीवितेन,

---

इसके बाद अतर्कित रूपमें नष्ट होते हुए शत्रुबलके चारों ओर फैले हुए, मर्यादालङ्घन करके पृथ्वीपर गिरकर बहनेवाले आकाशकी तरह प्रतीत होनेवाले, एवं सागर प्रवाहकी तरह लगनेवाले देवसैन्यको जब इन्द्रने देखा कि वह युद्धमें अनेकवार जय प्राप्त करनेवाला देवसैन्य ऐसा लग रहा है मानो उसने कभी अस्त्र धारणकी शिक्षा ही नहीं पाई हो, कभी युद्धको कथा ही नहीं सुनी हो, वह कौओंकी तरह, वानरोंकी तरह, केरलसैन्यकी तरह, ग्राम-पालकजनकी तरह हाथकी तालीके बजने मात्रसे कायर हो उठा है, तब इन्द्रने हजारनेत्रों द्वारा अपनी ओर ही देखा और विचार किया—आश्चर्यजनक है दुर्वासाका ब्राह्मण्य, धन्य है शास्त्रोंकी प्रामाणिकता, विस्मयजनक है शिवभक्तोंका माहात्म्य, अप-शकुन बड़े यथार्थ होते हैं, कर्मपरिपाक बड़ा प्रबल होता है, प्राणियोंकी लक्ष्मी बड़ी चञ्चला होती है, पुरुषका प्रयास कितना निष्फल होता है, ब्रह्माकी चतुराई आश्चर्यकर है, यह युद्ध क्या था, यह दानव कितने थे, कैसे देवगण भागते हैं, और किस तरहके दैत्य पराक्रम दिखा रहे हैं, मुझे अब बन्धुओं, मित्रों, मन्त्रियों, सैन्यों तथा धनसे क्या प्रयोजन है? मैं अब अपनी स्त्रियोंको कौन-सा मुँह दिखलाऊँगा, पुरवासियोंका सामना कैसे करूँगा? इस मुर्दा जीवनसे

विपरीतो विधिरितोऽपि, न चिकीर्षामि सौवर्गमाधिपत्यं, न जिहीर्षामि किं करिष्यति दानवानामौद्धत्यं, यावदीदृशोऽहं न कस्यचिद्दृष्टिगोचरे पतेयं तावदस्मिन्नेव समरे तनुं त्यजामीति संनह्य पुरश्चरन् शचीपतिरशृणोदन्तरिक्षगां वाणीम् ॥)

अहो ते शक्र धीमान्यमग्रे भाव्यं किलान्यथा ।
अन्तर्धेहि रणादस्मादन्तर्धेहि च मद्गिरम् ॥ ४३ ॥
इत्याकाशगिरा शक्रो मत्या च क्रूरया स्वया ।
यावद्दोलायते तावदागत्यावोधयद्गुरुः ॥ ४४ ॥

हन्त कथमेतदमरपते धीमतोऽपि ते दुर्व्यवसितम् । अविदितं न ते वेदितव्यं, अवशेषितं वा गुरूणामुपासनं, किं न जानासि भवितव्यतां, किं वाभिमन्यसे जयश्रियो नैयत्यम् । ननु श्रूयत एव पुराणेषु भवता, यत्किल मालिसुमालिसङ्गरे महति परिवर्तमाने पराचीने पतगपतौ

क्या लाभ ? इससे अधिक अब विपरीत भाग्य भी क्या करेगा ? अब मैं स्वर्ग का राज्य नहीं करना चाहता हूँ, मैं अब दानवों की उद्धतता का अपहरण नहीं करना चाहता हूँ । इस स्थितिमें जब तक मैं किसीके सामने नहीं पड़ता तभी तक इसी युद्धमें शरीर त्याग कर देता हूँ, ऐसा निश्चय करके इन्द्र आगे बढ़े और उन्होंने तत्काल यह आकाशभाषित सुना—

हे इन्द्र, तुम्हारी बुद्धि आश्चर्यजनक रूपमें मारी गई है, अजी, होनहार कुछ दूसरा है । हमारी बात हृदयमें धारण करो और इस युद्धसे अलग होकर कहीं छिप जाओ ॥ ४३ ॥

इस प्रकारकी आकाशवाणी तथा अपनी कठोर बुद्धिके बीचमें शक्र संदेह दोलाधिरूढ़ हो रहे थे इतनेमें ही बृहस्पति वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने इन्द्रको समझा दिया ॥ ४४ ॥

हाय, देवराज, बुद्धिमान् होकर भी आप यह क्या कर रहे हैं ? आपको कुछ ज्ञातव्य अविदित नहीं है, गुरुजनकी सेवा शेष नहीं है, क्या आप भवितव्यताको नहीं जानते हैं ? क्या आप विजय-लक्ष्मीको शाश्वत मानते हैं ? आपने तो पुराणोंमें सुना ही है कि पुराने समयमें जब माली तथा सुमालीके

भगवतापि परावृत्ते। अन्धकेन किलेदमधिष्ठितं त्रैलोक्यम्। विध्यण्डान्येव कियन्ति विजितानि तारकेण। तदलमनुस्मर शापान्तवचनमत्याश्रमस्य मुनेः। भवेयुरपि कदाचिदन्यथा भाषितानि महेश्वरस्य, न तु जातु माहेश्वराणाम्। यत्पुरोदितं गोविन्द एव कुशलानि करिष्यतीति महर्षिणा, तदनूदितमग्रे भवितव्यमन्यथेत्यधुना परमेष्ठिना। तदेहि कंचित्कालमन्तर्हिता एव क्वचिदावसाम इत्यनुशिष्य शिष्यमन्तर्धाप्य स्वयोगमायया तिरोदधे स्वयमपि देशिको देवतानाम्॥

विद्राणे वरुणे गते हुतवहे वैवस्वते मूर्च्छिते
सद्यो लोचनगोचरादपगते संक्रन्दनस्यन्दने।
संवर्तव्यतिषक्तसप्तजलधिस्रोतःप्रभूतध्वनि-
स्फारः कोऽपि बभूव दानवबले हर्षाट्टहासध्वनिः॥४५॥
चकितपलायितस्खलितमूर्च्छितनिष्पतित-
क्षतविबुधानुधावननिषेधिमहारथिकम्।

बीच युद्ध हो रहा था तब गरुड़के लौट जानेपर भगवान्‌को भी लौट जाना पड़ा था। फिर अन्धकने त्रैलोक्य राज्य प्राप्त कर लिया था, तारकासुरने कितने ब्रह्माण्ड जीत लिये थे, सभी आश्रमोंसे परे वर्त्तमान मुनि दुर्वासाके शापान्त वाक्यको याद कीजिये। हो सकता है कि महेश्वरके वचन कदाचित् मिथ्या हो जाय, परन्तु महेश्वर-भक्तोंके वचन कभी मिथ्या नहीं होते हैं। महर्षि दुर्वासाने जो कहा था कि भगवान् गोविन्द ही कल्याण करेंगे, उसीको ब्रह्माने यह कहकर दुहराया है कि आगे होनहार दूसरा है। अतः चलिये कुछ काल तक कहीं छिपकर ही वास करें, इस प्रकारसे शिष्यको समझाकर देवगुरु बृहस्पतिने योगमायाके प्रभावसे शिष्यको अन्तर्हितकर दिया और वह स्वयं भी अन्तर्हित हो गये।

जब वरुण भाग खड़े हुए, वायुदेव खिसक गये, यम मूर्च्छित हो गये, और तत्काल ही इन्द्रका रथ भी दृष्टि देशसे दूर हो गया, तब प्रलयकालिक प्रवृद्ध सागरके प्रवाहकी गम्भीर गर्जनाकी तरह विशाल हर्षाट्टहासकी ध्वनि दानवसैन्यमें होने लगी॥ ४५॥

महारथी लोग क्षतविक्षत, पलायमान, चकित, स्खलित, मूर्च्छित तथा पतित

विजहि जहीहि पाहि निगृहाण गृहाण हरे-
त्युपचितनादमेदुरमवर्तत दैत्यबलम् ॥ ४६ ॥

अपिच—
आवृत्यावर्तयन्तो दिशि दिशि तुरगान्वारणान्वारयन्तो
मुष्णन्तो भूषणानि प्रसभमभिनिपत्यायुधान्याहरन्तः ।
घ्नन्तः संतर्जयन्तः पथि पथि विबुधान्मुक्तकेशान्दिगीशा-
नभ्येत्यामन्त्रयन्तःप्रजहसुरसुराः सर्वतो निर्विशङ्कम् ॥४७॥

किंच—
शस्त्राशस्त्रिक्षतपतिसुतालोकशोकावलुप्त-
प्राणस्त्रैणव्रजमशरणध्वस्तलुप्तापणान्तम् ।
धावद्देवप्रवरसमरोदन्तयाथार्थ्यबोध-
भ्राम्यत्पौरं नगरमभवज्जर्जरं निर्जराणाम् ॥ ४८ ॥

ततो मुहूर्तादेव मूर्ता इव कोपानलविस्फुलिङ्गा मुनेर्वलिमुखा मखद्विषः पराक्रमेण महता परिक्रामन्तस्तिरोहिते मरुत्वति द्रागेव रणमूर्धनि

होने लगे, उन्हें पीछा करनेवाले रोक दिये गये, और—मारो, छोड़ो, बचाओ, पकड़ो, बाँधो, छीनलो, दैत्यबलमें इस तरहके शब्द होने लगे ॥ ४६ ॥

प्रत्येक दिशामें घूमकर घुड़सवारी करनेवाले, हाथियोंको रोक रखनेवाले, भूषण छीन लेनेवाले, एकाएक आकर अस्त्र छीन लेनेवाले देवोंको मारने तथा डरानेवाले दैत्य मुक्तकेश दिक्पालोंके पास आकर अशङ्कभावसे उन्हें सम्बोधित करते हुए उनका ही उपहास करने लगे ॥ ४७ ॥

देवपुरीकी स्त्रियोंके प्राण युद्धमें क्षत-विक्षत सुत तथा पतिके देखनेसे उत्पन्न शोकसे अवसन्न हो गये, अशरणरूपमें देवपुरीकी बाजार लूट ली गयी, भागने-वाले देवमुख्योंके मुखोंसे युद्धकी यथार्थ स्थिति जानकर पुरवासी भागने लगे, इस प्रकारसे देवपुरी जर्जर हो उठी ॥ ४८ ॥

इसके बाद क्षणभरमें ही दुर्वासाके कोपानलके कणके समान प्रतीत होने-वाले बलिप्रभृति दानवगण बड़े पराक्रमके साथ रणभूमिमें घूमने लगे, इन्द्रके

इति प्रमोत इति प्रविष्टोऽमरावतीमिति च तादात्विकैः प्रवादभेदत्वमनवबुध्यमाना अपि, भवतु नाम सर्वथैव वयं प्रविशेम तावदमरावतीं, परिशोधयेम ततः प्रवृत्तिं शचीपतेः, अपहरेम सुरकामिनीः, अवस्कन्देम कोशमन्दिरं, अधितिष्ठेम सुधर्मां, आक्रामेम त्रैलोक्यमिति कृतनिश्चयाः, कल्पद्रुमा बलेः, कामधेनुर्बाणस्य, हास्तिकं नमुचेः, अश्वीयं शम्बरस्य, चिन्तामणिर्जम्भस्य, विलासिन्यो विरोचनस्य, वारुणं पदमस्य, वायवीयं तस्य, वैश्रवणीयममुष्य, वैश्वानरीयमेतस्य, प्रविष्टं प्रवेष्टुः, अपहृत्य लब्धमपहर्तुः, प्रहृत्य लब्धं प्रहर्तुः, आलोकितुरालोकितं, उपायवक्तुरर्धं, उत्तरसाधकस्य तदर्धं, सममसमयप्रवृत्तयोस्तु साधारणं वस्तु, परतस्तु यथारुचि परस्परच्छन्देनेति समयबन्धेन पर्यवस्थाप्य पताकिनीं, आरुह्य मतङ्गजानत्युन्नतान्, आलोकयन्तो नगरोपशल्यानि, प्रशंसन्तः प्राकारदुर्गसामग्रीं, परिहसन्तो बुद्धिलाघवं प्रतिद्वन्द्विनां,

---

छिप जानेपर वह कहते थे कि इन्द्र युद्धभूमिसे भाग गया, मर गया, या मारा गया। उन्हें यथार्थ स्थितिका ज्ञान नहीं था, फिर भी वह कह रहे थे कि चाहे जो हो, हर हालतमें हमें अमरावतीमें प्रवेश करना है, फिर पता लगायेंगे कि इन्द्रका क्या हुआ? तबतक हम सुर-सुन्दरियोंका अपहरण करें, खजाना लूट लें, देवसभापर अधिकार कर लें, त्रैलोक्यपर धावा बोल दें। उन लोगोंने तय किया कि कल्पद्रुम बलिको मिले, कामधेनु बाणको मिल जाय, हस्तिसमूहपर नमुचिका अधिकार हो, अश्व-समुदाय शम्बरको दिया जाय, चिन्तामणिपर जम्भका स्वत्व माना जाय, विलासिनियाँ विरोचनको मिलें, वरुणका पद इसका हो, वायुका पद उसका हो, कुबेरका पद उसका हो, अग्निका पद इसका हो, जो जहाँ पैठ जाय वह उसका हो जाय, छीनकर लायी गयी चीज छीननेवालेकी मानी जाय, प्रहार करके अपनायी गयी चीजपर प्रहार करनेवालेका स्वत्व माना जाय, जिस वस्तुको जो पहले देख ले वह वस्तु उसकी हो जाय, उपाय बतानेवालेको आधा भाग मिले, आगेका कार्य करनेवाला आधा भाग पावे, एक साथ प्रवृत्त होनेवालोंका उस वस्तुपर समान अधिकार माना जाय, पीछे यथारुचि विचार करके बाँट लें, इस निश्चयपर उनलोगोंने सेनाको व्यवस्थित किया। ऊँचे-ऊँचे हाथियोंपर आरूढ़होकर, नगरके सुरक्षित स्थानोंको देखते हुए, प्राकार तथा दुर्गकी तारीफ करते हुए, अपने शत्रुओंकी निर्बुद्धितापर उपहास

निर्दया विपक्षजातीयेषु, निर्विशङ्का दुर्गगुल्मेषु, ग्राहयन्तो वधूदर्शं, घातयन्तः पुरुषदर्शं, आकर्णयन्तः कर्णामृतान्याक्रन्दितानि नाकसदां, हसन्तो दर्शंदर्शमशरणान्वध्यमानान्, कुप्यन्तो दयालुषु, कुतूहलिनो दारुणेषु, विसर्जयन्तो नैर्ऋतीयान् जात्यभिमानेन, विद्रावयन्तः कर्म-देवानट्टहासैः, उन्माथयन्तो गोपुरद्वारं, उल्लङ्घयन्तः प्राकारं, अपश्यन्तः शरणागतान्, अशृण्वन्तो याच्ञाक्षराणि सुरर्षीणां, आज्ञापयन्तो जिह्वाच्छेदममरवैतालिकानां, चरणावकर्तनं चाराणां, चपेटाघातममर-मौहूर्तिकानां, अङ्गुलिच्छेदमक्षरलेखिनां, आस्यविदारणममात्यानां, भञ्जयन्तः प्रतिमा देवतानां, अपमार्जयन्तः सुरपराक्रममालेख्यसमर्पितं, अशरणहन्यमानरक्तधारावसिक्तं, अग्रचरणग्राहमाकृष्यमाणमुनिजनशरीर-संमृष्टं, अनुपददह्यमानदेवतागारधूमधूपितं, अपकृष्यमाणकुलपालिका-जनाहन्यमानमुखवाद्यनादमेदुरं, अपहृतसर्वस्वदीनजनाक्रोशजयाशीर्वचो-

---

करते हुए एवं शत्रुओंके विषयमें निर्दय, दुर्ग स्थानोंमें अशङ्क विचरण करने-वाले दैत्यगण स्त्रियोंको देखकर पकड़ लेते थे, पुरुषोंको देखकर मार देते थे, देवोंका रुदन सुनते तो उनके कान तृप्त हो जाते थे, अशरण होकर मारे जाने वालोंको देखकर उन्हें हँसी आती थी, दया करनेवालोंपर क्रोध होता था, दारुणता उनके कुतूहलका स्थान था, जातीय अभिमानके कारण नैर्ऋतीयोंको उन लोगोंने छूट दे रखी थी, अट्टहास करके वह कर्मदेवोंको भगा देते थे, नगरद्वार ध्वस्त कर देते थे, प्राकारका लङ्घन करते थे, शरणागतोंकी ओर देखते भी नहीं थे, देवर्षियोंकी प्रार्थनायें सुनते भी नहीं थे, देववैतालिकोंकी जीभ काट लेनेकी आज्ञा देते थे, गुप्तचरोंके चरण कटवाते थे, देवताके ज्यौतिषियोंको चपेटाका पात्र बनाते थे, अमात्योंके मुँह चीर डालनेकी आज्ञा देते थे, देवोंकी प्रतिमायें तुड़वा देते थे, चित्रलिखित देवपराक्रमोंको पुँछवा देते थे, सुरपुरी उनके द्वारा अशरणभावसे मारे गये लोगोंके रक्तकी धारासे सिक्त हो रही थी, मुनियोंके शरीर चरणके अग्रभागसे पकड़कर घसीटे जाते थे। इस प्रकार दानवगण सुर-पुरीमें आये जहाँ देवतागृहमें दी गयी धूपकी सुगन्ध फैल रही थी, घसीटकर लायी गयी कुलाङ्गनायें मुखवाद्य बजा रही थीं, जिनका सर्वस्व लूट लिया गया है ऐसे दीनजनोंके आक्रोशपूर्ण आशीर्वचनसे जो मुखरित हो रही थी,

मुखरं, आकस्मिकपतदशनिनिर्घोषनिर्वर्तितलोहयन्त्रनिनादमङ्गलं, अभितः पतदुल्कासहस्रदीपमालापरिष्कृतमनुप्रविश्य नगरं, अभिवन्द्य पुरोधसं भार्गवं, अपक्रान्तहर्यक्षमेरुगुहासधर्मां सुधर्मामध्यासांचक्रिरे। आसीनाः क्षणममरसभान्तरे, परिष्वज्यमानाः परस्परं, प्रशस्यमानाः वन्दिमागधैः, अभिनन्द्यमानाः कुलवृद्धैः, अनुगृह्यमाणा भार्गवेण, निष्क्रम्य ततो बहिरचिरपरिगृहीतविजयेन्दिरापरिरम्भसंभृतकुचकुम्भकुङ्कुमक्षोदैरिव सेनारजोभिरभिरञ्जिताः, निरङ्कुशचंक्रम्यमाणविशृङ्खलदैत्यसंघवाहाबलोन्मुक्तहाहारवमालक्ष्य सर्वतो नगरं, उल्लोलजलधिकल्लोलहल्लोहलशमनशीलया वेलयेव तनोयस्या विरमतेति कयाचिदेवाज्ञया चिरलब्धसुस्थमिव पर्यवस्थाप्य नगरं, क्षणादाघोषयामासुरास्कन्दनोपरमजयकाहलीम्। आदिष्टाश्च दिक्पालपदेष्वसुरवराः स्वयमनतिक्रामन्तो धर्ममौशनसं, अनुल्लङ्घमाना बलेः शासनं, अनुवर्तमाना हिरण्याक्षदर्शितं

अकस्मात् पतित वज्रनिर्घोषसे जहाँ लोहयन्त्रका मङ्गलशब्द निकलता था, जहाँ चारों ओर गिरनेवाले उल्कापातोंसे दीपमालाका कार्य किया जाता था। नगरीमें आकर दैत्योंने अपने पुरोहित भार्गवकी वन्दना की, और सिंहके चले जानेपर शून्य-सी लगनेवाली गुहाके सदृश सुधर्मामें आकर बैठे। थोड़ी देर देवसभामें बैठकर दानवोंने परस्पर आलिङ्गन किया, वन्दियों तथा मागधोंने उनकी प्रशंसा की, कुलवृद्धोंने उनका अभिनन्दन किया, भार्गवने उनपर अनुग्रह दिखाया। इसके बाद दैत्यगण देवसभासे निकले, सेना द्वारा उड़ाई गई धूलसे वे रञ्जित हो रहे थे, वह धूल अचिर कालप्राप्त जयलक्ष्मीके आलिङ्गनमें प्राप्त कुङ्कुमचूर्णकी तरह लगती थी। दैत्योंने देखा कि बिना रोक-टोकके घूमनेवाले दैत्योंके समुदायसे पीड़ित जन हा हा शब्दकर रहे हैं। इसके बाद उन्होंने आज्ञा दी जिससे सारा कोलाहल शान्त हो गया जैसे तटके द्वारा समुद्रका समस्त जलकल्लोल समेट लिया गया हो। उनकी आज्ञासे नगर तत्काल सुस्थ हो गया, विजयोल्लासकी समाप्तिकी घोषणाकर दी गयी। दिक्पालोंके स्थानोंपर असुरोंकी नियुक्तिका आदेश निकला, असुरगण भार्गवधर्मपर दृढ़ रहे, उन्होंने बलिके शासनका लङ्घन नहीं किया, हिरण्याक्ष प्रदर्शित

सरणिं, अवलुम्पन्तो वैदिकं पन्थानं, अप्रमत्ताः स्वं स्वमधिकारमनुपालयांचक्रिरे ॥

देवद्विषश्चिरतरं निरयेषु मग्ना-
नुत्तार्य दैवतपदेषु निवेशयन्तः ।
रक्षोघ्नमन्त्रकुशलाञ्छतशो महर्षीन्
प्रत्यक्षिपन्नरकवेश्मसु दैत्यदूताः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मर्षयोऽपि दनुजेन्द्रसभां प्रविष्टा
मन्त्राक्षराणि मघवादिपदाङ्कितानि ।
ऊहेन दानवपदान्युपवेशयन्तो
हर्षाय पेठुरसुरेन्द्रपुरोहितानाम् ॥ ५० ॥

विद्वांसः प्रथमेऽभवन्दिवसनाः सौत्रान्तिकाः साधवो
मुख्या माध्यमिकास्त्रिलोकगुरवश्चार्वाकतन्त्रे स्थिताः ।
पाषण्डा निगमागमव्यसनिनः कालः कलिः शाश्वतो
दैत्ये शासति देवराज्यमजनि त्रैलोक्यमित्थं तदा ॥ ५१ ॥

मार्गका अतिक्रमण नहीं किया, वैदिक-पद्धतिका लोप कर दिया और सावधान होकर अपने-अपने अधिकारकी रक्षा करने लगे ।

बहुत दिनोंसे नरकमें पड़े हुए दैत्योंको वहाँसे निकालकर देवके पदोंपर निवेशित करनेवाले दैत्यदूतगण रक्षोघ्नमन्त्रोंके उच्चारणमें कुशल सैकड़ों महर्षियोंको नरकमें डालने लग गये ॥ ४९ ॥

दानवोंकी सभामें आकर ब्रह्मर्षिगणभी इन्द्रके नामसे युक्त मन्त्रपदोंमें ऊहके द्वारा दानव पदोंका निवेश करके मन्त्रका उच्चारण करते थे क्योंकि उन्हें दैत्यपुरोहितोंको प्रसन्न करना था ॥ ५० ॥

आदि विद्वान् हुए दिगम्बर जैन, सौत्रान्तिक तथा माध्यमिक-लोक अच्छे साधु हुए जो चार्वाकमतके पोषक थे, आगम—निगमके माननेवाले निरे पाखण्ड हैं, यह कलियुग सर्वोत्तमकाल है, दैत्योंका शासन ही देवराज्य है, यही उस समयकी मान्यता हुई ॥ ५१ ॥

अपक्रान्तश्च तदा शचीपतिः, अभिगम्य सह सर्वैः सुपर्वभिरखिल-भुवनसुन्दरं मन्दरं शैलमनुज्ञया बृहस्पतेः अन्तर्हित एव कतिचिदति-वाहयामास वर्षगणान् ॥

इति श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमतप्रतिष्ठापनाचार्यचतुरधिकशतप्र-बन्धनिर्वाहकश्रीमन्महाव्रतयाजिश्रीमदप्पयदीक्षितसोदर्य श्रीमदाच्चान्दी-क्षितपौत्रेण नारायणदीक्षितात्मजेन श्रीभूमिदेवीगर्भसंभवेन श्रीनी-लकण्ठदीक्षितेन विरचिते श्रीनीलकण्ठविजये चम्पूकाव्ये
प्रथम आश्वासः ॥

इन्द्र भाग खड़े हुए, सभी देवोंसे मिलकर इन्द्रने बृहस्पतिकी आज्ञासे अखिल-भुवन-रमणीय मन्दर नामक पर्वतपर छिपकर कुछ वर्ष व्यतीत किये ॥

प्रथम आश्वास समाप्त ।

★

द्वितीयाश्वासः

ततः शतमखादयो युधि विरोधिभिर्निर्जितां
श्रियं पुनरभीप्सवः क्रतुभुजो भुजोपार्जिताम् ।
विचित्रमणिसुन्दरं विपुलकन्दरं मन्दरं
समेत्य तपसानयन्निमिषवत्सहस्रं समाः ॥ १ ॥

तत्र च वसतां तपोधनानामध्वरहविर्भागमपहरत्सु दूतमुखेन दानवेषु, अकाले वा यष्टुमयज्ञेन वा रहसि प्रदातुमभ्यर्थनयाप्यसंमन्यमानेषु शास्त्रैकशरणेषु तापसेषु, तप्यमानाः क्षुधा विबुधाः, हुत्वा हवींषि हुतवहे, दत्तानि तेनैव पुनस्तान्युपयुञ्जानाः कालं महान्तमतिवाहयांचक्रिरे । अपरे पुनः केचिदतिवेलश्रद्धामात्रशरणानधिगम्य मूर्खान् अमुनैव शरीरेण दिवमारोपयामो भवतः सबान्धवान्, अत्रैवानीय दर्शयिष्यामः सुरसुन्दरीरिति प्रलोभयन्तः, पशुपक्षिसुराकुम्भपायसापूपप्रचुरानलभन्त महोपहारान् । अपि च पुनरवरूढान् कर्मक्षये दिवः

इसके बाद शत्रुओं द्वारा अधिकृत तथा भुजार्जित लक्ष्मीको पुनः प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले इन्द्रादि देवगणने विचित्र मणियोंसे सुन्दर विशाल गुहावाले मन्दर पर्वतपर जाकर क्षणकी तरह हजार वर्ष तपस्यामें बिता दिये ॥ १ ॥

वहाँ रहनेवाले देवोंके यज्ञ भागको दूतमुख दैत्य छीन लेते थे, तपस्वी लोग अकालमें यज्ञ करना नहीं चाहते थे और बिना यज्ञके एकान्तमें की गयी प्रार्थनापर वे देना भी नहीं चाहते थे क्योंकि वे शास्त्रकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करते थे, ऐसी स्थितिमें देवगण स्वयं अग्निमें होम करते थे और अग्निके द्वारा दी गयी वस्तुपर निर्वाह करते हुए देवोंने बहुत-सा समय बिता डाला । कुछ देव श्रद्धालु मूर्खोंके पास जाकर उन्हें प्रलोभन देते थे कि हम सबान्धव आपको इसी शरीरसे स्वर्ग पहुँचा देंगे, यहीं लाकर सुरसुन्दरियोंको दिखा देंगे, इस प्रकारके प्रलोभनसे आकृष्ट उन मूर्ख श्रद्धालुओं द्वारा उपहार रूपमें दिये गये पशु, पक्षी, सुरा, पायस, अपूप आदि उपहार देवोंको मिल जाते थे । कर्मक्षय

कर्मदेवानावृत्य 'किं कुर्वन्ति दानवाः, किं वदन्त्यस्मान् कथाप्रसङ्गेषु, किमितिवृत्तमेषामनुमतं पितामहेन, किं वा न तदवतीर्णमद्यापि तत्र कर्णपथं, किमाहुरसुरमौहूर्तिकाः, कीदृशो भार्गवस्य वृत्तान्तः, कथमास्ते वैजयन्तः, कस्य वशे नन्दनोद्यानं, उद्धान्तश्चतुर्दन्त इति श्रुतं, उच्चैश्श्रवसः प्रवृत्तिमेव नोपलभामहे' इत्यनुयुञ्जानाश्चकितचकितमवलोक्य समन्ततः, किंच ब्रह्मलोकगमनोचितान्महर्षीन्मुमूर्षतः परीत्य परिहरन्तः प्रायण-क्लेशमपि वरदानैः, निवेदयत प्रसङ्गेन नः कष्टामिमां दशां भगवति पितामहे, न विस्मरतास्मदभ्यर्थनामध्यात्मविचारव्यासङ्गेनेत्युद्बोधयन्तः, स्वयमस्वप्नतया स्वप्नदृशस्तपोधनान् परिपृच्छन्तः पर्यवसानं मुनिशापस्य, निन्दन्तः स्वानि जन्मानि, निःश्वसन्तो दीर्घमुष्णं च मुहुर्मुहुः, वलाहकमिव चातकाः, वाचस्पतेरागमनमाकाङ्क्षन्तश्चिरमवतस्थिरे ॥

हो जाने पर स्वर्गसे उतरनेवाले कर्मदेवोंको घेरकर पूछा करते थे कि—इन दिनों दानव क्या कर रहे हैं ? कथाप्रसङ्गमें हमारे सम्बन्धमें क्या कहते हैं ? ब्रह्माने उन्हें क्या करनेकी अनुमति दे रखी है ? क्या यह सारी बातें अभी ब्रह्माके कान तक नहीं पहुँची है ? दैत्योंके ज्यौतिषी क्या कहते हैं ? वैजयन्त कैसे रहता है ? नन्दन उद्यानपर किसका अधिकार है ? हमने सुना कि ऐरावत गतमद हो रहा है ? उच्चैःश्रवाकी कोई खबर हमें नहीं मिल रही है। चारों ओर चकित भावसे देखते हुए देवगण इसी प्रकारके प्रश्न किया करते थे। ब्रह्म-लोक जाने-की योग्यता रखनेवाले आसन्नमृत्यु महर्षियोंके पास जाकर उन्हें मृत्युकष्टसे मुक्तिका वरदान देते हुए देवगण महर्षियोंको समझाते थे कि प्रसङ्गवश हमारी इस कष्टमय दशाका ब्रह्मासे निवेदन कीजियेगा, हमारी इस प्रार्थनाको भूलियेगा नहीं।

देवगण स्वयं तो स्वप्न नहीं देख सकते हैं, अतः वे स्वप्न देखनेवाले तपस्वियोंसे पूछा करते थे कि मुनिके द्वारा दिये गये शापका अन्त कब होगा ? देवगण अपने जीवनकी निन्दा किया करते थे, लम्बी साँसे लिया करते थे, और जैसे चातकगण मेघकी प्रतीक्षा किया करते हैं उसी तरह बृहस्पतिके आगमनकी प्रतीक्षा किया करते थे। इस प्रकार वे चिरकाल पर्यन्त वहाँ रहे।

अत्रान्तरे सुरगुरुर्दुरितं सुराणा-
मल्पावशेषमवयन्प्रणिधानयोगात् ।
अभ्येत्य निर्जरवरैरभिवन्द्य भक्त्या
पर्यावृतः सदसि किंचिदिदं बभाषे ॥ २ ॥

'दिष्ट्या कुशलिनो वश्चिरादद्राक्षम् । दिष्ट्या चोत्तीर्णप्रायोऽय-मापदर्णवः । दिष्ट्या च दुर्लभमिदं तपोवनमहो भवद्भिरासादितम् । वाराणसीव भारते वर्षे दयितं गौरीदयितस्य परममिदमेवायतनमिळावृते । आरसातलादा च शान्त्यतीतकलाभवनात्सन्ति महान्ति स्थानानि सर्वागमविदितानि परश्शतानि भवानीपतेः । परं तु मन्दर इव तस्य दृशां न किंचन सुन्दरमन्यदायतनम् । अन्यत्र पञ्चतपसोऽपि मुनेरावसथेषु शांभवेषु स्वैरचारी विशिष्यत इति श्रुतमेव भवद्भिरपि वृद्धमुखात् । अमृतप्राप्तिहेतुश्चायमस्माद्दृशामिव भवादृशामपि शैलराजः ।

किं बहुना—

इसके बाद समाधिके बलसे देवताओंके दुरदृष्टको स्वल्प-शेष जानकर बृहस्पति एक दिन मन्दर गिरिपर आये । देवोंने अभिवन्दना करके उन्हें अपने बीचमें बैठाया, तब उस देवसभामें बृहस्पतिने थोड़ेसे वचन कहे ॥ २ ॥

सौभाग्यवश चिरकालपर आप लोगोंको सकुशल देखा है । भाग्यवश आपने आपत्तिका सागर पार कर लिया है । भाग्यसे आपको यह दुर्लभ तपोवन मिल गया था, जैसे भारतमें शिवका प्रिय स्थान वाराणसी है, उसी तरह इलावृतमें यह स्थान शिवका प्रिय है । पातालसे लेकर आकाशतक महादेवके बहुतसे स्थान सर्वागम विदित हैं, परन्तु महादेवकी दृष्टिमें मन्दरकी तरह सुन्दर कोई दूसरा स्थान नहीं है । दूसरी जगह रहनेवाले पञ्चाग्निव्रती मुनियोंसे महादेवके स्थानमें रहनेवाला यथेच्छाचारी व्यक्तिभी उत्कृष्ट होता है यह बात आपने भी वृद्धोंके मुँहसे सुनी होगी । यह मन्दराचल हम लोगोंकी तरह आपके लिए भी मोक्षका कारण है ।

अधिक कहना व्यर्थ है—

कालोऽत्यगादशुभहेतुरुपस्थितं वः
कल्याणमद्य न चिरादिति भासते नः ।
उत्तिष्ठतोच्चलत यात तु धाम धातु-
रुष्ट्रासिकाभिरधुना किमनर्थिकाभिः ॥ ३ ॥

इति प्रवृत्त्या भाविसहासंविधानलभ्ययापि भाग्यवशादधुनैव स्वतः लब्धया सुधयेव वाचा वाचस्पतेराप्यायितः सुरपतिरिदमाचचक्षे—'अद्यैतत्पावनमजनि तपोवनं, अद्य नस्तपांसि परिपेचिरे, प्रशेमुरद्य नः कलुषाणि, पर्युपास्थिषत मङ्गलानि, परथा कथं भवदीयानां पात्रीभवेम शासनाक्षराणाम् ॥

चेतो यद्भवतश्चिरंतनवचःसंदर्भगर्भस्थिते
वस्तुन्यस्तमितप्रपञ्चमलिनिर्मन्यामज्जमामज्जति ।
तद्मोचितमोहिमोहितमतिष्वस्मास्वकस्मादिदं
सक्तं यत्पशुषु द्विपात्स्वपि ततो धन्या वयं न्यायतः ॥ ४ ॥

किं बहुना । अद्य भवत्संभावनासंपादितस्यानन्दस्य परं पारमपश्यन्तो

मुझे प्रतीत होता है—आपके कष्टका समय बीत गया, कल्याण उपस्थित है । अतः आप उठें, विधाताके पास चलें, व्यर्थ बैठे रहनेसे क्या लाभ ? ॥ ३ ॥

भवितव्यतावश उपलब्ध होकर भी अभी-अभी उपलब्ध होनेवाली उस अमृतोपम बृहस्पतिकी उक्तिसे तृप्त इन्द्रने कहा—

आज हमारा यह तपोवन पवित्र हो गया, आज हमारी तपस्या सफल हुई, आज हमारे प्रत्यवाय शान्त हुए, मङ्गल उपस्थित हुए, अन्यथा आपके उपदेशों के पात्र हम कैसे होते ? ॥

आपका जो हृदय चिरन्तन वचन वेदोंकी गुत्थियोंमें वर्त्तमान समस्त प्रपञ्चसे दूर निर्मल ब्रह्ममें समस्त भावसे लीन रहा करता है वही आपका हृदय दुस्त्यज मोहसे आक्रान्त होनेके कारण दो चरणवाले पशु स्वरूप हम देवोंपर आसक्ति प्रकट कर रहा है, अतः हम वस्तुतः धन्य हैं ॥ ४ ॥

अधिक कहना व्यर्थ है, आज आपकी कृपासे जो आनन्द प्राप्त हुआ है

वयमस्मदानन्दादनेकशतगुणं भवदानन्दमुपपादयन्तीं भगवतीं श्रुतिमपि न विस्रम्भामहे । आजानतो हि राजानः कदाचिदाक्रामन्ति परानाक्रम्यन्ते च तैरिति चक्रनेमिक्रमः सर्वजनीन एव । तदपि भवदीया जयन्त्येव न जीयन्त इत्यैकान्त्यमनुसंदधतो वयमियदपत्रपामहे व्यथामहे च । भवतः पुनरीषत्करोऽस्मदनुग्रहः संकल्पमात्रसाधनस्य । यथा हि भवज्जातीया एव भूमिचरान्दिवमारोपयितुं, दिविचरान्भुवमवरोपयितुं, आस्वादयितुं सुरापगां, आचमितुं सप्त सागरान्, विफलयितुं महास्त्राणि, विष्टम्भयितुं विश्वंभरमपि प्रगल्भन्ते, तथा श्रुतिशतप्रतिपन्नयाथात्म्ये भवतो माहात्म्ये दण्डापूपिकान्यायघण्टाघोष एव नः शरणम् । तदलं पल्लबितैर्वचोभिः, अनुगृहाण स्वयमस्मान्, अस्ति यदि भक्तव्यसनानवलोकनसंकल्पः । अथ साजात्याभिमानेन दुर्वासस एव वचनं सत्यापयितुमध्यवसायस्तदेहि, यत्र निनीषसि तत्र नेष्यामहे, येनानुकम्पयिष्यसि तेनानुकम्प्यामहे, सर्वथा न्यस्तात्मानो वयं भवच्चरणे । किं करचरणे

हम उसका पार नहीं पा रहे हैं, आज हम अपने आनन्दसे शतगुण आपके आनन्दको बतानेवाली श्रुतिपर भी विश्वास नहीं कर रहे हैं ।

स्वभावतः राजगण कभी दूसरोंपर आक्रमण करते हैं और कभी दूसरोंसे आक्रान्त होते हैं, यह चक्रनेमिक्रम सर्वविदित है । ऐसी स्थितिमें भी आपके जन जीतते ही हैं, जीते नहीं जाते हैं, इस बात पर श्रद्धा रखनेवाले हम देवगण बहुत लज्जित तथा दुःखी हो रहे हैं । आपके लिए हमारे ऊपर अनुग्रह करना नितान्त सरल है क्योंकि आपको संकल्पसे ही सारे साधन लभ्य हैं । आपके ही सजातीयोंने पृथ्वीपर निवास करनेवालेको स्वर्ग भेजा, स्वर्गवासीको पृथ्वीपर ला दिया, गङ्गाका आचमन किया, सात समुद्रोंका पान किया, महास्त्रोंको विफल बनाया, भगवान् विष्णुको भी हतपराक्रम बनाया । इस प्रकार अनेक श्रुतियों द्वारा जिसकी यथार्थता कही गयी है उस आपके महत्त्वके विषयमें दण्डापूपिका-न्यायकी घोषणा ही हमारे लिए शरण है । अतः अधिक कथन व्यर्थ है । आप स्वयं हमारे ऊपर दया करें, यदि आप भक्तवत्सलता प्रकाशित करना चाहते हैं । यदि आप दुर्वासाके वचनको ही सत्य करना चाहते हैं तो चलिये जहाँ ले चलियेगा, वहाँ चलूँगा, जिसकी कृपा प्राप्त कराना चाहियेगा

कदाचिदस्ति जिज्ञासा कीदृशस्तदभिप्राय इति । न यदि, किंकरजनेऽपि मादृशि तथेति मन्तव्यं' इति कृतव्यवसायस्य सुत्राम्णो वचसि चित्रीयमाणश्चित्रशिखण्डिजः सममाखण्डलादिभिः सत्यलोकमभिप्रतस्थे। अमराश्च तमनुवर्तमानाः, वर्तमानाः पथि वैमानिकानां, दैत्यदानवयातुधानाध्यासितानि सिद्धचारणविद्याधराद्यावसथानि विलङ्घ्य,ततोऽविदूरादुत्सन्नकिन्नरीगानचातुर्यम्, उपशान्तगान्धर्वतौर्यमौखर्यम्, असंभावितकर्मदेवसंमर्दं, अनाशङ्कनीयब्रह्मर्षिसंचारसंकथं, अतिनीचरक्षःपिशाचमदिरागण्डूषदूषितमन्दाकिनीतीरतरुषण्डगूढचरदेवर्षिमण्डलम्, आखण्डलनगरोपशल्यमन्तःकरणशल्यमालोकयन्तः, पुरा हंसावतंसितैः सर्वगामिभिरप्सरोजनतौर्यत्रिकालंकृतैर्विमानैरतिवाह्यमानतयाऽगृह्यमाणतत्तत्प्रदेशसौन्दर्यमगृह्यमाणद्राघिमाणमध्वानमधुना पद्भ्यामेवाक्रम्यमाण-

---

उसकी कृपा प्राप्त करूँगा, हमने अपनेको आपके चरणोंमें अर्पित कर दिया है। क्या हाथ-पैरके विषयमें यह जिज्ञासा होती है कि उनका क्या अभिप्राय है, यदि नहीं, तो हमारे सदृश दासजनके विषयमें भी वैसा ही समझना चाहिये। इस प्रकार दृढ़ निश्चय रखनेवाले इन्द्रके वचनसे बृहस्पतिको काफी आश्चर्य हुआ, और उन्होंने इन्द्र आदि देवोंको साथ लेकर सत्यलोककी यात्रा की। बृहस्पति के अनुगामी देवगण विमानगामियोंके मार्गमें पहुँचकर दैत्य, दानव एवं यातुधानोंसे युक्त सिद्ध, चारण तथा विद्याधरोंके निवास स्थानको पार करके सत्य लोकके समीप पहुँच गये, जहाँ किन्नरियोंके गानकी चतुरता समाप्त हो रही थी, गन्धर्वोंकी वादनक्रियासे मुखरता नहीं उत्पन्न होती थी, कर्मदेवोंकी भीड़ भी नहीं थी, ब्रह्मर्षियोंके सञ्चारकी कथा भी नहीं थी। अति नीच राक्षस-पिशाचों द्वारा दारूकी कुल्ली द्वारा वहाँपर मन्दाकिनीतीरवर्त्तीतरुगण दूषित कर दिये थे, जिनके निम्न भागमें देवर्षिगण छिपे हुए थे, स्वर्गके समीप वह स्थान दीखकर हृदयमें चुभनेवाले शल्यकी तरह लग रहा था। अपराजित अवस्थामें हंसशोभित अनिरुद्धप्रचार एवं अप्सराजनके नृत्यगानवाद्योंसे युक्त विमानों द्वारा ही उन स्थानोंकी यात्राका अवसर मिला करता था अतः उन स्थानोंका सौन्दर्य ज्ञात नहीं हो सका था, इस समय उस मार्गमें पैदल चल रहे थे अतः

तया गृहीतविपरीतमतिक्रामन्तः, पदे पदे श्राम्यन्तः पथि, पथिकजनसाधारणमपि तत्तत्पदेष्वातिथ्यं गूढसंचारवशादलभमानाः, दानवसेनागतागतोचितान् कथंचिदतिलङ्घ्य कानपि कक्ष्याभेदान्दिवः, तपोभिरपि दुरापं तपोलोकसमीपमापेदिरे । प्रविष्टमात्राश्च ते परिहृतरजस्तमोगन्धानुबन्धतया परिणतसत्त्वैकसारेषु तत्रत्यवस्तुषु महीचरा इव महेन्द्रभोगेष्वदृष्टचरं विशेषमालक्षयन्तो विसिष्मियिरे । अपिच पुनरात्मविज्ञाननिरस्तावरणतया निःसीमविकसदकृत्रिमज्योतिषामधिकारमलक्षपणाय केवलमनुत्तरं योगैश्वर्यमनुभवतामत्रभवतां सनकसनन्दनसनत्कुमारादिमहायोगिनां, मूकेष्विव वाग्मिनां, मूर्खेष्विव बुद्धिमतां, अन्धेष्विव चक्षुष्मतां, अधनेष्विव महेश्वराणां, कीटेष्विव सरीसृपाणां, सरीसृपेष्विव चतुष्पदां, चतुष्पात्स्विव मानवानां, मानवेष्विव महीभृतां, महीभृत्स्विव मरुतां, मरुत्स्विव मरुत्वतो, मरुत्वत्यपि पतन्तीमवज्ञामुकुलितां दृशमवलोकयन्तः शृण्वन्तश्च तेषामेव 'हन्त वराकः शत-

---

पहलेकी यात्राओंसे इस समयकी यात्रा विपरीत प्रकारकी थी, इस समय पग-पगपर थकावटका अनुभव होता था, पथिकोंको जो आतिथ्य पग-पगपर प्राप्त होता था वह भी इन देवोंको नहीं मिल रहा था क्योंकि वे गुप्तरूपसे जा रहे थे, इस प्रकार वे देवगण दानवसैन्यके यातायातसे युक्त कुछ स्थानोंका अतिक्रमण करके तपस्यासे भी दुर्लभ तपोलोकमें पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर देवोंने देखा कि यहाँपर रजोगुण तथा तमोगुणका सम्बन्ध ही नहीं है, सारी चीजें सत्त्वगुणप्रधान हैं, इस प्रकार वहाँके राजभोगोंमें देवोंको कुछ अदृष्टपूर्व विशेषता लक्षित हुई, इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । वहाँके रहनेवाले सनक, सनन्दन, सनत्कुमार आदि योगीगण आत्म-ज्ञानके द्वारा समस्त आवरणका निवारणकर चुके थे, केवल अधिकार मलको दूर करनेके लिए वे अनुत्तर यौगैश्वर्यका अनुभव कर रहे थे। देवोंने देखा कि उन योगियोंकी दृष्टि देवोंके विषयमें उतनी ही अवज्ञापूर्ण है जितनी वाक्शक्तिसम्पन्न व्यक्तिकी दृष्टि मूकोंके प्रति, बुद्धिमानोंकी दृष्टि मूर्खोंके प्रति, आँखवालोंकी दृष्टि अन्धोंके प्रति, धनिकोंकी दृष्टि निर्धनोंके प्रति, सर्पोंकी दृष्टि कीटोंके प्रति, चार पैरवालोंकी दृष्टि साँपोंके प्रति, मानवोंकी दृष्टि पशुओंके प्रति, राजोंकी दृष्टि साधारण मानवोंके प्रति, देवोंकी दृष्टि राजोंके प्रति, और इन्द्रकी दृष्टि देवोंपर अवज्ञापूर्ण हुआ करती है । देवोंने उन सनकादियोगियोंके

मन्युर्नामायमेव परितोष्य यः शतेनाश्वमेधैरपि भगवन्तमिन्दुशेखरं प्रार्थयामास दानवार्हमिषं स्वाराज्यम् । पश्यत पश्यत कुबेरमिमं पशुपाश विमोचिना पाशुपतव्रतेन समाराध्य परमात्मानं सखासि ममेत्यनु गृहीतोऽपि यः पिशाच इव धनपालतां वव्रे । किं बहुना—आत्मभूतो ऽप्ययमष्टमूर्तेर्भगवतो वैश्वानरो विफलीकृत्य विवेकं, उपास्य चिरतरं कालमुमारमणमपि, आसाद्य हव्यबाहतामन्नहरोऽस्मि देवानामित्यभि मन्यते कृतकृत्यमात्मानम् । हन्त चिरादिमान् देवपशूनद्राक्ष्म ॥

किं न निगृह्णन्ति मनः किं न भजन्ते जनाः शिवं शरणम् ।
अभिसंधिभेदमात्रान्मोक्षो(क्षा?)पायेन बध्यन्ते ॥ ५ ॥

इत्यादीनि परिहासवचांसि, पश्यन्तस्तरतमभावमैश्वर्येषु, परित्यजन्तः स्वर्गाधिराज्यदुर्मदं, अपत्रपानष्टदृष्टयः स्वयमाधिपत्यादस्मदीयादत्र भिक्षाटनं ज्याय इति मेनिरे ॥

यह कथन भी सुने कि—हाय, यही है बेचारा इन्द्र, जिसने सौ अश्वमेध करके भगवान् चन्द्रशेखरको प्रसन्न किया और उसके फलस्वरूप दानवयोग्य स्वर्गका राज्य मांगा था । देखो देखो इस कुबेरको, इसने पशुपाशसे मुक्त करानेवाले पाशुपत व्रतसे शिवको प्रसन्न किया, उन्होंने कुबेरसे कहा कि तुम मेरे सखा हो, फिर भी इसने पिशाचकी तरह धनपाल होनेकी प्रार्थनाकी । कितना अधिक कहा जाय, यह वैश्वानर अष्टमूर्त्ति शिवका आत्मस्वरूप है इसने अपने विवेकको खोकर—बहुत दिनों तक शिवकी आराधना करनेके बाद भी—हव्यवाहनता पाकर यह अभिमान करता है कि मैं देवोंका अन्नवाहक हूँ । इसीसे यह अपनेको कृतार्थ समझता है । बहुत दिनोंके बाद हमने इन देवपशुओंको देखा है ।

लोक अपने मनको क्यों नहीं निगृहीतकरते हैं, शिवकी शरण क्यों नहीं जाते हैं, अभिप्राय भेदके आधारपर वे मोक्षके उपायमें बँधे रहते हैं ॥ ५ ॥

देवगणने इस प्रकारके उनके उपहासवचन सुने, ऐश्वर्यकी ऊँचाई-नीचाई देखी, स्वर्गाधिपत्यका मिथ्याभिमान छोड़ा, लज्जासे उनकी आँखें नष्ट हो गईं उन्होंने निश्चय कर लिया कि हमारे स्वर्गके राज्यसे यहाँका भिक्षाटनही श्रेष्ठ है ।

अथ सुरगुरुमागतं सशिष्यं
स्वयमवधार्य धिया सनत्कुमारः ।
अपगततमसो महाप्रभावा-
नशिषदमुष्य सभाजनाय शिष्यान् ॥ ६ ॥

प्रस्थिताश्च ते परस्परालापेषु, अथर्वशिखाप्रवर्तकतामाङ्गिरसाख्य-योगरहस्यप्रवर्तकतामृग्यजुषोद्घुष्टप्रभावतामप्यनुस्मृत्य, प्रशंसन्तो ब्रह्मपुत्रं भगवन्तं तमङ्गिरसं, प्रशंसन्तश्च गूढचर्यारतं महर्षिं संवर्तशिवाचार्यं मरुत्तानुग्रहवाराणसीनिषेवणव्रताद्युपाख्यानेन, शंसन्तश्च संवर्तानुजमाङ्गिरसं सर्वतन्त्रेषु प्रवचनपारदर्शनप्रबन्धनिर्माणप्रतिभाव्यवहार-कौशलैः, परिहरन्तश्च लोकायतिकतन्त्रतीर्थकरताप्रयुक्तमपकर्षमपि बाह्य-तन्त्रप्रवर्तकपरमेश्वरनिदर्शनोपदर्शनेन, समागम्य यथाविधि संनताश्च स्वगुराविव सह शिष्यैः सुराचार्यं सनत्कुमारसमीपमानिन्यिरे ॥

इसके बाद सनत्कुमारने अपनी योगदृष्टिसे स्वयं जान लिया कि सशिष्य बृहस्पति आये हैं, इसके बाद उन्होंने तमोगुणसे पारवर्त्ती महाप्रभाव अपने शिष्योंको बृहस्पतिका आदर करनेकी आज्ञा दी ॥ ६ ॥

सनत्कुमारके शिष्योंने परस्पर कथोप कथनमें बृहस्पतिकी अथर्वशिखाप्रवर्त्तकता, आङ्गिरसनामक योगरहस्यकी प्रवर्त्तकता और ऋक्-यजुके द्वारा प्रभावकी घोषणा आदिका स्मरण किया, ब्रह्मपुत्र अङ्गिराकी प्रशंसाकी, छिपकर कार्य करने-वाले महर्षि संवर्त्त शिवाचार्यकी प्रशंसाकी, उनके द्वारा किये गये देवानुग्रह, वाराणसी-निषेवणव्रतकी चर्चाकी, संवर्त्तके अनुज आङ्गिरसके प्रवचनकला-पार-दर्शित्व, तथा प्रबन्धनिर्माणशक्ति, और व्यवहारकुशलताकी चर्चाकी । आङ्गिरसने जो चार्वाकमतका प्रवर्त्तन किया था उससे जो उनकी निकृष्टता प्रकट हुई थी, उसकी वे लोग चर्चा यह कह कर नहीं करते थे कि भगवान्ने भी तो बाह्यतन्त्रकी प्रवर्त्तनाकी थी । सनत्कुमारके शिष्यगणने देवगुरु बृहस्पतिके पास आकर अपने गुरुकी तरह उनकी वन्दनाकी ।

सनत्कुमारेण समागमे गुरो-
र्निशाम्य वृत्तां विविधास्तदर्हणाः ।
निशम्य वादेष्वथ चास्य चातुरीं
विशिष्य तस्मिन्नमरा विनेमिरे ॥ ७ ॥

आङ्गिरसोऽपि प्रणम्य भक्त्या महत्या परमेष्ठिनमिव सनत्कुमारं, आवेद्य देवकार्यं, अनुज्ञाप्य च तेन पाकशासनं, अनुव्रज्य परिष्वज्य गाढं, आदिश्य चतुर्मुखोपसर्पणेतिकर्तव्यतां, अनुगृह्य शिवेन चेतसा, विसृष्टस्तेन, विनयातिशयादादृष्टिपथादादधानः शिरस्यञ्जलिं, आस्थाय महान्तं योगं, आवर्तयन् प्रणवमेव, सहामरैरासासाद महतावधानेन हैरण्यगर्भमायतनम् । गच्छन्तः पथि--

वाग्देवीवदनारविन्दगलितब्रह्मोद्यविद्याशत-
ग्रन्थग्रन्थिविभेदजातकुतुकब्रह्मर्षिहर्षस्तवैः ।
कर्णाभ्यर्णगतैर्निवृत्तनिखिलक्लेशा दिगीशास्तदा
निर्वव्रुर्न च वव्रुरव्रणमपि स्वर्गं पुनर्गाहितुम् ॥ ८ ॥

जब देवोंने सुनाकि गुरुके आनेपर सनत्कुमारने नानाप्रकारसे उनका सत्कार किया है, और जब उन्हें सनत्कुमारकी वादचतुरता देखनेका अवसर मिला, तब देवगण सनत्कुमारके प्रति विशेष रूपमें नम्र हो गये ॥ ७ ॥

बृहस्पतिने सनत्कुमारको ब्रह्माकी तरह बड़ी भक्तिसे प्रणाम किया, देवकार्यका निवेदन किया, इसकी सूचना इन्द्रको दी, गाढ़ालिङ्गनपूर्वक इन्द्रने बृहस्पतिका अनुगमनकिया, बृहस्पतिने इन्द्रसे ब्रह्माके पास जानेका प्रकार बताया, कल्याण-कामनाके साथ इन्द्रपर अनुग्रह दिखाया, इन्द्रने जबतक बृहस्पति आँखोंके सामने रहे शिरसे हाथ जोड़कर उन्हें विदादी, अनन्तर बृहस्पति योगधारण करके प्रणवका जप करते हुए देवोंके साथ बड़ी सावधानीसे ब्रह्माके आश्रममें पहुँचे ।

मार्गमें जाते हुए देवोंने सरस्वतीके मुखकमलसे निर्गत नाना वेदान्तवाद द्वारा ग्रन्थग्रन्थियोंके खुल जानेपर कुतूहलपूर्ण ब्रह्मर्षियोंके सहर्ष स्तुतिवाक्योंके कानमें पड़नेपर समस्त क्लेशको समाप्त समझा, उनदेवोंने उससमय बड़ी शान्ति पाई, और उन्हें क्लेशरहित स्वर्गमें भी पुनः जानेकी इच्छा नहीं रही ॥ ८ ॥

अपि चाद्राक्षुरविदूर एव ते निरस्तरजस्तमोव्यतिकरतया निर्मल-सत्त्वप्रकाशराशिमिव, निष्कलङ्कशशाङ्केष्टकासंघसंघटितमिव, निरन्तर-ज्वलद्बिन्धनज्वालापरिवर्तपिण्डितदुग्धसागरोर्मिनिर्मितमिव, चिरनिपात-घनीभूतशारदाशिरश्चन्द्रचन्द्रिकाविकीर्णनीहारसारसाधितमिव, त्रैविक्रम-चरणाक्रमाविद्धविध्यण्डकपालनिरर्गलनिर्गलदलकनन्दानिपातधौतमिव, विमलभास्वरप्रभावभासितनभोविभागं, अपास्तकलङ्कानुषङ्गतयेव धूमादि-मार्गचंक्रमपङ्किलचरणपशुजनानाक्रमणीयं, अशेषभुवनसर्गावशेषसारैरिव विलक्षणैः शब्दादिभिर्विषयैरुपस्कृतं, अनुश्रवमयैः प्राकारैराभ्युदयिकोपा-सनामयैर्गोपुरैरात्मोपासनामयीभिः कक्ष्याभिः प्रणवमयेन चास्थान-मण्डपेन परिशोभितं, निजनिजकार्यनिवेदनावसरप्रतीक्षितत्तल्लोकाधि-कारिकारितसंमर्दबहिर्द्वारवितर्दिकाभागं, आगन्तुकगन्धर्वकिन्नराप्सरस्स-मारब्धतौर्यत्रिकमौखर्यपूरितप्रथमकक्ष्यं, अनभिसंधिमत्कर्मयोगनिर्मल-

---

उन्होंने समीपमें ही ब्रह्माका भवन देखा जो समस्त रजोगुण तथा तमोगुणके शान्त हो जानेके कारण निर्मल सत्त्वराशिके प्रकाशके समान लगता था। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो निर्मल चन्द्र कलास्वरूप ईंटोंके समुदायका बना हो, सततप्रज्वलित बडवानलकी ज्वालाके संपर्कसे पिण्डीभूत क्षीरसागरकी तरङ्गोंसे निर्मित हुआ हो, बराबर पड़नेके कारण इकट्ठी हुई सरस्वती शिरश्चन्द्रकी चन्द्रिका द्वारा फैलाई गई नीहारबिन्दुओंसे बना हो, ऐसा लगता था मानो ब्रह्मभवन वामन भगवान्के चरणाघातसे ब्रह्माण्ड-कपालके फूट जानेपर बेरोक बहनेवाली अलकनन्दाके जलसे धुला हुआ हो। वह ब्रह्मभवन अपने स्वभाव स्वच्छ प्रभा-जालसे आकाशको भासित कर रहा था। धूमादि-मार्गसे जानेवाले पङ्किलचरण पापीजन वहाँ नहीं जाते हैं अतएव वहाँ किसी प्रकारके पङ्कका कलङ्क नहीं है। अशेष भुवनके निर्माणमें लगजानेके बाद बचे हुए सारभूत शब्दादि विषयोंसे ब्रह्मभवन उपस्कृत सा लगता था। वेद ही उसके प्राकार थे, अभ्युदय देनेवाली उपासनायें उसके पुरद्वार थीं, उपासनास्वरूप उसके प्रकोष्ठ थे, प्रणव उसका सभामण्डप था, बाहरके भागमें इकट्ठे हुए अपने-अपने कार्योंकी सूचना देने-वाले तत्तल्लोकाधिकारियों की वहाँ जमघट-सी लग रही थी, कक्ष्याओंमें जो पहली कक्ष्या थी उसमें आनेवाले गन्धर्व-किन्नर और अप्सरागण नृत्य-नीत-वाद्यसे

कर्मन्दिवृन्दपरिकर्मितद्वितीयकक्ष्यम्, अतिगहनन्यायसाङ्ख्ययोगादिदर्शन-तत्त्वावमर्शव्यसनकर्शितकणादकपिलपतञ्जलिप्रमुखविद्वद्दुर्दामजल्पकथा-घोषभूषिततृतीयकक्ष्यं, अतिविचित्रतरत्रयीशिखरोपपादितोपासनाभेद-वासनासनाथमुनियूथदर्शिताश्चर्यतुर्यकक्ष्यम्, अतिरहस्यवैश्वानरदहरादि-विद्यापरिचयानवद्यमहर्षिदर्शितोपासनाप्रपञ्चपञ्चमकक्ष्यं, अतिदूरविसृष्ट-दृष्टानुश्रविकविषयामिषरिरंसागन्धपरमहंसावतंसितषष्ठकक्ष्यम्, अति-चातुर्यपर्यवस्थापितानुश्रवतात्पर्यपर्यालोचनापनीतविपरीतान्वयशङ्काकलङ्क-निरङ्कुशकुशलजनालंकृतसप्तमकक्ष्यं, प्रसंख्यानपरासंख्यभृग्वङ्गिरोवसिष्ठा-दिगरिष्ठाधिकारिकमुनिमण्डलमण्डितास्थानमण्डपं,अपदं विपदां,अगोचरं वाचां, अनाशङ्कनीयमर्वाचां, अगम्यमाचारमात्रशरणैः, असाध्यमध्वरैः, अलभ्यमधिकैरपि तपोविपाकैः, दुरारोहं महादानैः, दुरवगाहमाहवसाहसैः असंभावनीयं मनसापि स्वायंभुवं भवनम् ॥

वायुमण्डलको मुखरित कर रहे थे, द्वितीय कक्ष्यामें फलकी आशा नहीं रखने-वाले कर्मयोगी संन्यासी भरे पड़े थे, तृतीय कक्ष्यामें अतिगहन न्याय-साङ्ख्य-योग आदि दर्शनोंके तत्त्वानुसन्धानमें व्यसन रखने वाले कणाद-कपिल-पतञ्जलि प्रभृति उद्धत विद्वद्गण अपने शास्त्रार्थघोष कर रहे थे, चतुर्थ कक्ष्यामें वेदान्तदर्शित अतिविचित्र उपासनाके संस्कारसे मुनिजन आश्चर्यजनक कर्म प्रदर्शित कर रहे थे, पञ्चमकक्ष्यामें अतिगुप्त वैश्वानर-दहरप्रभृति विद्याओंके परिचयसे युक्त महर्षिगण नानाविध उपासनाओं का प्रदर्शन कर रहे थे, षष्ठ कक्ष्यामें लौकिक तथा पार-लौकिक विषयसुखकी गन्धसे अपनेको अलग रखनेवाले परमहंस विराजमान थे, सप्तम कक्ष्यामें ऐसे कुशल जन विद्यमान थे जो बड़ी चतुराईके साथ वेदवाक्योंके तात्पर्यकी आलोचना करके विपरीत शङ्का-कलङ्कका अपनयन कर रहे थे। समाधिनिष्ठ असंख्य भृगु, अङ्गिरा, वसिष्ठ आदि अधिकारी मुनिमण्डल सभाभवन-को अलंकृत कर रहे थे, वहाँ किसी प्रकारकी विपत्ति नहीं थी, वह स्थान अव-र्णनीय था, वहाँ नवागन्तुकको भी किसी प्रकारकी शङ्का नहीं होती थी, वहीं आचारमात्रसे नहीं पहुँचा जा सकता था, यज्ञ वहाँ पहुँचानेकी क्षमता नहीं रखते थे, तपस्याकी अधिक मात्रासे भी वहाँ नहीं जाया जा सकता था, महा-दानोंसे वहाँ पहुँच पाना कठिन था, युद्धमें साहसका प्रदर्शन करके भी वहाँ प्रवेश नहीं पाया जा सकता था; वह मनके लिये भी अगम्य था।

स्वाध्यायाध्ययनादृतेन विधिना दृष्ट्यापि नालोकिताः
सभ्यैः प्रत्युत सर्वभोगविमुखैरुत्सारिता दूरतः ।
नृत्यन्त्यः सुरसुभ्रुवः परमधुस्तत्र व्यथां मानसी-
मानन्दैकपदेऽपि धामनि कलाकौशल्यवैफल्यतः ॥ ९ ॥

अपि च—

प्राकारगोपुरविहारवितर्दिकानां
मूलेषु यत्र हरिनीलशिलाविभङ्गाः ।
सक्ताश्चिरादिव जयन्ति युगान्तधूम-
संतानसंघटितसान्द्रमपीविलेपाः ॥ १० ॥

प्रविशन्तश्च तमालयं, 'ननु प्रातरागतस्य पुरुहूतनाम्नो दिवस्पतेः कतितमः पुरन्दरो नामायं' इति पृच्छ्यमाना दौवारिकैर्निर्जरा बलवदन्तर्ललज्जिरे । अपि च गच्छतामन्तरेणामालक्ष्य गतिमतिमलोमसां, अधिगन्तव्याधिगमेन निर्वृताः सर्वतोऽपि महर्षयः कतिचित् 'अतिचिरं कालमहो खलु वयमप्यमीषां सामीप्यसारूप्यसायुज्यसालोक्यसिद्धिमा-

---

वहाँ नृत्य करनेवाली अप्सराओंकी तरफ स्वाध्यायलग्न ब्रह्माने देखा भी नहीं, और सकल भोगसे निवृत्त सभ्योंने भी उन्हें दूर भगा दिया, इस स्थितिमें अपनी नृत्यकला-कुशलताकी विफलतासे नृत्यपरायण सुरसुन्दरियोंको बड़ी मानसिक व्यथा हुई ॥ ९ ॥

वहाँ पर प्राकार, पुरद्वार, एवं विहार-वेदिकाओंमें लगाये इन्द्रनीलमणिके खण्ड ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो प्रलयकालिक अग्निके धूमसे एकत्रित स्याहीके लेप हों ॥ १० ॥

वहाँ ब्रह्मभवनमें प्रवेश करनेपर दौवारिकोंने देवोंसे प्रश्न किया कि सवेरे जो दिवस्पति पुरुहूत आये थे, उनसे यह इन्द्र कैवें हैं ? इस प्रश्नसे देवोंके हृदयमें बड़ी लज्जा हुई । देव जब अन्दर जा रहे थे तब उनकी मलिन गति देखकर प्राप्य वस्तुको पालेनेसे शान्तचित्त कुछ महर्षियोंने कहा कि—"हमलोग भी चिरकाल तक इन देवोंके सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य-सालोक्य आदि को प्राप्त

शासाना नानाविधानि तपांसि वृथा चक्रुम' इति विगर्हमाणाः स्वमात्मानं लज्जितानमरान् भूयोऽपि लज्जयांचक्रिरे। अथ भगवानाङ्गिरसो देवर्षिभिः परिष्वज्यमानः पदे पदे नारदादिभिः, प्रत्युद्गम्यमानो विद्वद्भिः पतञ्जलिप्रमुखैः, अभिवाद्यमानः सिद्धविद्याधरैः, आनीयमानः सबहुमानमाप्तभृत्यैः परमेष्ठिनः, परिवृतो देवैः परमाश्चर्यनिर्भरैः, प्रकृतिगुणैरिव परस्परयोगवियोगपरिणमद्भेदैरुच्चावचैर्मणिभिरुपरञ्जितं, उपर्यास्तीर्णहंसतूलिकातल्पकल्पितमहार्होपबर्हं, अहिंसानृशंस्यकोमलिमावर्जितशमदमाभोगमन्तःकरणमिव महायोगिनां, तालवृन्तचामरताम्बूलकरण्डकलाचिकाद्युपचारचतुरवरवर्णिनीजनन्यस्तवामहस्तवेष्टिततया व्याकोचाष्टदलात्मिकां व्यञ्जयदिव कमलासनतां त्रिभङ्गीसमुन्नततया त्रिवर्गातीतमिव सर्वतोभद्रं भद्रासनमधितिष्ठन्तं, समसमयसमुद्यदादित्यसहस्रभास्वरैरर्केन्दुविद्युदनलरूपचतुस्तेजःसमुत्तम्भनायेव चतुर्दिक्षुनिर्जिहानैस्तेजोभिरवलुम्पन्तमिव दिव्यमपि चक्षुर्दिवौकसां, संततव्यवहारसंसक्तचतुराग-

---

करनेकी आशामें रहकर व्यर्थ ही नाना प्रकारके तप करते रहे हैं"। इस प्रकारकी निन्दोक्तिसे स्वयम् लज्जित होनेवाले देवगणने और अधिक लज्जाका अनुभव किया। वहाँ पहुँचने पर बृहस्पतिका नारदादि देवर्षियोंने पग-पगपर आलिङ्गन किया, पतञ्जलि प्रभृति विद्वानोंने अगवानी की, सिद्ध-विद्याधरोंने अभिवादन किया, ब्रह्माके विश्वस्तभृत्योंने आदरपूर्वक उन्हें ब्रह्माके पास पहुँचाया। इस प्रकार चकित देवोंसे परिवृत बृहस्पतिने ब्रह्माको देखा। ब्रह्माका सर्वतोभद्र-भद्रासन परस्पर योग-वियोग द्वारा परिणामशील प्रकृतिके गुणोंकी तरह प्रतीत होनेवाले नानाविध मणियोंसे युक्त था, ऊपरमें हंसतूलिकामय आस्तरणपर विशाल तकिया पड़ा हुआ था, वह ऐसा लगता था—मानो अहिंसा, अक्रूरता एवं कोमलतासे पूर्ण महायोगियोंका हृदय हो, व्यंजन, चामर, पानका डिब्बा और उगलदान हाथोंमें लिये सेवापरायण सुन्दरियाँ अपने हाथ उस आसनपर डाले हुई थीं, जिससे वह आसन अष्टदल कमलके समान प्रतीत हो रहा था, वह तीन स्थानोंमें थोड़ा ऊँचा होनेसे त्रिगुणातीत सा लग रहा था। ब्रह्मा एक साथ उगनेवाले हजार सूर्योंकी तरह स्वच्छ तेज चारो ओर फैला रहे थे, मानो वह सूर्य-चन्द्र-विद्युत् और अनल रूप चार तेजोंको मन्दकर देना चाह रहे हों, उनके तेजसे देवोंके दिव्यनयन भी लुप्त हो रहे थे, ब्रह्मा चारमुखकमलोंसे बैठे हुए

माक्षरप्रेक्षणीयदन्तचन्द्रकाविकासपरिहृतसंसारशार्वरैरायतापाङ्गरिङ्गदभङ्गुरकरुणातरङ्गमालाभिराचार्यकाभिषेकमादधानैरिव योगिनामध्यात्मविद्यासु, चतुर्भिरिवान्तःपुरैर्दयितानां चतसृणामपि श्रुतीनां, आननपङ्कजैरनुगृह्णन्तमभितोऽपि महाशयान्, त्रैयम्बकमकुटावलोकनावलम्बितहंसदशार्जितेन मृणालवलयेनेव मृदुना शुचिना च सूत्रमयेनोपवीतेन सूचयन्तमिव सूत्रात्मकतामात्मनः, शस्त्रास्त्रविद्याकूपारपारीणक्षत्रियवर्गसर्गनिर्वृततयेव शस्त्रग्रहपराङ्मुखेन प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तपञ्चविंशतितत्त्वपरिवर्तनमात्रमेव व्यापार इति प्रदर्शयतेव पाणिना दक्षिणेन परिवर्तयन्तमक्षमालिकां, अहर्मुखेषु प्रथममपामेव स्रष्टव्यतामवधार्य धार्यमाणेनेव स्फटिकमयेन कमण्डलुना परिष्कृतेतरकरपल्लवं, असकृदधीताध्यापितनिखिलनिगमान्तसिद्धान्तपान्थसनकसनन्दनादिमहादेशिकोद्भावितदुर्भेदसंशयच्छेदसंवादजिज्ञासया मुहुर्मुहुरवलोकयन्तमन्तिकगतां वाग्देवतां, आचार्यमाचार्याणां, अधिगन्तव्यमधिगन्तव्यानां, परमानन्दतुन्दिलमपि

महानुभावगणको अनुगृहीत कर रहे थे, उनके मुखकमल सतत व्यवहारमें आनेवाले चारो वेदोंके द्वारा प्रेक्षणीय मुखचन्द्रकी चन्द्रिकाके विकाससे संसारस्वरूप अन्धकारका शमन कर रहे थे, विस्तृत अपाङ्ग-प्रदेशमें चरणशील करुणातरङ्गमालासे अध्यात्म विद्यामें योगियोंके आचार्य पदपर अपना अभिषेक-सा कर रहे थे, उनके चार मुख श्रुतिरूप चार दयिताओंके चार अन्तःपुर तुल्य थे, महादेवके मुकुटको देखपानेके लिये स्वीकृत हंसरूपकी दशामें अर्जित मृणालवलयके समान स्वच्छ तथा कोमल सूत्रमय यज्ञोपवीतसे वह अपनी सूत्रात्मकता प्रकाशित कर रहे थे, शस्त्र-अस्त्र विद्याके पारगामी क्षत्रियवर्गकी सृष्टिसे निवृत्त होकर शस्त्रग्रह-पराङ्मुख एवं प्रकृतिसे लेकर पृथिवीपर्यन्त पचीस तत्त्वोंका परिवर्तन ही कार्य रह गया है इस बातकी सूचना देनेवाले अपने दायें हाथसे वह अक्षमाला घुमा रहे थे। सृष्टिके आरम्भमें जलकी ही सृष्टि होती है इसकी सूचना देनेके लिये ही मानो उसने बायें हाथसे कमण्डलु पकड़ रखा था। अनेक वार पढ़ाये गये वेदान्त-सिद्धान्तकी चिन्तनामें लीन सनक-सनन्दन प्रभृति आचार्योंकी कठिन शङ्काओंके समाधानकी जिज्ञासासे वह समीपस्थित सरस्वतीकी ओर देख रहे थे। वह आचार्योंके आचार्य, ज्ञातव्योंके ज्ञातव्य, स्वयम् आनन्दपूर्ण होकर

प्रपन्नानुग्रहैकव्यसनिनं, समष्टिं भूतग्रामस्य, साधारणं पितरमखिलल
कस्य, विश्रान्तिभूमिं विद्याफलानां, विरामपदं वाग्विभूतीनां, दूरं दु
शयानां, अदूरमात्मवेदिनां, अधिगम्य भगवन्तं पितामहं, अत्यद्भु
सभासभानाथसंदर्शनजडीकृतो वाचस्पतिरपि भगवान् वाग्देवतावलो
कनसंपन्नभयकम्पसंभ्रमस्तम्भितवाङ्मुखः क्षणमवाङ्मुखश्च तदीयदिव्य
तेजःप्रतिहतदृष्टितया यावदास्त स्तब्ध इव, तावदनुग्रहमय्या दृशा जग
न्निधेः, आगच्छ वत्सेत्यमृतासारकिरा गिरा च गिरां देव्या निर्व्याज
माप्यायितः, समाधाय कथंचिदान्तरं करणं, अनुस्मरन् प्रणवं, आवर्त
यन् ब्रह्मसूक्तानि तत्तदागमोदितानि, प्रागेव नम्रोऽपि भक्तिभारेण प्रणम्य
शतशः सहामरैः प्रसादादेव देवदेवस्य प्रारभत किंचिदेवमभिधातुम् ॥

अगन्तव्यं तर्कैरनधिगमनीयं क्रतुशतै-
रनासाद्यं दानैरनुपसरणीयं च तपसा ।
भवन्तं पश्यन्तः शुचमभिभवन्तं प्रणमतां
कृतार्था जाताः स्मः पुनरपि कृतार्थाः पुनरपि ॥ ११ ॥

भी भक्तानुग्रहव्यसनी, भूतसृष्टिके समष्टिस्वरूप तथा सकललोकके पिता थे। वह विद्याफलोंके विश्राम स्थान, वाणीके विश्रामस्थल, दुराशयोंके लिये दूरवर्त्ती, तथा आत्मज्ञानियोंके लिये समीपस्थ थे ।

ब्रह्माके पास जाकर अद्भुत सभा तथा अद्भुत सभाधीशको देखकर बृहस्पति जड़ हो गये, वाचस्पति होकर भी वह वाग्देवताके दर्शनसे उत्पन्न घबड़ाहट तथा भयसे स्तम्भित होकर नीचेकी ओर देखते रहे। ब्रह्माके तेजसे उनकी दृष्टि मानो चकाचौंधमें पड़ गई थी। इतने ही में ब्रह्माने कृपादृष्टि डालकर और सरस्वतीने 'आओ वत्स' इन शब्दोंसे पुकारकर उन्हें तरोताजा बना दिया, मानो अमृतसे सींच दिया हो। इसके बाद बृहस्पतिने किसी तरह अपने मनको संभाला, प्रणवका स्मरण किया, ब्रह्मसूक्तकी आवृत्तिकी, पहलेसे ही नम्र तो थे ही, देवोंके साथ भक्ति भावसे शतशः प्रणाम किया, और ब्रह्माके अनुग्रहसे कुछ कहना प्रारम्भ किया।

तर्क आप तक नहीं पहुँच सकते हैं, बहुत सारे यज्ञोंकी भी पहुँच आपतक नहीं हो सकती है, दान भी आपकी प्राप्ति करानेमें अक्षम है, तपस्यासे भी आपके पास तक पहुँचना कठिन है, आप प्रणाम करने वालोंके शोक दूर किया करते हैं, आपको देखकर हम वार-वार कृतार्थ हो रहे हैं ॥ ११ ॥

किंच—

भूतग्राममिमं चतुर्विधमहो निर्मासि यल्लीलया
यच्च व्याकुरुषे निरन्तरमिमाः साङ्गाश्चतस्रः श्रुतीः ।
चातुर्यं कथमीदृगित्यपगता शङ्का समस्तापि न-
श्चातुर्यं भवतो भुजेष्वपि मुखेष्वद्य स्वयं पश्यताम् ॥ १२ ॥

इति । स च ततः 'साधु वत्स साधु स्थाने किल छन्दोगाः बृहती वाक् तस्याः पतिर्बृहस्पतिरिति नाम ते निगदुः' इति प्रशस्य 'परिम्लान इव लक्ष्यते कुतः पाकशासन' इति पृच्छति सानुकम्पमम्भोजसंभवे, बृहस्पतिः पुनरिदमभाषत—

'परिम्लाना दीनाश्चिरपरिहृतस्वस्वभवना-
श्चरन्तः पादाभ्यामवनिवलये भिक्षव इव ।
यदाख्यातुं दुःखं तव सविधमेते परिगता-
स्तदद्य व्यस्मार्षुः पदमिदमुपेता वितिमिरम् ॥ १३ ॥

जरायुज, अण्डज, स्वेदज एवं उद्भिज नामक चार प्रकारके प्राणियोंको आप उत्पन्न करते हैं और साङ्ग इन चार वेदोंकी सृष्टि किया करते हैं, आपको ऐसा चातुर्य कैसे हुआ, यह हमारी शङ्का तभी दूर हो गई जब हमने आपके चार हाथ और चार मुखके दर्शन स्वयं प्राप्तकर लिये ॥ १२ ॥

इसके बाद ब्रह्माने—"साधुवत्स, वैदिकलोक कहते हैं कि बृहती वाक् का नाम है और तुम उसके पति हो उनका कहना ठीक है" इसप्रकार बृहस्पतिकी तारीफ की, और कहा— उदास क्यों दीख रहे हैं इन्द्र । ब्रह्माके द्वारा इसप्रकार पूछे जानेपर बृहस्पतिने पुनः कहा—

हम उदास तथा दीन हो रहे हैं, बहुत दिन हुए हमारे भवन छीन लिये गये हैं, हमलोग भिखमंगोंकी तरह पैदल चलकर जिस दुःखका निवेदन करनेके लिये आपके पास आये हैं वह दुःख आज आपके निर्मल स्थानमें आकर हम भूल गये हैं ॥ १३ ॥

किंच—

यत्प्रत्यस्तमितप्रपञ्चमखिलव्यापारपारंगतं
प्रत्यग्ज्योतिरनुत्तरं शमधनैरालोच्यमेतादृशैः ।
तत्संप्रश्नकथासुधाभरितयोः सेक्तुं भवत्कर्णयो-
र्मिथ्याज्ञानविचेष्टितानि बलवज्जिह्वेति जिह्वैव नः ॥ १४ ॥

अथाप्यनुयोगाज्ञानिवर्तनाय किंचिदावेद्यते । योऽसावग्रतो भवतः परिणाम इव करुणायाः, परिपाक इव शमदमोपरमाणां, अधितिष्ठति शमवतामग्रासनं दुर्वासाः, अयमेव सर्वासां निदानमस्मदापदाम् ॥

अव्याजकोपनिधिना मुनिनामुनैव
निर्वासिता सुरपतेः सुरलोकलक्ष्मीः ।
आसाद्य दानवकुलानि दिवौकसो न-
श्चक्रे पदं कृपणमानवदुर्दशानाम् ॥ १५ ॥

अथ यद्भवतैव कल्पितमध्वरहविर्जीवनममर्त्यानामपहृते तस्मिन्नसुरैः,

---

आपके सदृश शमधन जन, समस्त प्रपञ्चसे दूरवर्त्ती एवं अखिल व्यापारके परे वर्त्तमान चरम आत्मज्योतिकी ही आलोचना किया करते हैं, आपके कान आत्मज्योतिकीही चर्चासे पूर्ण रहा करते हैं, हम उन्हीं कानोंमें अपने मिथ्या ज्ञानकी बातें डालने जा रहे हैं, इस कार्यमें हमारी जिह्वा बड़ी लज्जाका अनुभव-कर रही है ॥ १४ ॥

तथापि प्रश्नकी मर्यादाकी रक्षाके लिये हम कुछ कहने जा रहे हैं। यह जो आपके आगे करुणाकी मूर्ति एवं शम, दम तथा उपरमके स्वरूप बनकर बैठे हुए हैं यही दुर्वासा हमारी सारी आपत्तियोंकी जड़ हैं ।

इस अकृत्रिमकोपके निधान दुर्वासा मुनिनेही सुरलोककी लक्ष्मीको स्वर्गसे भगा दिया है, वह लक्ष्मी दानवोंके पास चली गई है और देवगण दीन मनुष्यके योग्य दुर्दशाओंके पात्र बन गये हैं ॥ १५ ॥

आपने ही तयकर दिया था कि यज्ञ-हविर्भाग देवोंकी जीविका होगी, उसे

असंभाविते च यादाकादाचित्के दाने द्विजन्मनां, अशिक्षिते च भौमवदन्नसाधनव्यसने, भवत्प्रसादादवधूय सौवर्गराज्यसिसाधयिषां, अपहाय दिव्यभोगेषु कौतुहलं, अन्नायैव स्पृहयमाणा निरन्तरं, अनिमिषतया श्रमावर्जितमूर्च्छाः स्वापमप्यलभमानाः सुलभमाना दिवौकसः सूक्ष्मतरं व्युदपद्यन्त दुर्भगानामन्नार्थिनामर्थनाभङ्गमन्दाक्षसंधुक्षितान्तरज्वालाकलापसंभृतेषु संभ्रमेषु मानवानाम् । किं बहुना—

यदियज्जीवितमेतैस्तदायुषा कल्पितेन भवतैव ।
या त्वियती मांसलता साप्यन्नापायशोभेन ॥ १६ ॥

आस्तामिदम् ।

प्रेक्षावन्तो दिशि दिशि नराः प्रेक्षमाणा धरण्या-
मित्थंभूतान् सुरपरिवृढानिन्द्रवैश्वानरादीन् ।
तत्तत्साम्योदयफलपरामप्रमाणीं पुराणीं
मत्वा वाचं विदधति शनैः कर्ममार्गेष्ववज्ञाम् ॥ १७ ॥

असुरोंने छीन लिया, ब्राह्मण लोग असमयमें कुछ दानकरें, यह संभव नहीं है, देवोंको इसकी शिक्षाही नहीं मिली है वह भूवासियोंकी तरह अन्न पैदाकरें, आपके अनुग्रहके बलपर देवोने स्वर्गराज्यको पानेकी अभिलाषा छोड़ दी, दिव्यभोगकी इच्छा भी निवृत्त करली, सदा अन्नकी ही स्पृहा करते रहे, अनिमिष होनेके कारण इन्हें श्रमजनितमूर्च्छा की स्थितिमें नींद नहीं आती है, इन अभिमानी देवोंको बड़ी तकलीफ है, यह अभागे अन्नार्थी एवं अभ्यर्थनाभङ्गकी स्थितिमें पेटकी ज्वालासे तड़पनेवाले मानवोंकी दशाको पहुँच गये हैं ।

आपने इनकी दीर्घ आयु बनादी है इसीसे यह जीवित हैं, अन्नके नहीं मिलनेपर इनकी शोभा बनी रहेगी इस प्रकारकी आपकी लिपिके बलपर यह भले चङ्गे दीख रहे हैं ॥ १६ ॥

पृथ्वीपर रहनेवाले बुद्धिमान् मनुष्य प्रत्येक दिशामें जब इन्द्र-वैश्वानर आदि देवोंको इस रूपमें दर-दर भटकते देखते हैं, तब उनकी देवसाम्य प्रदान कराने वाली श्रुतियोंपरसे प्रमाणताबुद्धि दूर हो जाती है। और वह कर्ममार्गपर अवज्ञा करने लगते हैं ॥ १७ ॥

अथवा नैतावदभिधातव्यमस्माभिः ॥

अभिदधति ते मूर्धानं द्यामनुश्रवसूक्तयः
सुचिरमसुराश्चैतामित्थं तुदन्ति दुराशयाः ।
निगमशिखराभ्यासव्यासङ्गतो यदि विस्मृतं
तदपि भवता तन्नो दौष्कर्म्यमित्युपरम्यते ॥ १८ ॥
इमे वयमिदं तत्त्वमित्थं स्थानमियं दशा ।
परं यदत्र कर्तव्यं प्रमाणं तत्र नो भवान् ॥ १९ ॥'

इत्यावेद्य विरमत्याङ्गिरसे, विनमत्सु च युगपदमर्त्येषु, प्रसादयन् सर्वानिदमाह पद्मसंभवः । 'विदितवेदितव्यैर्भवद्भिरित्थं न विप्रतिपत्तव्यं दुर्वाससि । यतः परिणाम एष करुणायास्तत एव महेन्द्रमनुजग्राह तनीयसा शापेन । परथा कथमतिवाहनीयमिन्द्रेण परःसहस्रैरपि वासरैर्निखिलजगन्मातुरम्बिकाया निर्माल्यसमुल्लङ्घनप्रसूतमिदं दुरितम् । तदस्मिन्महत्यपराधे यावदक्षपितमेतदेनस्तावदनुस्मरणमपि भवतामपराधो महा-

---

अथवा—हमको इतना नहीं कहना चाहिए ।

वैदिक सूक्तियाँ स्वर्गको मूर्धा कहती हैं, इन दिनों दुरात्मा दैत्यगण उस स्वर्गको ही व्यथितकर रहे हैं, वेदान्त अभ्यास करनेमें लीन होनेके कारण आप इस बातको भी भूल गये, यह हमारे कर्मका दोष है ॥ १८ ॥

यह हैं हम, यही है तत्त्व, यही स्थान है, यही दशा है, इसके आगे जो करना हो, उस विषयमें हमारे लिए आपही प्रमाण हैं ॥ १९ ॥

इस प्रकार कह कर बृहस्पति चुप हो गये। देवोंने एक साथ मिलकर ब्रह्माको नमस्कार किया, तब सभीको प्रसन्न करते हुए ब्रह्माने कहा—

आप सारी बातें जानते हैं, आपको दुर्वासाके प्रति इस प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये । यह दुर्वासाकी करुणाका ही परिणाम है कि उन्होंने छोटासा शाप देकर इन्द्रपर अनुग्रह दिखाया । यदि दुर्वासाने कृपा नहीं की होती तो इन्द्र हजारों दिनोंमें भी जगन्माता अम्बिकाके निर्माल्यको लांघनेसे उत्पन्न इस पापको किसप्रकार दूरकर पाते । अतः इस महापराधमें जब तक यह पाप मिट नहीं जाता तब तक आपका याद करना भी हमारे लिये महापराध होता, इसी-

निति चकितैरस्माभिरेतावदुदासितम् । महदपीदं दुरितं मन्दरपरिसरावासेन परिहृतमेव सवासनं भवताम् । तदपि जगज्जननीचरणापराधसंसर्गादधुनापि शङ्कमानैरस्माभिरन्य एवोपायः समुल्लिखितो भवदनुग्रहे । नारायणीप्रसादतिरस्कारजोऽयमपराधो नारायणीयप्रसादपुरस्कारेण समाधेय इति । तथाहि—

यदेतद्वामाङ्गं घनजघनकेशस्तनभरं
कदाचित्तच्छंभोर्भवति कमलाकौस्तुभधरम् ।
जगन्मातर्येवं यदपचरितं तन्मघवता
जगन्माता देवः प्रभवति स एव क्षपयितुम् ॥ २० ॥

तदागच्छत क्षीरसागरं, दर्शयिष्यामो भगवन्तम्' इति वदन्नासनादुत्थायान्तर्दधे भगवानब्जसंभवः ।

अथ कथमप्यमर्त्यपतयः परिहृत्य भयं
गुरुकरुणाविशेषपरिणामकृताभ्युदयाः ।

लिये हम इतने दिनोंतक आप लोगोंके विषयमें उदासीन बने रहे । इससमय भी जगज्जननी-चरणापराधसे शङ्कित होकर हमने कुछ दूसरा ही आपके अनुग्रहका उपाय ढूंढ़ निकाला है ।

नारायणीके प्रसादके तिरस्कारसे उत्पन्न इस अपराधका नारायणके प्रसादसे ही समाधान किया जाय, यही वह उपाय है । क्योंकि :—

केश, जघन, स्तन, आदि स्त्रीचिह्नोंसे युक्त जो शिवका वामाङ्ग है वह कभी कमला तथा कौस्तुभसे युक्त विष्णु बन जाता है, इस स्थितिमें इन्द्रने जो जगन्माताके प्रति अपराध किया है, उसका मार्जन जगन्माता देव विष्णु ही कर सकते हैं ॥ २० ॥

अतः आपलोग क्षीरसागर आइये, हम वहाँ भगवान् का दर्शन करा देंगे । इसप्रकार कहकर ब्रह्मा आसनसे उठे और अन्तर्हित हो गये ।

इसके बाद देवगण किसी प्रकारसे भयका परित्याग करके, गुरुकी कृपासे

अखिलजनुष्मदाशयगुहाशयमप्युदधौ
शयितमिमे समेतुमुदयुञ्जत शार्ङ्गधरम् ॥ २१ ॥

किंच—

पथि ध्वजं यं गरुडध्वजस्य
प्रस्थाय यान्तो ददृशुर्दिगीशाः ।
तमेव सद्यस्तदनुग्रहस्य
भविष्यतोऽपि ध्वजमग्रहीषुः ॥ २२ ॥

अवतरन्तश्च ते सत्यलोकादनेकसहस्रयोजनमपि पन्थानमतिलङ्घितं गणयन्तो गव्यूतिमात्रमिव, गुणयन्तो भाषितानि चतुर्मुखस्य, गुरुणाकृष्यमाणतयेव झटित्युपनिपत्य विशश्रमुरविश्रान्तपरिभ्रमदभ्रमारुतसंपातविनीतपथिकव्यथे जलदपथे । अद्राक्षुरपि तत्र ते निद्राणपुराणपुरुषनिद्राभङ्गापराधमाशङ्क्य संताडयन्तमिव विद्रुमकाण्डवेत्रदण्डैर्निवार्यमौखर्यसमुल्लासदुर्ललितानि कल्लोलमण्डलानि, निरिन्धनज्वलदबिन्धनज्वालासंबन्धान्निष्यन्दमानमिव वीचीभिरभितोऽपि, सद्यःसमा-

---

परिणाममें अभ्युदयकी आशा करते हुए, समस्त प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हुए, समुद्रमें शयन करनेवाले भगवान् शार्ङ्गधरसे मिलनेको उद्यत हुए ॥ २१ ॥

वहाँसे चलकर मार्गमें जाते हुए देवोंने गरुडध्वज विष्णुके ध्वजस्वरूप गरुड़के दर्शन किये, और उनको ही देवोंने अपने ऊपर होनेवाले भगवदनुग्रहका चिह्न समझा ॥ २२ ॥

सत्यलोकसे उतरकर देवोंने अनेक सहस्रयोजन मार्ग दो कोसकी तरह तय किया, वह ब्रह्माकी उक्तियोंको मनमें दुहराते थे, बृहस्पति उन्हें खींचे लियेसे जा रहे थे, मेघ तथा मारुतके सम्पर्कसे पथिकोंकी व्यथाको दूर करनेवाले मेघ मार्गमें उन लोगोंने थोड़ा विश्राम किया। देवोंने वहाँ क्षीरसागर देखा जो क्षीरसागर सोते हुए भगवान्‌की नींदके उचट जानेसे होनेवाले अपराधके भयसे प्रवालदण्डों द्वारा आवश्यक मुखरतासे दुर्ललित तरङ्गोंको ताड़ित-सा कर रहा था। वह क्षीरसागर विना काष्ठके जलनेवाले बड़वानलकी ज्वालाके सम्बन्धसे तरङ्गों

स्वादितशुद्धदुग्धपूरपूरितगर्भनिर्भरविशदनोरदनिकरसंछन्नतया संपन्नमिव मण्डेन, चिरसंभृततया संभावितपयोविकारपरिजिहीर्षुणा ततस्ततः क्षिप्ताभिरम्बुजसंभवेन समूलाभिरिवौषधीभिः शैवालमञ्जरीभिरभिशोभितं, चिरपरिचितक्षीरमेघरसास्वादसुखितचातकपोतसावज्ञनिष्ठ्यूतचञ्चुपुटनिपतदितरमेघशीकरम्, गोविन्दचरणारविन्दसंदर्शनायातविबुधसंसद्विमानहंसविविच्यमानसर्वतःपतदापगासहस्रनीरकृताहारलब्धसंभ्रमबन्धनवलवदविबन्धनानलम्, सायंप्रातिकोल्लासपल्लवितकल्लोलजालवेल्लितवेलागिरिशिखरसंचारलब्धदुग्धाभिषेकमुहूर्तविमलीकृतवन्यद्विपतया परिचिन्वन्तमिव चिरादैरावतसर्गचातुरीं, क्षीरैकनिधानतया पर्वकालावगाहनप्रसक्तपरमर्षिजनप्रस्तुताघमर्षणसूक्तगोचरक्षीरपदोहानूहविचारकोलाहलाभिभूतवीचीघोषम्, तृतीयावतारश्वेततानुचिकीर्षया स्वयमपि श्वेतीभवद्भिरिव भगवतः प्राथमिकावतारजातीयैः क्षीराहारपरिणाम-

---

द्वारा चारो ओर फैल-सा रहा था। तत्काल आस्वादित शुद्ध दूधसे उदरको पूरित करनेवाले स्वच्छ मेघमण्डलसे व्याप्त होनेके कारण वह क्षीरसागर ऐसा लगता था मानो फेनसे भरा हो। उस क्षीरसागरमें शैवालमञ्जरी व्याप्त थी, वह शैवालमञ्जरी ऐसी लगती थी मानो जलमें चिरकाल तक रहनेके कारण संभावित जलविकारको दूर करनेके लिये समूल औषधियाँ ब्रह्मा द्वारा इधर-उधर बिखेर दी गई हों। चिरकालतक दूधके रसका आस्वादन करने वाले मेघके रसका आनन्द लेकर सुखित चातकशावक जहाँ कुछ मेघोंको तिरस्कारपूर्वक अपने चञ्चूपुटसे चुला दिया करते हैं। भगवान् के चरणारविन्दोंके दर्शनार्थ आये हुए देवगणके वाहन हंस पानीको दूधसे अलग करते रहते हैं अतः चारो ओरसे आकर गिरनेवाली नदियोंके जलसे जहाँका बड़वानल प्रबल होता रहता है। सायं-प्रातःकाल आनेवाली उफानके क्रममें विस्तृत तरङ्ग-समूहसे सञ्चालित वेलागिरि-शिखरके सञ्चारसे दूधमें नहलाये जानेके कारण वन्यगजोंके स्वच्छ हो जानेपर ऐरावतनिर्माण-चातुरीका जो चिरकाल तक अभ्यास किया करता है। क्षीरनिधि होनेके कारण पर्वकालमें अवगाहनार्थ आये हुए परमर्षिजन द्वारा उच्चारित अघमर्षण सूक्तमें क्षीरपदका ऊह किया गया है अथवा नहीं किया गया है इस विषयके विचार-कोलाहलसे जिसकी तरङ्गमाला अभिभूत हो रही थी। भगवान्के तृतीयावतारस्वरूप वराहकी श्वेतताके अनुकरणमें श्वेतता धारण करनेवाले मत्स्यों तथा

निर्मलैर्मत्स्यकूर्मैः परिकर्मितम्, शार्ङ्गधरम् द्रष्टुं समागच्छेदपि जा चन्द्रशेखर इति संभावनया सज्जीकृतैः कैलासैरिव पयस्तरङ्गपरिपूरितैरन्त र्गतैर्गिरिभिरभिशोभितम्, कालचक्रमिव कर्कटमकरमीनकराम्बितम् गङ्गातीर्थमिव गर्भस्थानेकमठराजिविराजितम्, पाणिनीयसूत्रमिव परस्मैपदप्रतिपादकम्, आत्मतत्त्वमिवानिर्वचनीयगुणप्रपञ्चम्, कैलास शिखरमिव शैवलक्षणलक्षितद्विजषण्डमण्डितम्, निदाघभास्करमिव नितान्तमुत्तरङ्गत्वातिभीषणम्, समष्टिमिव क्षीरसर्गस्य, समवायमिव नैर्मल्यस्य, चन्द्रतारकादिनिर्मलवस्तुवर्गनिर्माणकौतुकिना विधिना विलाप्य निषिक्तमिव भुवि रजताचलम्, क्षौमावकुण्ठनमिव क्षमायाः, पद्मना- भशयनागारपर्यन्तकुट्टिममिव स्फाटिकशिलाचितम्, अनास्पदं कविगिरां,

---

क्षीरभक्षी होनेके परिणामस्वरूप श्वेतवर्ण कूर्मोंसे जो सर्वतः व्याप्त था। उस क्षीरसागरमें छिपे हुए दुग्धतरङ्गपूर्ण पर्वत ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों भगवान्के दर्शनार्थ कदाचित् शिवजी आजायें इसप्रकारकी संभावनासे तैयार होकर कैलास पर्वत बैठे हों। जिस प्रकारसे कालचक्र कर्क, मकर तथा मीनसे युक्त होता है उसी प्रकारसे यह क्षीरसागर केकड़े, मकर तथा मछलियोंसे युक्त था। गङ्गातीर्थ जैसे गर्भस्थान तक मठपरम्परायुक्त होता है, उसी तरह यह क्षीरसागर अभ्यन्तर- वर्त्ती अनेक कमठसमूहसे युक्त था। पाणिनीय सूत्र जैसे परस्मैपदका विधायक होता है उसीतरह यह दूसरोंका मोक्षदाता था। जैसे आत्मतत्त्वके गुणगण अनि- र्वचनीय होते हैं उसी तरह दुग्धसागरके भी गुणगण अनिर्वचनीय थे। कैलास- शिखर जैसे शैव चिह्नयुक्त ब्राह्मणों से भूषित हुआ करता है उसी तरह यह क्षीरसागर शैवलमें क्षणमात्र प्रतीत पक्षियोंसे भूषित था। ग्रीष्म ऋतुका सूर्य जिसप्रकार उत्तरकी ओर जाकर अतिभीषण हो जाता है उसी तरह यह क्षीरसागर विशाल तरङ्गोंके कारण भीषण था। वह क्षीरसागर ऐसा लगता था मानों समस्त दुग्धसृष्टि एकत्रित हुई हो। वह निर्मलताके समूहकी तरह प्रतीत होता था। चन्द्र-तारे आदि निर्मल वस्तुओंको बनानेकी कला जाननेवाले ब्रह्माने मानो रजताचलको गलाकर जमीनपर ढाल दिया हो। वह क्षीरसागर पृथ्वीके क्षौम वस्त्रसा प्रतीत हो रहा था। वह क्षीरसागर भगवान्के शयनागारकी स्फटिक शिलारचित दीवारसा लगता था। वह कवियोंकी वाणीसे परे, आश्चर्योंमें भी

आश्चर्यमाश्चर्याणां, आर्तिहरं चक्षुषोः, आनन्दमन्तःकरणस्य, दुरास-दमनाराधितनारायणचरणारविन्दानां दुग्धोदं नाम रत्नाकरम् ॥

घोषे क्वापि पुरा पयः कियदपि स्तैन्येन दैन्येन वा
लब्धुं योऽवहदीश्वरोऽपि जगतां जन्माधमं मानुषम् ।
तं विस्मापयितुं तरङ्गवलयैर्घोषानसंख्यान्सृज-
न्नाभूभूतलसंभृतेन पयसैवावृत्य यो वर्तते ॥ २३ ॥

अपि च—

खाद्या यत्र सुधैव यस्य जठरे साक्षात्स धन्वन्तरिः
शेते यत्र समस्तरोगशमनो नाम्नैव देवोऽच्युतः ।
तस्मिन्दुग्धनिधावपि स्पृहयते नैव स्थिरामासिका-
मन्तर्लीनहलाहलोष्मचकितो नाथः स्वयं पाथसाम् ॥ २४ ॥

अपश्यन्नपि मध्यतस्तस्य किंचिदन्तर्निमग्नपुराणभूदारदंष्ट्रादण्ड-क्षोभितपयःपूरसमुद्धृतमिव नवनीतपिण्डम्, अभितश्चलदुच्छृङ्खलतिमि-

---

आश्चर्य, आंखोंकी थकावटको दूर करनेवाला, अन्तःकरणको आनन्द प्रदान करनेवाला तथा अभगवद्भक्तोंके लिये अप्राप्य था ।

पुराने समयमें जिस भगवान्ने चोरीके द्वारा अथवा भिक्षावृत्तिसे थोड़ासा दूध पालनेके लिये ईश्वर होकर अधम मानव-जन्म ग्रहण किया था, उस भगवान्को आश्चर्यचकित करनेके लिये तरङ्गों द्वारा असंख्य घोषोंकी सृष्टि करनेवाला यह क्षीरसागर पातालतल तथा भूतलपर क्षीरका प्रवाह फैलाकर अवस्थित है ॥ २३ ॥

जहाँ सुधाही भक्ष्य है, जहाँ साक्षात् धन्वन्तरि निवास करते हैं, और जहाँ नाममात्रसे समस्त रोगोंको शान्त करनेवाले भगवान् अच्युत शयन करते हैं, उस क्षीरसागरमें भी अभ्यन्तरवर्त्ती बड़वानलकी गर्मीसे चकित वरुणदेव स्थिरता-पूर्वक नहीं रहना चाहते हैं ॥ २४ ॥

देवोंने उसके मध्यमें कुछ भी नहीं देखते हुए भी भीतरमें निमग्न पुराण सूकरकी दंष्ट्रासे सञ्चालित दुग्धराशिसे समुद्धृत नवनीत-पिण्डके तुल्य प्रतीत

तिमिङ्गिलकुलवालविलोडनोद्भूतमारुतोद्धूतपुञ्जीकृतमिव फेनमण्डलम्, एकतः प्रतिपर्वनिर्मुच्यमानपङ्कजनाभशयनोरगनिर्मोकराशिमिव कालपरिपाकलब्धमृद्भावनिर्मलम्, नीवीबन्धमिव वसुन्धरादुकूलस्य, कल्पान्तरीयमन्दरवेष्टनक्लेशजनितया मूर्च्छया पतितस्य वासुकेर्जरतो वलयितमिव भोगमण्डलमप्रतिरूपमन्तरीपम् ॥

स्थानं विश्वसृजोऽपि तन्निरय इत्याचक्षते यद्विदो
यद्गत्वा गमनीयमुत्तरमितः क्वापि न श्रूयते ।
आयस्यापि हि साधयन्ति यतयो यत्रारुरुक्षां परं
तद्दृष्ट्वापि पदं हरेः सुरगणास्तस्तम्भिरे गाहितुम् ॥२५॥

अपि च—

दध्युर्यावदुपायं ते गन्तुं तत्र दिवौकसः ।
तावन्निदध्युरायान्तं तत्र देवं पितामहम् ॥ २६ ॥

होनेवाले, चारो ओर चलते हुए तिमि एवं तिमिङ्गिल बालोंके द्वारा किये गये सञ्चालनसे उत्पन्न पवनसे पुञ्जीकृत फेनपटलकी तरह लगने वाले, एक ओर पर्वोंमें छोड़े गये भगवान्के शयनमें शय्याका काम देनेवाले सर्पराजके कालपरिपाकवश मिट्टी बन जानेवाले निर्मोककी तरह प्रतीत होनेवाले, पृथ्वीके वस्त्रकी नीवीकी तरह प्रतीत होनेवाले, अन्तरीपको देखा जो कल्पान्तरमें मन्दरके वेष्टनमें उपयुक्त होनेसे प्राप्त मूर्च्छाके कारण वलयीभूत वासुकिके भोगमण्डलकी तरह लगता था ।

विद्वान् लोग जिसे ब्रह्माके लिये भी मुक्तिस्थान मानते हैं, और जहाँ जानेके बाद ऊपर जाना अवशिष्ट नहीं रह जाता है, तपस्वीलोग प्रयास करके भी जहाँ जानेकी इच्छाको दृढ़ता प्रदान किया करते हैं, भगवान्के उस स्थानको देखकर भी देवगण स्तम्भित होकर रह गये ॥ २५ ॥

देवगण जब तक वहाँ जानेका उपाय सोच रहे थे, तब तक उन्होंने देखा कि वहाँ स्वयं पितामह चले आ रहे थे ॥ २६ ॥

पश्यन्नथ तत्र पाकशासनमुखानमरान् प्रासादशिखरारोहणकुतूहलिनः पङ्गूनिव भग्नमनोरथान्, प्रसादविमलया दृष्ट्यानुगृह्य सहागच्छत मयेति संदिशन्नग्रतश्चचाल कमलासनः ॥

गच्छन्नेव ततः स तत्र गलितब्रह्माधिकारैश्चिरा-
दैकान्त्यं परमं गतैर्भगवति श्रीवल्लभे दुर्लभे ।
प्राचीनैः कमलासनैरुपगतो भक्त्या महत्या नमन्
सस्नेहं सदयं सखेदमपि च प्रत्येकमादिश्यत ॥ २७ ॥

'कथमद्यापि वत्स न परिणतोऽसि ।
वल्लभोऽसि सरस्वत्या वहसे च श्रुतीर्मुखे ।
जगत्पितामहश्चासि कस्तवाप्यनुशासिता ॥ २८ ॥

तच्चिन्तय तावत्स्वयमेव—

आयुर्येषाममीषां परममभिमतं किंचिदूनो मुहूर्तः
का संपद्वा विपद्वा प्रभवति भवितुं तत्र तेषां क्षणार्धे ।

ब्रह्माने देखा कि भगवान्के प्रासाद-शिखरपर आरूढ़ होनेकी इच्छा रखनेवाले देवगण पङ्गुओंकी तरह भग्न मनोरथ हो रहे हैं, तब प्रसाद-निर्मल दृष्टिसे अनुग्रह करके ब्रह्माने कहा कि आप लोग मेरे साथ चलें, इसप्रकार कहकर ब्रह्मा आगे-आगे चलने लगे ।

ब्रह्मा जब कुछ आगे बढ़े तब ब्रह्माके अधिकारोंसे च्युत तथा अतिदुर्लभ भगवान् श्रीवल्लभमें लीन पुराने ब्रह्मगणसे साक्षात्कार हुआ, ब्रह्माने पुराने ब्रह्मगणको भक्ति-भावसे नमस्कार किया, अनन्तर पुराने ब्रह्मगणने स्नेह, दया तथा खेदके साथ ब्रह्मासे इस प्रकार कहा ॥ २७ ॥

वत्स, तुम आज तक बूढ़े क्यों नहीं हुए ?

तुम सरस्वती के वल्लभ हो, श्रुतियोंको अपने मुखमें धारण करते हो, जगत् के पितामह हो, तुमको कौन उपदेश प्रदान करे ॥ २८ ॥

तुम खुद विचार करो—

इन देवोंकी आयु एक मुहूर्त्त से भी थोड़ा कम माना गया है, उतने भरमें

तत्यक्त्वा क्षुद्रजन्तून्दिवि चरत इमांश्चिन्तयन्नात्मनीनं
वत्स त्वं प्रार्थयेथा न किमपि परमं ब्रह्म लक्ष्मीसहायम् ॥'

इति बोधितो विधिरिदमाचचक्षे—'जानामि भगवन्तो जानामि।

कतीन्द्राः कति लोकेशाः कति विश्वसृजोऽथ वा ।
श्वासे श्वासे प्रजायन्ते प्रलीयन्ते च शार्ङ्गिणः ॥ ३० ॥

तथापि क्वचिन्नियुक्तेन मया तदनुगुणं चेष्टितव्यमिति व्यवस्यन्नागतोऽस्मि । तदद्य भवद्भिरेव दर्शितं भगवन्तमभिगम्य, भवद्भिरेवाक्षरैर्व्याहरेयम्' इति प्रश्रितवादिनि पद्मसंभवे, प्रसन्नाः पारिषदा हस्तग्राहमाकर्षन्तस्तमन्तिक एव दर्शयामासुरान्तरं रहस्यमुपनिषदाम् ॥

'यं त्वं चिन्तयसे नान्यं सर्वारम्भेषु सर्वदा ।
सत्त्वं चिन्तय सेनान्यं विष्वक्सेनमिमं हरेः ॥ ३१ ॥

इमं च पश्य वैनीतकं भगवतो वैनतेयं, यस्य किल पुरा कल्पे सुधाकुम्भहरणसंरम्भसंभ्रमोद्धूतपक्षमारुतविक्षेपसमुन्मूलिततया परितो

कौनसी विपत्ति या सम्पत्ति हो सकती है । हे वत्स, इन देवोंको छोड़कर तुम कुछ अपने विषयमें लक्ष्मीवल्लभ परब्रह्मस्वरूप विष्णुसे प्रार्थना मत करना ॥ २९ ॥

इस प्रकारसे समझाये जानेपर ब्रह्माने कहा—भगवन् मैं यह जानता हूँ,

भगवान् विष्णुके प्रत्येक श्वासमें कितने इन्द्र, लोकेश तथा ब्रह्मा उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ३० ॥

तथापि किसी खास कार्यमें नियुक्त होनेसे मुझे तदनुकूल ही कार्य करना चाहिये यही सोचकर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ । अतः इस समय मैं आपलोगोंके द्वारा दिये गये शब्दोंसे ही व्यवहार करूंगा, इसप्रकार नम्र व्यवहार करनेवाले ब्रह्माको देखकर प्रसन्न पार्षदगण हाथ पकड़कर खींचते हुए ब्रह्माको उस परमात्मा विष्णुका दर्शन कराया जो उपनिषदोंका रहस्य माना जाता है ।

प्रत्येक कार्यारम्भमें तुम जिनका ध्यान किया करते हो, वही हैं यह सत्त्वगुण स्वरूप भगवान् विष्णुके सेनानी विष्वक्सेन, तुम इनका ही ध्यान करो ॥ ३१ ॥

तुम इधर इस विनीत गरुड़की ओर दृष्टिपात करो, पूर्वसमयमें यह अमृतकलश लिये चला जा रहा था, वेगसे जानेके कारण इसके पक्षपातसे उन्मूलित

विकीर्यमाणेषु नन्दनोद्यानपादपेषु, प्रयत्नेन महता पारिजातमेकमाहृतवतो भगवतोऽपि मन्दाक्षमिवालक्ष्यत इति संश्रृणुमहे । अपि च—

छन्दो यथा यथा शौरेः संग्रामेषु जिगीषतः ।
तथा तथा प्रवृत्तोऽयं छन्दोमय इतीर्यते ॥ ३२ ॥

पादाङ्गुष्ठनखाग्रलम्बितमहाकूर्मद्विपाङ्घ्रिद्वय-
न्यासाटोपविभग्नचञ्चुविधृतन्यग्रोधशाखां गताः ।
येनोर्ध्वं पतता पुराणमुनयो नीताः पुरा मेनिरे
संसिद्धं सशरीरमूर्ध्वगमनं सद्यस्तपोभिर्दृढैः ॥ ३३ ॥

अस्य किलोपवीतमित्यायामतः साम्यमवधारयन्तः, पुरा निर्जरा मौर्वीपदे मेरुधन्वनो वासुकिमादिशन्निति वदन्त्येतिहासिकाः ।

पश्य ज्ञानक्रियेच्छामणिमयमुकुराबद्धमध्यात्मविद्या-
भास्वद्रत्नप्रदीपप्रकरपरिहृतध्वान्तमन्तः समन्तात् ।

होकर नन्दन काननके वृक्ष इधर-उधर बिखर गये थे, बड़े प्रयत्नसे यह केवल एकमात्र पारिजात वृक्ष ला सका था जिसके चलते इसे भगवान् विष्णुके सामने लज्जित होना पड़ा था । और—

युद्धमें विजयकी इच्छा रखनेवाले विष्णु जो इच्छा करते हैं वह गरुड़ तत्काल तदनुकूल प्रवृत्ति प्रकट करता है इसीसे इसे छन्दोमय कहा जाता है ॥ ३२ ॥

गरुड़के पादांगुष्ठके नखाग्र भागमें लटकते हुए महाकूर्मके दोनों चञ्चुलोंमें फँसे हुए वटवृक्षकी शाखाओं पर बैठे हुए प्राचीन मुनिगण गरुड़के ऊपरकी ओर उड़नेपर सशरीर ऊर्ध्वलोक गमन प्राप्तकर गये, उस ऊर्ध्वलोक-गमनको भी उन मुनियोंने अपनी उग्र तपस्याका फलही समझा ॥ ३३ ॥

वासुकिको लम्बाईमें समानता होनेके कारण गरुड़का यज्ञोपवीत समझा गया, और उस वासुकिको पूर्वसमयमें देवोंने मेरुधन्वाकी मौर्वीका स्थान प्रदान किया, यह बात ऐतिहासिकोंने बताई है ।

आप भगवान्के इस ओङ्कारस्वरूप शयनागारकी ओर देखें, इस आगारकी दीवारोंमें ज्ञान, क्रिया, इच्छास्वरूप मणिमय दर्पण लगे हुये हैं, अध्यात्म-

गाढाविद्याकवाटं प्रबलशमदमद्वारपालाभिगुप्तं
भक्तिद्वारं मुरारेरिदमिह शयनागारमोङ्काररूपम् ॥ ३४ ॥

इति प्रबोधितो विष्टिरीदृशतादृशतानवच्छिन्नवैभवमचक्षुर्ग्राह्यमनु-श्रवैकश्रवणीयमधिगन्तुमिव भगवतो रूपमासाद्य चक्षुःश्रवस्तनुमक्षिभिः सहस्राभ्यामनुभवन्तमिव परमाद्भुतं, आशयमागमानां, अतिवेलश्वासनिः-श्वासपरम्परासंपादितभोगोपचयापचयतया संततमुपपादयन्तमिव विलक्ष-णामूर्ध्वडोलाविहारनिर्वृतिं, आचार्यं योगविदां, आदिदेशिकं पदतन्त्रस्य, संप्रदायप्रवर्तकं शारीरकर्मणां भोगविमुखेषु हृदयेषु शमधनानां निरन्त-रावासनिर्वेदादिव भोगिनमेवं कमपि भुवनतलाकल्पमास्तीर्यतल्पमधि-शयानं, अतिशयानम्रमौलिभिर्महायोगिभिः प्रणामावसरप्रकीर्यमाणेषु कुसुमोपहारेषु सौकुमार्यातिशयसंसक्तैः कतिपयैरिव कल्पतरुप्रसूनैश्चिर-

---

विद्यास्वरूप चमकीले रत्नके प्रकाशसे यहाँका अन्धकार दूर भगा दिया गया है, अनादि अविद्यारूप कपाट इसमें लगा है, शम-दमरूप प्रबल दौवारिक इसके द्वारपाल हैं और भक्ति ही इसमें दरवाजा है ॥ ३४ ॥

इस प्रकार ससझाये जानेपर ब्रह्माने देखा कि यह विष्णु ईदृश अथवा तादृश आदि प्रकारविशेषसे अपरिच्छिन्न वैभवशाली हैं, इन्हें नयन नहीं देख सकते हैं, एकमात्र वेद ही इनका ज्ञान करा सकता है, इसी भगवान्‌के रूपको साक्षात् देख पानेके लिये चक्षुःश्रवाका रूपधारणकरके भगवान् दो हजार नयनोंसे इस परमाद्भुत विष्णुतत्त्वका अनुभव किया करते हैं। यह विष्णु आगमोंके आशय हैं। यह प्रबल निःश्वासके द्वारा भोगकी न्यूनता तथा अधिकताका सम्पादन करके विलक्षण ऊर्ध्वदोलाविहारके सुखका अनुभव किया करते हैं। यह योगियोंके आचार्य, पदतन्त्रके आदिम प्रवर्त्तक, तथा शारीर कर्मके सम्प्रदायप्रवर्त्तक हैं। शमधन योगियोंके भोगविमुख हृदयोंमें सतत निवास करते रहनेके कारण खिन्न होकर इस विष्णुने भुवनभूषण भोगीको शयनस्थल बनाकर निद्राका अनुभव किया है। आदिजननी लक्ष्मी तथा धरणीके गोदमें उनके दोनों चरण विद्यमान हैं जो चरण अतिनम्रमौलि योगियों द्वारा प्रणामकालमें विकीर्ण पुष्पोपहारमें-से सौकुमार्यवश संसक्त कतिपय कल्पतरुपुष्पके समान प्रतीत होनेवाले एवं चिरनिर्गत

निर्गतसिद्धसिन्धुशीकरशेषैरिव ततस्ततो लग्नैर्नखरैर्निरर्गलापवर्गदान-संसूचनाय नियन्त्रितेनेव ध्वजेन संसारकान्तारसंचरणखिन्नशारीर-कच्छायाप्रदानाय समावर्जितेनेव छत्रेण च परिष्कृताभ्यां पादकमला-भ्यामलंकुर्वाणमङ्कतलमादिजनन्योर्लक्ष्मीधरण्योः, कटितटावद्धकनकांशुक-प्रभातरङ्गपरिष्वङ्गपिशङ्गीकृतवसुमतीकमलाविवेचनाचतुरतत्तत्परिचारि-कोपचारविपर्यासपरिहासविनोदिनं, आविर्भविष्यदसंख्यहिरण्यगर्भाङ्कु-रमयमणिशताचितकर्णिकेन प्रतिसर्गावर्तमानप्रकृत्यादिधरण्यन्ततत्त्व-किञ्जल्कपुञ्जेन प्रपितामहेन भुवनानां पाण्डरेण सरोरुहेण मण्डितनाभि-मण्डलं, निर्मलचिन्मयवपुषि नित्यानुबिम्बितेन मृगमदतिलकेनेव वक्षःस्थितायाः श्रियः श्रीवत्सेन हृदयादुद्भूते चन्द्रमसि स्पर्धया स्वयमपि हृदयादाविर्भवता बालसूर्येणेव कौस्तुभेन भूषयन्तमप्राकृतानि भूषणान्य-पराणि, दिग्दन्तिशुण्डादण्डैरिव दिव्यतरुप्रकाण्डैरिव दुर्मददानव-निर्मथनयशोविशदैरिव मौक्तिकदामवेष्टितैर्विजयेन्दिरासमाश्लिष्टैरिव

गङ्गाकी जलबिन्दुके समान प्रतीत होनेवाले नखोंसे तथा अनन्त अपवर्ग प्रदान करनेकी सूचनाके लिये नियन्त्रितध्वज एवं संसाररूप काननमें संचरण करनेसे खिन्न आत्मगणको छाया प्रदान करनेके लिये प्रस्तुत छत्रसे शोभित हो रहे हैं। कमर में बँधे हुए स्वर्ण-वर्ण वस्त्रकी प्रभासे पीताभ शरीर हो जानेके कारण कौन लक्ष्मी हैं और कौन धरणी है यह पहचान पाना कठिन हो रहा है अतएव दासियाँ कमला तथा धरणीको नहीं पहचान सकनेके कारण उपचार में भ्रम करती हैं और भगवान् उनकी खिल्लियाँ उड़ाकर विनोद करते हैं। भगवान्का नाभिमण्डल श्वेतकमलसे मण्डित है, उस कमलकी कर्णिका पैदा होनेवाले असंख्य हिरण्यगर्भके अङ्कुर सदृश प्रतीत होनेवाले मणिशतसे व्याप्त है और प्रत्येक सृष्टिमें होनेवाले प्रकृत्यादि धरणीपर्यन्त तत्त्व स्वरूप जिसके किञ्जल्क हैं ऐसा है वह कमल। वक्षःस्थिता लक्ष्मी निर्मल चिन्मय शरीरमें सदा प्रतिबिम्बित हुआ करती है जिससे भगवान्का श्रीवत्सरूप लाञ्छन लक्ष्मीका मृगमद-लेपसा प्रतीत होता है। कौस्तुभ ऐसा लगता है मानो भगवान्के हृदयसे चन्द्रमाको निकलते देखकर स्पर्धावश सूर्य ही भगवान्के हृदयसे निकल रहाहो। कौस्तुभके प्रकाशमें अन्यान्य साधारण भूषण फीके लग रहे हैं। दिग्गजोंके शुण्डादण्डके समान, दिव्यतरु-प्रकाण्डसदृश, दुर्मददानवोंके दमनसे लब्ध कीर्तिसे विमलीकृत, मौक्तिक

विचित्रकनकाङ्गदकङ्कणाद्यलंकृतैश्चतुर्भिर्भुजैः सूचयन्तमिव चतुर्व्यूहतां, अहर्मुखविकसदाम्रपल्लवोल्लासिनि दन्तच्छदे विप्रकीर्णतया सान्ध्यराग संमूर्च्छितचान्द्रकोद्गारानुकारिणा मन्दस्मितेन कलिकलुषजीवाशयप्रसादनकतकरेणुभिः कैवल्यलक्ष्मीस्वयंवरदामभिरिव कलितनानावर्णविन्यासपेशलैः परिवहत्करुणासारसंपातशीतलैः कटाक्षैरप्यनुगृह्णन्तमनन्यशरणान्महामुनीन्, कार्णवेष्टनिकविलसन्मुखारविन्दकामनीयकावलोकनविस्मयमानकमलाविसीर्णचुम्बनासक्ताम्बूलरागसंपर्द्विडम्बिना पद्मरागतिलकेन परिष्कृतफालवलयं, अतिनिर्मलफणामण्डलोदरप्रतिबिम्बितैरहिराजफणामणिगणैरिव किरीटरत्नैरभिरञ्जितमहार्होपबर्हं, अतिविनयभारभङ्गुरैरनन्यार्पितदृष्टिभिराकृतिमद्भिरायुधैःपञ्चभिरभितोऽपि यथोचितमासेव्यमानं, अनुपमेयं, प्राकृतैर्भावैः, अप्रमेयमनुत्तरपदारोहपङ्गुभिरर्वाचीनैः प्रमाणैः अक्षोभ्यं विज्ञानसागरं, अक्षयं महानन्दशेवधिं, अतिदुर्लभ-

---

दामवेष्टित तथा विजयलक्ष्मी-समालिङ्गित भगवान्के चार विचित्र कनककेयूरादि भूषण-भूषित हाथ उनके सङ्कर्षणादि चतुर्व्यूहसे लग रहे हैं। वह प्रभातकालमें उल्लसित आम्रपल्लवके समान प्रतीत होनेवाले ओठपर फैले रहनेके कारण सान्ध्यरागरञ्जित चन्द्रिकाका अनुकरण करने वाले मन्दस्मितसे तथा कलियुगके दोषोंसे पूर्ण जीवरूप जलाशयको स्वच्छ करनेमें कतकरजके समान और लक्ष्मी स्वयंवरण माल्यतुल्य, और नानावर्णयुक्त और करुणा-प्रवाहपूर्ण होनेसे शीतल कटाक्षसे अनन्यशरण महामुनियोंको अनुगृहीत सा करते प्रतीत हो रहे हैं भगवान्का कपाल प्रदेश पद्मराग-तिलकसे शोभित हो रहा है वह पद्मराग-तिलक ऐसा लग रहा है मानो कार्णवेष्टनिक नामक आलिङ्गन-प्रभेदसे प्रसन्नमुखी कमला ने चुम्बन करके ताम्बूलराग लगा दिया हो। भगवान्के किरीट मणियोंसे उनके शिरोपधान जगमग कर रहे हैं, ऐसा लगता है, मानो अतिस्वच्छ फणामण्डलपर प्रतिबिम्बित होनेवाले अहिराजके फणामणि ही उनके शिरोपधानको जगमगा रहे हों। अत्यन्त विनीत एवं अनन्यदर्शी शरीरधारी उनके पांच आयुध उनकी चारों ओर सेवामें उपस्थित हैं। सांसारिक पदार्थोंसे उनकी उपमा नहीं हो सकती है। आगे चरण रखसकनेमें असमर्थ नये प्रमाणगण उनका ज्ञान नहीं करा सकते हैं। वह अकम्प्य विज्ञान-सागर तथा अक्षय महानन्दनिधि हैं। वेदके

मश्रुतानुश्रवैरमीमांसितोपनिषदाशयैरनध्यासितनिदिध्यासनपथैरक्षालित-कर्माशयैरनुल्लङ्घिताविद्यकपर्वपञ्चकैः, अनायासलभ्यमतिदृढावलम्बित-गुरुचरणैरपायोपायवृत्तिपराङ्मुखैरप्रकम्प्यविश्वासभाजनैरात्मार्पणतत्त्ववेदिभिर्महाभागैः, असाधारणषाड्गुण्यं, अखिललोकशरण्य-मालक्ष्य सर्वप्रमाणपरायणं भगवन्तं नारायणं असकृत्प्रणिपतन्, असकृदुत्थाय, बध्नन् शिरस्यञ्जलिं, असकृदावर्तयन् प्रणवं, असकृदनुस्मरन् रतत्त्वं, अश्रुपूर्णैर्लोचनैरविरलपुलकाङ्कितैरङ्गकैरानन्दगद्गदैश्च वचोभिरित्थमस्तावीत्—

'क्षन्तारं सकलागसां जलधियां यन्तारमन्तस्तमो-
हन्तारं जगतामनुत्तरपराहंताङ्कितोरःस्थलम् ।
उद्यत्कौस्तुभशोभमुत्पलवनीसच्छायमच्छायत-
स्निग्धापाङ्गतरङ्गमैक्षिषि परं ब्रह्माच्युतं शाश्वतम् ॥ ३५ ॥
किं तर्कैरतिवक्रैः किं फलमुपबृंहणैर्विविधैः ।
अत्रैक्षिषि श्रुतीनामाशयमहिराजभोगशयम् ॥ ३६ ॥

अज्ञाता तथा उपनिषदोंके अभिप्रायको नहीं जानने वाले उनका परिचय नहीं पासकते हैं । निदिध्यासनपथसे अपरिचित तथा कर्मबन्धनोंसे अमुक्त एवं आविद्यक पर्वपञ्चकसे अरहितजनकी पहुँच वहाँ तक नहीं है । दृढ़ भावसे गुरुपादसेवी, आत्मार्पणतत्त्वज्ञ, अपाय तथा उपायसे विरक्त, दृढ़ विश्वासभाजन व्यक्ति उहें अनायास पासकता है । उनके सर्वज्ञता आदि छःगुण असाधारण हैं । अखिल विश्वके शरणप्रद सर्वप्रमाणपरायण उन भगवान् नारायणको देखकर ब्रह्माने बारबार प्रणाम किया, उठकर अञ्जलि बाँधी, असकृत् प्रणव दुहराया और परम तत्त्वका ध्यान किया । अश्रुपूर्ण नयनों, रोमाञ्चित अङ्गों, एवं आनन्दगद्गद वचनोंसे ब्रह्माने भगवान्की स्तुति इस प्रकारसेकी । 'आज सौभाग्यवश हमने सकल अपराधोंकी क्षमा करनेवाले, आन्तरिक अन्धकारके हरण करनेवाले, अनन्त अहन्तासे पूर्ण हृदय, कौस्तुभ-भूषित, उत्पलसमान कान्ति, स्निग्धापाङ्ग, तथा नित्यपरब्रह्मस्वरूप भगवान्के दर्शन प्राप्त किये हैं ॥ ३५ ॥

कुटिलतर्कोंकी क्या आवश्यकता है ? नाना प्रकारके विस्तृत विवेचनकी भी क्या जरूरत है ? मैंने श्रुतिप्रतिपाद्य परमात्माको यहाँ शेषके फणोंपर सोते देख लिया है ॥३६॥

अहो धन्योऽस्मि धन्योऽस्मि ।

एकं तद्द्विविभूति त्रिधामनिहितं चतुर्व्यूहम् ।
पञ्चायुधं प्रपद्ये षड्गुणसंपन्नमशरणः शरणम् ॥ ३७ ॥' इति।

अत्रान्तरे वाचस्पतिं पुरस्कृत्य वासवमुखा बर्हिर्मुखाः प्रविकीर्य पुष्पाञ्जलीन्, प्रणिपत्य दूरतः शतकृत्वः, समुत्थाय शिरसि संघटिताञ्जलयो विस्मयस्तिमिताः स्तम्भवदासांचक्रिरे ॥

तुष्टूषतोऽस्य बहुधा सुरदेशिकस्य
दिव्याद्भुतानि चरितानि परस्य धाम्नः ।
स्तब्धा सती श्वशुरदर्शनसाध्वसेन
वाणी न वक्त्रकुहराद्बहिराविरासीत् ॥ ३८ ॥

ततः प्रसादविमलपद्मनाभकटाक्षपरिक्षेपविदितेङ्गितया पादमूलनिविष्टया तस्य भगवत्या पद्महस्तया निसर्गमधुरैरपि निर्भरवात्सल्यसुधासारमधुरैरक्षरैः—'वत्स चिरादागतोऽसि, वर्तसे कुशलेन, का इमाः

अहा, मैं धन्यहूँ, मैं धन्यहूँ ।

एक होकर ही जो दो विभूतियोंसे युक्त हैं, जो तीन रूपमें व्याप्त एवं सङ्कर्षणादि चतुर्व्यूहशाली हैं, जो पञ्चायुध एवं षड्गुणयुक्त हैं, मैं अशरण उस शरणागतवत्सलकी शरणमें जाता हूँ ॥ ३७ ॥

इसीबीच इन्द्रादि देवोंने बृहस्पतिको आगे करके पुष्पाञ्जलि अर्पितकी, दूरसे ही शतशः प्रणाम किये, उठकर सिरसे अञ्जलि बाँधी, फिर स्तम्भकी तरह विस्मयसे ठिठककर खड़े रहे ।

देवगुरु बृहस्पति नानाप्रकारसे भगवान्के परम धामकी स्तुतिकरना चाहतेथे, परन्तु ब्रह्माके जनक विष्णुरूप-श्वशुरके दर्शनसे लज्जित होकर सरस्वती बृहस्पतिके मुखरूप गुहासे बाहर निकलना ही नहीं चाहती थी ॥ ३८ ॥

इसके बाद भगवान्के चरणोंके समीपमें बैठी हुई लक्ष्मीने देखा कि भगवान् इन्द्रादि देवगणपर प्रसन्न दृष्टिपात कर रहे हैं, बस लक्ष्मी भगवान्के अभिप्रायको समझगईं और लक्ष्मीने स्वभावतः मधुर तथा वात्सल्यभावपूर्ण शब्दोंमें कहा बेटा, बहुत दिनोंपर आये, अच्छी तरह तो हो ? यह प्रजायें कौन हैं जो भीतसी

प्रजाः कान्दिशीका इव लक्ष्यन्ते' इत्यनुयुज्यमानो विधिरन्तरानन्द-तुन्दिलः प्रणम्य शतशः परां देवतामिदमाबभाषे—

'जय जय जगदम्ब जाम्बूनदाम्भोजकोशप्रभे
जय जय कमलाक्षवक्षःस्थलीहर्म्यनर्मप्रिये ।
जय जय करुणाकटाक्षप्रतीक्षत्रिलोकेश्वरे
जय जय जनिमार्गलग्नाणुवर्गापवर्गप्रदे ॥ ३९ ॥

वत्सेति प्रवहत्सुधारसपरिष्वक्तं यदामन्त्रितं
दृष्टं यच्च दयातरङ्गशिशिरोत्सङ्गैरपाङ्गैस्त्वया ।
तस्मादस्म्यधुना विशिष्य कुशली धन्याश्च देवा इमे
विज्ञाप्यं तु कथं हरौ किमथवा तस्यादिरादिश्यताम् ॥'

इति यावत्प्रार्थयते कमलां कमलासनस्तावद्गोविन्द एव स्वयमित्थ-मनुजगृहे—

लग रही हैं, इस प्रकार पूछे जानेपर ब्रह्मा आनन्दसे पूर्णहृदय हो गये, लक्ष्मी-स्वरूप परा देवताको शतशः प्रणाम किया, और इस प्रकार कहा—

हे स्वर्णमय कमलके कोशकी कान्तिके समान देहकान्तिशालिनि, हे कमल-लोचन विष्णुकी छाती रूप भवनमें क्रीडापरायणे, तुम्हारी जयहो जयहो। त्रिलोकेश्वर तुम्हारी करुणादृष्टिकी प्रतीक्षामें रहा करते हैं, तुम्हारी जयहो। तुम जन्ममार्गमें निरत अणुओंको मुक्ति प्रदानकरती हो, तुम्हारी जयहो ॥ ३९ ॥

मुझे जो सुधासे सने वत्स शब्दसे सम्बोधन किया गया, कृपायुक्त नयनापाङ्गों-से देखा गया, इतनेसे ही मैं अब कुशली हूँ और यह देवगण धन्य हो रहे हैं, भगवान्से किस प्रकार अपनी बात कही जाय, इसका आदि कृपया आप बतावें ॥ ४० ॥

ब्रह्माने जभी लक्ष्मीसे इस प्रकार प्रार्थनाकी, तभी स्वयं भगवान्ने इस प्रकार कहा—

'स्रष्टासि तात जगतोऽस्य चराचरस्य
संधारयस्यथ मुखैश्चतुरोऽपि वेदान् ।
तेनासि लोकदयितो दयितो ममापि
तद् ब्रूहि कं सफलयामि मनोरथं ते ॥ ४१ ॥
कत्यसृजं विश्वसृजः कति वा स्रक्ष्यामि कति सृजाम्यधुना ।
भवति परभक्तिशालिनि भवतीव न मे क्वचित् करुणा ॥ ४२ ॥'

इति मधुरां गिरमिन्दिरापतेः पिबन्नष्टभिः कर्णैः पितामहस्तादात्विक-हर्षसंभ्रमावलुप्तवक्तव्यः कथंचिदिदमाचचक्षे—

'स्वप्नोन्मादावपि हि सृजतो नाथ वस्तूनि मिथ्या
संधार्यन्ते ननु च मनुजैरप्यमी वेदवादाः ।
प्रापं श्रेयः किमहमियता प्रापमेवानया तु
स्वामिन्दृष्ट्या तव शिशिरया मङ्गलं मङ्गलानाम् ॥ ४३ ॥

हे ब्रह्मन्, तुम इस चराचर जगत्के स्रष्टाहो, तुमनें अपने मुखों द्वारा वेदोंको धारण किया है, तुम लोकके प्रति दयालु हो, अतएव मेरे प्रियहो, बताओ मैं तुम्हारा कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ ? ॥ ४१ ॥

मैंने कितने ब्रह्मा पैदा किये हैं, और आगे भी कितने ब्रह्मा पैदा करूँगा ? परन्तु परम भक्त होनेके कारण आपपर मुझे जितनी दया है उतनी दया किसी भी दूसरे ब्रह्मापर नहीं है ॥ ४२ ॥

भगवान्की इस मधुर वाणीको ब्रह्मा अपने आठ कानोंसे पीते रहे, उस समयके हर्षसे अपना वक्तव्य वह भूल गये, किसी प्रकार यही कहा—

हे नाथ, स्वप्न तथा उन्माद भी मिथ्यावस्तुओंकी सृष्टि किया करते हैं, मनुष्यगण भी वेदोंको धारण करते ही हैं, (अतः सृष्टि करने तथा वेद धारण करनेसे) इतने भरसे मुझे कुछ महत्त्व नहीं प्राप्त हो जाना है। हाँ यह बात अवश्य है कि आपकी इस शीतल कृपादृष्टिसे मुझे मंगलोंमें भी मङ्गल प्राप्त हो गया है ॥ ४३ ॥

मनोरथानामपि यो मनोरथः सुदुर्लभानामपि यत्सुदुर्लभम् ।
तदेव लब्धं तव पादपङ्कजं कदर्थनान्येव कदर्थनान्यतः ॥

अपि च—

के देवाः के दनुजाः किं जगदेवेदमन्ततः कोऽहम् ।
परिहृत्य विमोहमिमं पालय दासोऽस्मि दासोऽस्मि ॥ ४५ ॥'

इति कटाक्षपातेन कमलायाः परिग्रहेण च भगवतः प्रतिबुध्य तत्त्वमुदासीने पद्मसंभवे, प्रपञ्चपाञ्चालिकानटनसूत्रधारः परमपुरुषः सर्वपथीनया महामायया तमाच्छादयन्, कर्तव्यमस्योपदिदेश—'सत्यमेव भवानाह कदर्थनान्येव कदर्थनानीति । अलमेव ह्यग्रतः स्थितिरस्माकम्, अवहितो गृहाणेदं, आदिश च सर्वानमरान्—

संधानं कुरुतासुरैः प्रथमतो मन्थानमुर्वीधरं
कृत्वा मन्दरमर्णवे क्षिपत ते यूयं समेतास्ततः ।
बद्ध्वा वासुकिनाथ मन्थत ततः संत्पस्यते या सुधा
तामास्वाद्य गमिष्यथाप्यमरतां यूयं न वः शत्रवः ॥ ४६ ॥

आपका जो चरणकमल मनोरथोंका भी मनोरथ तथा दुर्लभवस्तुओंमें भी सुदुर्लभ है, वही मुझे प्राप्त हो गया है, इसके अतिरिक्त जो भी अभ्यर्थनाकी जायगी वह एक प्रकारसे कदर्थना ही होगी ॥ ४४ ॥

देव कौन हैं, ? दानव कौन हैं ? जगत् क्या है ? अन्ततः मैं ही कौन हूँ ? भगवन् मैं आपका दास हूँ, कृपया इस मोहको दूर करके मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४५ ॥

इस प्रकार लक्ष्मीकी कृपादृष्टि तथा भगवान्का अनुग्रह पाकर ब्रह्मा उदासीन हो गये, तब प्रपञ्च चलानेवाले भगवान्ने व्यापक मायासे ब्रह्माको आवृत करते हुए इस प्रकारसे उपदेश दिया—आप ठीक ही कहते हैं कि अन्य प्रार्थनायें कदर्थनायें हैं । हम लोगोंका इसमें आगे रहना व्यर्थ है । सावधानीसे इसे ग्रहण करो, और देवोंसे कह दो—

हे देवगण, आप पहले असुरोंसे मिलकर मन्दराचलको मन्थन साधन बनाकर राक्षसोंके साथ मन्दराचलको सागरमें डालें, वासुकि नागको रज्जु बनावें, उसीसे मन्दराचलको बांधकर सागरको मथें, उससे जो सुधा निकलेगी, उसे पीकर आप ही अमर होंगे, आपके शत्रु असुर अमर नहीं होंगे ॥ ४६ ॥

परं तु भवितात्र दुष्परिहरः प्रत्यूहः परिहरिष्यते च प्रसादाद्देवदेवस्य । तदद्यप्रभृति विशिष्यावलम्बध्वमम्बिकारमणं शरणमिति ॥

जानम्यहमुमाकान्तं जानासि त्वं च मद्गिरा ।
जानन्ति किमिमे मूढास्तत्सम्यगनुशिष्यताम् ॥ ४७ ॥'

इति परमुपदेशं देशिको देवतानां
निरवधिकरुणाब्धिर्निर्जरेभ्यो वितीर्य ।
स्वयमपि हृदि गाढं चिन्तयन्निन्दुचूडं
मिषति कमलपीठे पद्मनाभस्तिरोऽभूत् ॥ ४८ ॥

अथ यथोपदेशमिन्दिरापतेरादिश्यादेष्टव्यमन्तर्हिते पितामहे, पूर्णमनोरथा दिवौकसः पुरहराराधनकौतूहलेन पुनरासेदुरुपत्यकां परमानन्दमन्थरा मन्दराद्रेः ॥

इति श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमतप्रतिष्ठापनाचार्यचतुरधिकशतप्रबन्धनिर्वाहकश्रीमन्महाव्रतयाजिश्रीमदप्पयदीक्षितसोदर्यश्रीमदाच्चान्दीक्षितपौत्रेण नारायणदीक्षितात्मजेन श्रीभूमिदेवीगर्भसंभवेन श्रीनीलकण्ठदीक्षितेन विरचिते श्रीनीलकण्ठविजये चम्पूकाव्ये द्वितीय आश्वासः ।

परन्तु इसमें बड़ा भारी विघ्न होगा, उसे महादेवकी कृपा ही दूर करेगी । अतः आपलोग आजसे ही खासकरके महादेवको शरणमें जायें ।

मैं महादेवको जानताहूँ, तुम भी उन्हें मेरे कहनेसे जानते हो, ये मूर्ख देवगण उन्हें क्या जानते हैं, अतः इन्हें उनके सम्बन्धमें भली भाँति समझा दो ॥ ४७ ॥

इसके बाद, अनन्त करुणासागर होनेके कारण देवाधिदेव विष्णुने उक्त प्रकारसे देवोंको उपदेश दिया, और स्वयं चन्द्रचूड़ शिवका हृदयमें ध्यान करते हुए कमलके मूँदते ही—ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये ॥ ४८ ॥

भगवान्के कथनानुसार देवोंको उपदेश देकर ब्रह्माके अन्तर्हित हो जानेपर पूर्णमनोरथ देवगण महादेवकी आराधनाके लिये पुनः मन्दराचलकी उपत्यकामें चले आये ।

द्वितीय आश्वास समाप्त

★

तृतीयाश्वासः

उपासीना नानाविधिभिरुपहारैश्च विविधैः
शरण्यं लोकानां शशधरकलोत्तंसममराः ।
मृषा संधित्सन्तः प्रकृतिकुटिलैर्दानवगणै-
र्विरिञ्चिस्यादेशादवृणुत गुरुं दूत्यविधये ॥ १ ॥
'परायणं नः परमं भवान्यतो
गुरुः पुरोधाः सचिवश्च दैवतम् ।
अतो वयं तावदनन्यसाधना
वृणीमहे त्वामवमेऽपि कर्मणि ॥ २ ॥'
इति प्रार्थितो देवैरिदमुवाच वाचस्पतिः—'नैतावदभिधातव्यम् ।
हि किंचिदवमं नाम कर्मास्ति राजोपजीविनाम् ।
तत्तस्य कीर्तिदं कर्म तदलभ्यं तदीप्सितम् ।
राजानः पुरुषं यत्र राजकीयं नियुञ्जते ॥ ३ ॥

देवगण नानाप्रकारके उपहारों द्वारा लोकशरण्य चन्द्रशेखरकी आराधना करने लगे । उन लोगोंने स्वभावतः कुटिल दानवोंके साथ झूठी संधि करनेके लिए दूतके रूपमें बृहस्पतिका वरण किया जैसा कि ब्रह्माने उन्हें आदेश दिया था ॥१॥

देवगणने बृहस्पतिसे कहा कि आप हमारे गुरु, पुरोहित, मन्त्री एवं पूज्य तथा सभी कुछ हैं, हम अनन्योपाय होकर इस नीच कार्यके लिए भी आपका ही वरण कर रहे हैं ॥ २ ॥

इस प्रकार देवों द्वारा प्रार्थित होनेपर बृहस्पतिने कहा—इतना कहनेकी आवश्यकता नहीं है । राज-सेवकोंके लिए कुछ भी कार्य नीच नहीं है ।

राजा लोग जिस कार्यके लिए अपने आदमीको नियुक्त करें वही कार्य उस आदमीके लिए कीर्त्तिप्रद, अलभ्य, तथा ईप्सित हुआ करता है ॥ ३ ॥

परंतु किंचिदत्र विवेक्तव्यम् । तथाहि—

अनालोच्य निजां शक्तिमदृष्ट्वा कार्यगाधताम् ।
औत्सुक्यादवगाहन्ते मन्दा मज्जन्ति चातलम् ॥ ४ ॥

सन्धिर्नाम ऋजूपायः साधुष्वेवायमायतते न पृथग्जनेषु । पुनर्दुरहंकारदूषितेषु दानवेषु । किंच । दूतवाङ्मुखकौशलसाधनीयोऽयमर्थः कथं नाम दूतदर्शनमप्यसहमानेषु संघटते । श्रूयत एव हि वैश्रवणेन प्रहितो दूतः सद्य एव समापितः सदसि लङ्कापतेः । अपि च प्रवृत्ताः समरकर्मणि भग्नोद्यमाः सर्वतोऽपि संधित्सन्ते दूरदर्शिनो लब्धं कथंचिदपि लिप्सितं, नतु लब्धमपि नाशयितुम् । पश्यत—

स्थानाच्च्यावयितुं क्षणात्पुनरपि स्थानेऽभिषेक्तुं च वा
शक्ताः केलिकथान्तरेष्वपि भवन्त्यर्धोद्गता यद्गिरः ।

परन्तु इसमें कुछ विचार करना है, क्योंकि—

अपनी शक्ति बिना विचार किये, और कार्यकी गम्भीरताको बिना देखे यदि कोई औत्सुक्यवश कार्यमें हाथ डाल देता है तो वह पाताल चला जाता है—असफल रहता है ॥ ४ ॥

सन्धि है बड़ा सरल उपाय, परन्तु वह साधुओंके साथ हो सकती है साधारण जनके साथ नहीं । दुरहङ्कार दूषित दानवोंके साथ तो सन्धि बहुत दूर है और यह बात भी है कि सन्धिरूप कार्य दूतके वचनसे ही सिद्ध किया जा सकता है । दानवगण तो दूतके दर्शनको बर्दास्त नहीं करते हैं तब उनके साथ सन्धि कैसे की जा सकती है । सुनते हैं कुबेर द्वारा भेजा गया दूत—रावणकी सभामें तत्काल मार दिया गया था । और यह बात भी है कि युद्धमें प्रवृत्त होकर भग्नोद्यम होनेपर दूरदर्शी जन किसी तरह अभीष्ट वस्तु पानेके लिए सन्धि करना चाहते हैं, लब्ध वस्तुको भी गँवानेके लिए कोई भी सन्धि करना नहीं चाहता है । देखें—

जिन दानवोंकी अनायास भावसे अर्धनिर्गत बाणी क्षणभरमें स्थानसे गिराने तथा पुनः क्षणभरमें ही स्थानपर आरूढ़ करनेमें समर्थ हो सकते

तेऽमी सर्वसुनिर्वृता दनुभुवः संधाय किं धावता
भिक्षार्थं परितोऽधुना मघवता संपादयन्त्वीप्सितम् ॥ ५ ॥

अपि च—

गौरश्वः करिणः स्त्रियो मणिगणाः शस्त्राणि वस्त्राणि वा
यानि प्राभृतयेम तान्यपहृतान्याक्रम्य तैरेव नः ।
तद्रिक्तेन करेण रिक्ततरया वाचापि चाहं कथं
शक्तः स्यां दनुजेश्वरान्वशयितुं संद्रष्टुमप्यन्ततः ॥ ६ ॥'

इति युक्तियुक्तमुपपाद्य विरमति देवगुरौ, विहस्तेषु च समस्तेषु दैवतेषु कृतमुखः स्वयं शतमखः किंचिदिदमाचचक्षे । 'भगवन्नेवमेवैतद्यदभिहितं भवता । किंतु—

निःसंख्यस्फुरदुत्तरोत्तरचमत्कारासु धारासु ते
वाचामक्षरमक्षरं त्रिजगतीवाग्गर्वसर्वंकषम् ।
श्रोतुं लालयितुं पुनः प्रतिसमाधातुं च वा किंचिद-
प्यर्वाञ्चः क इमे वयं यदि परं देवः स वाचां निधिः ॥७॥

है, वे दानव सर्वथा स्वस्थ हैं, वे भिक्षाके लिए इधर-उधर दौड़ते हुए आपके इन्द्रके साथ सन्धि करके क्या अभीष्ट प्राप्त करेंगे ? ॥ ५ ॥

गाय, हाथी, स्त्रियाँ, मणिगण, शस्त्र, या वस्त्र जो कुछ भी हम सन्धिके लिए दानवोंको उपहृत कर सकते थे, वह समस्त वस्तुएँ तो उन्होंने पहले ही हमसे छीनकर अपने वशमें कर ली हैं, ऐसी स्थितिमें इन रिक्तहाथोंसे तथा अतिशय रिक्तवचनसे दानवोंको मिलानेमें अथवा उनसे साक्षात्कार करनेमें किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं ॥ ६ ॥

इस प्रकार युक्तियुक्त वचन कहकर बृहस्पतिके चुप हो जानेपर स्वयं इन्द्रने मुँह खोलकर इस प्रकारसे कहा भगवन्, आपका कथन अक्षरशः सत्य है, किन्तु—असङ्ख्य रूपमें उत्तरोत्तर चमत्कारयुक्त आपकी वचनधाराके अक्षर-अक्षर जगतीके गर्वको दूर करने में समर्थ हैं । उस वचनधाराको सुनने, समझने तथा उसका उत्तर देनेमें हम नये लोग क्या समर्थ हो सकते हैं, इसका उत्तर केवल वचनोंकी निधि सरस्वती से ही बन सकता है ॥ ७ ॥

परं त्विदमेकमनुस्मारयाम्यादिष्टं यदध्यक्षमेव नः समस्तानां संधा
कुरुतासुरैरिति शार्ङ्गधन्वना परमेष्ठिने, यदपि च तेन तुभ्यम् ।

शिष्टं यदत्र दुष्टं वा न विवेक्तुं क्षमामहे ।
स जानाति स जानीते त्वं जानीषे तदन्ततः ॥ ८ ॥' इति

अनितरशरणत्वमात्मनस्तदृढमुपपादयताथ देवभर्त्रा ।
प्रतिहतवचनो गुरुः सुराणां प्रकटयितुं धियमात्मनः प्रतस्थे ॥

गच्छन्नेव च स पथि सर्वं करणीयमवधारयामास । अपि च—

अयं कालो बुद्धेरयमवसरश्चाटुवचसा-
मियं युक्ता वेला दिशि दिशि यशः संघटयितुम् ।
असावत्यर्घो नः सुकृतमुपचेतुं सुमहदि-
त्यवस्यन् प्राप प्रागसुरगुरुमाखण्डलगुरुः ॥ १० ॥

परन्तु मैं एक बातकी याद दिलाना चाहता हूँ जो विष्णुने हमलोगोंके सामनेमें ही ब्रह्मासे कहा था—"असुरोंसे सन्धि कीजिये ।" यही बात ब्रह्माने भी आपसे कही थी ।

इस विषयमें क्या अच्छा क्या बुरा होगा, हम उसकी विवेचना करनेकी क्षमता नहीं रखते हैं । इस विषयको अच्छी तरह वही जानते हैं या ब्रह्मा जानते हैं और अन्ततः आप जानते हैं ॥ ८ ॥

इस प्रकार इन्द्रने दृढ़तापूर्वक बता दिया कि अब दूसरा उपाय नहीं है, सभी अनन्यशरण हो रहे हैं । इन्द्रके वचनसे बृहस्पतिकी बातें शान्त हो गईं, अनन्तर बृहस्पति अपना बुद्धिकौशल प्रकट करनेके लिए चल पड़े ॥ ९ ॥

मार्गमें जाते समय ही बृहस्पतिने समस्त कार्यकलाप बुद्धिमें स्थिरकर लिया, और उन्होंने सोचा कि यही बुद्धिकौशल प्रदर्शित करनेका अवसर है, यही चाटुकारिता प्रकट करनेका मौका है, यही दिगन्तव्यापी यश सञ्चित करनेकी उपयुक्त घड़ी है, यही मुझे महान् पुण्य अर्जित करनेकी सुविधा मिली है । इस प्रकार विचार करते हुए बृहस्पति पहले शुक्रके आवासपर पहुँचे ॥ १० ॥

ततश्च तमतर्कितोपनतमभिगम्य सह शिष्यैः, अभ्यर्च्य विधिवदर्घ्यादिभिः सपर्याभिः, आसयन्महति मणिविष्टरे, भार्गवः स्वयमासीनस्तदनुज्ञया सविनयमिदमाचचक्षे—'अद्य मे सफलं जीवितं, अद्य हुतं विधिवदग्निषु, अद्य दत्तमतिथिष्वभ्यागतेषु, अद्याधीतमागमेषु सरहस्येषु, अद्याराधिता गुरवः, अद्य फलिनो गृहाश्रमाः । किं बहुना । अद्यायमन्वयः प्रतिष्ठितो भृगोः यदनुल्लिखितं मनोरथैः, अनवाप्यं तपोभिरपि, आशासनीयं गृहमेधिनां, आसादितमनायासेन मया स्वयमागमनं भगवतोऽधुना' इत्युदाहरति भार्गवे पुनरिदमुवाच वाचस्पतिः—

'पुत्रावुभौ प्रथमजौ भृगुराङ्गिराश्च
ख्यातौ कुले शमवतां ननु पद्मयोनेः ।
तद्भार्गवस्य कुलमाङ्गिरसः प्रपन्न-
श्चित्रीयते किमिह सोदरसंप्रयोगे ॥ ११ ॥

अपि च—

निष्ठामाश्रमधर्मपालनविधौ नित्याभियोगं शिवे
शक्तिं कर्तुमकर्तुमन्यथयितुं तन्त्रेषु राज्ञामपि ।

एकाएक उपस्थित बृहस्पतिको देखकर सशिष्य शुक्राचार्यने उनकी यथोचित अभ्यर्थना की, मणिमय आसनपर बैठाया, तदनन्तर स्वयं भी उनके सामने बैठकर शुक्राचार्यने नम्रतापूर्वक बृहस्पतिसे कहा—आज मेरा जीवन सार्थक हुआ, मेरे द्वारा किया गया सविधि अग्निहोत्र, अतिथि सत्कार, वेदाध्ययन, गुरुसेवन सार्थक हुआ, आज मेरा गृहाश्रम सफल हुआ । अधिक क्या कहा जाय, आज यह भृगुका वंश प्रतिष्ठापन्न हुआ है कि मनोरथों द्वारा अप्राप्य, तपस्यासे अलभ्य एवं आयाससे अनधिगम्य आप स्वयं पधारे हैं । शुक्रके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर बृहस्पतिने पुनः कहा—

भृगु तथा अङ्गिरा नामके ब्रह्माके पुत्र तपस्वियोंमें प्रख्यात हैं । (भृगुके पुत्र आप हैं और अङ्गिराका पुत्र मैं हूँ) अब यदि आङ्गिरस बृहस्पति भार्गवके घर आते हैं तो इस भाइयोंके मिलनमें आश्चर्यका स्थान ही कहाँ है ? ॥ ११ ॥

आश्रमधर्मके पालनके प्रति आपकी निष्ठा, शिवके विषयमें अनवरत भक्ति, एवं राजतन्त्रमें जो चाहें वैसा कर सकनेकी आपकी क्षमताके विषयमें सदा सुनता

वंश्रावमनुक्षणोपचितया प्रीत्याहमस्म्यागतो
यत्सत्यं भवदीक्षणाय हृदये तत्रावयोः साक्षिणी ॥ १२ ॥

इत्यभिदधानो गुरुरलमतिवात्सल्यादतिलालनेनेत्यभिधाय, विसृ
ामाजिकान्, विविक्ते पृष्टः कविना समागमनकारणमुदाजहारैनमु
त्तिगर्भया गिरा। 'आवेदनीयं किमखिलवेदिषु भवादृशेषु। तथा हि-

जानीषे जगदेव तावदखिलं स्वप्नेन्द्रजालोपमं
जानीषे ह्यधिकारदुर्विलसितं संसारमप्यावयोः।
जानीषे भगवत्परिग्रहपरीणाहं सुपर्वस्वपि
व्याहर्तव्यमितोऽस्ति यत्तदपि ते नापेक्षते मद्गिरम् ॥१३॥

अपि च—

येनादिश्यत वेधसा जनिमतामद्रोहतो जीवनं
तेनैव त्वयि दुर्धियां दनुभुवामादिष्टमाचार्यकम्।

रहा हूँ, इसीसे आपके प्रति उत्पन्न प्रीतिके कारण मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ, मेरे आनेका उद्देश्य केवल आपका दर्शन ही है। मेरे इस कथनकी सचाईमें हमारे तथा आपके हृदय ही साक्षी हैं ॥ १२ ॥

इस प्रकार कहते हुए बृहस्पतिने फिर कहा कि अतिशय वात्सल्यके कारण अधिक आदर देनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना कहकर बृहस्पतिने सभासदों को छोड़कर एकान्तमें शुक्रके द्वारा आगमनकारण पूछे जानेपर उपपत्तियुक्त शब्दोंमें इस प्रकार कहा—आपके समान सारी परिस्थितिके जाननेवालेके आगे कहना क्या है ?

आप जानते ही हैं कि यह सारा जगत् स्वप्नावस्था तथा इन्द्रजालकी तरह मिथ्या है, आप यह भी अच्छी तरहसे जानते हैं कि हमारा तथा आपका यह संसार अधिकारकी क्रीड़ा है। आपको यह भी ज्ञात ही है कि देवोंमें भगवान्के अनुग्रहकी कितनी मात्रा है। इसके आगे मुझे जो कुछ कहना है उसमें मेरे शब्द अपेक्षित नहीं होते हैं ॥ १३ ॥

जिस ब्रह्माने प्राणियोंको परस्पर द्रोहरहित होकर रहनेका उपदेश किया है उसी ब्रह्माने ही आपको असुरोंका आचार्यत्व प्रदान किया है। इस अर्थगहन-

अस्मिन् किं करणीयमर्थगहने मीमांसकैर्मादृशैः
शक्तस्त्वं त्वनुवर्तितुं तदपि खल्वाकाशवद्वर्तितुम् ॥१४॥

तत्कथंचिदेकीकृत्य देवासुरानेकान्तशीलाभ्यामावाभ्यामासितव्यमिति वक्तुकामोऽहमागतोऽस्मि ।' इत्यभिहितो गुरुणा यथार्थमेव तदालोचयन् कविरिदमाबभाषे—'भगवन्नेवमेवैतत् । तथा हि—

जानाम्येव यदाह पद्मनिलयो यच्चाह विश्वंभरो
यच्चास्ते हृदि ते यथा किल तदप्यग्रे विवर्तिष्यते ।
कस्त्वं संघटनेऽसि को विघटनेऽस्म्याकृष्य विश्वात्मना
योक्ष्यन्ते नचिरेण चेह तृणवद्वातेन देवासुराः ॥ १५ ॥

तदस्तु यथातथा वा संमुखीकरिष्यामि दानवान्, संभावयिष्यामि च भवन्तं, ततो यथामनोरथमभिधीयतां' इत्युपच्छन्द्य, समानीय वलेः

विषयमें हम क्या विचार कर सकते हैं, आप चाहें तो इसका अनुवर्त्तन कर सकते हैं और यदि चाहें तो आकाशकी तरह निर्लेप भी रह सकते हैं ॥ १४ ॥

अतः किसी प्रकारसे देवों और दानवोंको मिलाकरके एक कर दीजिये और आप तथा हम एकान्तसेवी बने रहिये, यही कहनेके लिए मैं आपके पास आया हूँ ।

बृहस्पतिके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर बृहस्पतिके कथनकी यथार्थतापर विचार करते हुए शुक्रने कहा—भगवन्, आपका कथन ठीक है ।

मैं जानता हूँ कि ब्रह्माने तथा भगवान्ने क्या कहा है । मुझे यह भी ज्ञात है कि तुम्हारे हृदयमें क्या है तथा आगे क्या होनेवाला है ?॥ तुम कौन होते हो मिलानेवाले तथा मैं कौन होता हूँ बिछुड़ानेवाला । विश्वात्मा भगवान् आकृष्ट करके शीघ्र ही देवों तथा असुरोंको युक्तकर देंगे जैसे हवा तृणोंको युक्त-कर देती है ॥ १५ ॥

अस्तु, जिस प्रकार होगा मैं आपको असुरोंसे मिला दूँगा, मैं आपका आदर करूँगा । आप जैसा चाहियेगा कह लीजियेगा । इस प्रकारसे प्रशंसा करके शुक्र बृहस्पतिको बलिकी सभामें बुला ले गये । वहाँ जानेपर शुक्रने नाना प्रकारसे

सभां, सभाजयन्विविधैरुपचारैः, सँल्लापयामास वासवगुरुम्। 'भगवन् दिष्ट्यासि दृष्टश्चिराय। किमागमनकारणं, किं कुशली मे भ्राता पुरंदरः, स किं करोति, किमावसति, नामापि तस्य न शृणुमहे तदाप्रभृति' इत्यनुयुञ्जाने बलौ सोत्प्रासमादद्दे गिरमाङ्गिरसः॥

'देयं यस्य सदेवमर्त्यभुजगं विध्यण्डमेवाखिलं
पात्रं यस्य जगन्निधिः स भगवान् देवः सरोजेक्षणः।
शिष्यो भूतपतेरसौ कुलगुरुर्यस्योशना भार्गवः
कीर्तिर्दानवराज तस्य भवतः कासां न पारे गिराम् ॥१६॥

तदभिगम्यापि सुदूरमवलोकयितव्यः पुण्यश्लोको जन इत्यागतोऽस्मि। भ्रातुरपि ते वृत्तान्तमावेदयामि॥

यस्यैवं भूर्भुवस्स्वर्भुवनपरिवृढो वर्तसे पूर्वजस्त्वं
दुर्दान्तध्वान्तभानुः स भवति भगवानेव यस्यानुजन्मा।

उनका सत्कार कराया, और बृहस्पतिकी बलिसे बातचीत करवा दी। बलिने पूछा—भगवन्, बहुत दिनोंपर आपके दर्शन हुए, मेरे अहोभाग्य। कहिये आप किधर चले हैं? मेरे भाई इन्द्र सकुशल तो हैं? वह क्या करते हैं, कहाँ हैं? इन दिनों उनका नाम भी नहीं सुनता हूँ, बलिके इस प्रकार पूछनेपर बृहस्पतिने कहा।

जो देव मर्त्य नागयुत समस्त ब्रह्माण्ड दे सकता है, जिसे भगवान् कमलनयन दानपात्रके रूपमें मिल गया है, जो स्वयं महादेवका शिष्य है, तथा जिसके कुलगुरु भृगुपुत्र शुक्राचार्य हैं, हे दानवराज, उसकी कीर्ति किसकी वाणीसे परे नहीं है, अर्थात् उस बलिकी कीर्तिका वर्णन कौन कर सकता है॥ १६॥

अतः दूर चलकर भी पुण्यात्मा बलिका दर्शन करनेको आ गया हूँ। मैं आपके भ्राताका वृत्तांत बताता हूँ।

भूः भुवः स्वः नामक तीनों लोकोंको अधिकारमें रखने वाले आप जिसके बड़े भाई हैं, दुष्टरूप अन्धकारके लिए सूर्यरूप भगवान् विष्णु जिसके अनुज हैं

संप्राप्तो यः शरण्यं त्रिभिरपि करणैर्देवदेवं त्रिणेत्रं
प्रष्टव्यं तस्य कस्मिन् कुशलमकुशलं तस्य जिष्णोः कुतः स्यात् ॥

स यदैव सङ्गररङ्गमारूढो योद्धुकामोऽवतस्थे तदैव तमशरीरिण्या गिरा निवर्तयिष्यन्नाहवान्निर्मार्ष्टुं मुनिशापमालिन्यमभ्युदयेन च योक्तुमधिकेन परमे तपसि परमेश्वरो नियुयुजे ॥

यः शक्यो न दृशापि गोचरयितुं सच्चैस्तमोगन्धिभि-
र्यत्र ब्रह्म सनातनं गिरिजया स्वैरं परिक्रीडते ।
अध्यारुह्य तमेव मन्दरमभिध्यायन्य आस्ते शिवं
कस्तं द्रक्ष्यति कः प्रवक्ष्यति कथां देवोऽपि वा दानवः ॥
प्रह्लादः प्रथमो गुरुर्भगवतस्तन्त्रेषु लक्ष्मीपते-
र्व्यातेने च विरोचनं कमलभूरध्यात्मविद्यानिधिम् ।
बाणः पारिषदाग्रणीः पशुपतेस्त्वं तु प्रवेकः सतां
सिद्धानामपि योगिनामशृणवं नैवं कुलं निर्मलम् ॥१९॥

जो मन, वचन तथा कायसे महादेवकी शरणमें जा चुका है, उसके कुशलकी क्या बात है, उसकी अकुशल हो कैसे सकती है ॥ १७ ॥

इन्द्र जब आपसे युद्ध कर रहे थे, उसी समय भगवान्‌ने आकाशवाणी द्वारा उन्हें लड़नेसे रोक दिया था और मुनिशापकृत मालिन्यको दूर करनेके लिए तथा अनन्त अभ्युदयसे युक्त करानेके लिए तपस्यामें नियुक्त किया था ।

तमोगुणयुक्त प्राणी जिसे दृष्टिसे देख भी नहीं सकता है, जहाँ पर नित्य-ब्रह्मस्वरूप शिव यथेच्छरूपमें पार्वतीके साथ क्रीड़ा किया करते हैं, उसी मन्दर-गिरिपर जाकर इन्द्र शिवका ध्यान कर रहे हैं, कौन देव या दानव उन्हें देखेगा या उनसे कुछ बातें कह सकेगा ॥ १८ ॥

लक्ष्मीपति भगवान्‌के तन्त्रमें प्रह्लाद प्रथम गुरु हुए थे, ब्रह्माने विरोचनको अध्यात्म विद्याका निधान बनाया था । बाण महादेवके परिषदमें अग्रगण्य थे । आप स्वयं सज्जनोंके मान्य हैं । इस प्रकार मैंने तो सिद्धयोगियोंमें भी किसीका इतना निर्मल कुल नहीं सुना था ॥ १९ ॥

तदत्र महाकुलप्रसूतस्य भवतो महदनुशिष्टस्य किमावेदनीयमन्यैः। स्वयमेव महाभागः स्वरूपं पर्यालोचयतु कार्यस्य ॥

ददति च वरं दत्त्वा सद्यस्तमन्यथयन्ति च
द्रुहिणहरगोविन्दाद्या दैत्येष्विति स्फुटमेव वः।
न च नियमतो देवानेवानुकम्पितुमीशते
यदसुरवरान् मध्ये मध्ये समुद्गमयन्ति च ॥२०॥
अतो ब्रह्मेशविष्णूनामपि शुद्धचिदात्मनाम्।
आचूडादानखाग्रेभ्यो मन्ये मायामयं वपुः ॥ २१ ॥

तदप्रदाय परेभ्योऽवकाशमन्योन्यसमवेतेषु युष्मासु—

यन्नैश्चिन्त्यं यदौर्जित्यं यद्बलं या सुखासिका।
यद्यशो यः प्रतापश्च सर्वं तदनुचिन्त्यताम् ॥ २२ ॥

आस्तामिदम्। अवश्यं हि विग्रहवत्सु युष्मासु भवितव्यमप्रकाशेन मया वा भार्गवेण वा। तथा च—

आप स्वयं महाकुलप्रसूत तथा महान् व्यक्तिद्वारा शिक्षित हैं, आपको दूसरा क्या उपदेश देगा, आप स्वयं कार्यके स्वरूपका विचार करें।

ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु— दैत्योंको वरप्रदान करते हैं और फिर वरको दूसरे रूपमें उलट देते हैं, यह बात आपको स्फुटरूपमें ज्ञात है। यह भी बात नहीं है कि वे नियमपूर्वक देवोंपर दयालु ही रहा करते हैं, क्योंकि देखा जाता है कि वह बीच-बीचमें असुरोंको उन्नत कर दिया करते हैं ॥ २० ॥

अतः मैं समझता हूँ कि ब्रह्मा, विष्णु या शिव शुद्धचित् स्वरूप भले ही रहें परन्तु उनका शरीर नखसे लेकर शिखा तक मायामय है ॥ २१ ॥

अतः दूसरोंको (बनाने या बिगाड़नेका) अवसर नहीं देकर यदि आपलोग आपसमें मिल जाते हैं, तब—

जो निश्चिन्तता, जो तरक्की, जो बल तथा जो सुखस्थिति तथा जो यश तथा प्रताप होगा, उन सारी बातोंका विचार कर लीजिये ॥ २२ ॥

छोड़िये इन बातोंको। आपको तथा देवोंको जब तक झगड़ते देखेंगे, तब तक हम तथा भार्गव प्रकाशमें नहीं आयेंगे, और—

निर्वर्त्यमाना यत्नेन निर्जरैरसुरैश्च वा ।
काः क्रियाः फलवत्यः स्युरावयोरप्रकाशयोः ॥ २३ ॥

आखण्डलस्य तु मतिरन्यादृशी—

स्थीयतामग्रजैः स्वर्गे जीयतामनुजेन वा ।
सर्वथा भ्रातृभाग्येन संवृत्तं नः प्रयोजनम् ॥ २४ ॥

अहं तु भवतः सार्वज्ञ्यादविशङ्कमवादिषम् । न खल्वात्मनः सचिवोक्तमित्येवादरणीयं परसचिवोक्तमिति वा परिहरणीयं, धीमतां धीरेव सचिवः शासिता' इत्यभिधाय विरमति देवगुरौ, अवलोकितो बलिना, भार्गवः सामाजिकाननुमोदयन्निदमाचचक्षे—'भो भो सकलाशयमर्मज्ञाः, समयज्ञाः संधिविग्रहयोः, पारीणा नीतिपथे, भवन्त एव प्रमाणमर्थेषु ॥

यद्यप्यद्य गतश्रियः सुमनसो यद्यप्यसौ तद्गुरु-
र्यद्यप्यस्ति फलं न किंचिदपि नः संधाय साध्यं सुरैः ।

देव तथा असुर बड़े प्रयत्नोंसे जिन क्रियाओंको करना चाहेंगे, वह क्रियायें भी क्या हमारे प्रकाशमें नहीं रहनेपर सफल हो सकेंगी ॥ २३ ॥

इन्द्र तो दूसरे ही प्रकारकी धारणा रखते हैं, वे कहते हैं कि—

मेरे बड़े भाई स्वर्गमें रहें, मेरे छोटे भाई विजयी बनें, भाइयोंके सौभाग्यसे ही मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है ॥ २४ ॥

आपको सर्वज्ञ समझकर मैंने सारी बातें आपसे निःशङ्क होकर कह दी हैं। अपने मन्त्रीका कथन सुना जाय और दूसरेके मन्त्रीका कथन नहीं सुना जाय, ऐसी बात नहीं होनी चाहिये। बुद्धिमानोंकी अपनी बुद्धि ही मन्त्री होती है। इतना कहकर बृहस्पति चुप हो गये, तब बलिने शुक्रकी ओर देखा, शुक्रने सभासदोंकी उपेक्षा करके बलिसे कहा—अजी, आप समस्त अभिप्रायके ज्ञाता हैं, समयज्ञ हैं, सन्धिविग्रहके रहस्योंको जानते हैं, नीतिमार्गके पारदर्शी तथा कर्त्तव्य-निर्णयमें दक्ष हैं।

यद्यपि आजकल देवगण हतश्री हो गये हैं, यद्यपि यह उन देवोंके ही गुरु हैं, यद्यपि इस समय देवोंके साथ सन्धि करनेसे हमको कोई लाभ नहीं होगा,

पर्यालोच्यमथापि किंचिदुदधिं निर्मथ्य लब्ध्वा सुधां
पास्यामो वयमित्यसौ रहसि मां यत्प्राह दिव्यो मुनिः ॥'

इति। तच्छृण्वन्त एव दानवाः संमोहिता मायया वैष्णव्या सद्य एव संमेनिरे, आहुश्च---

'संधास्यामः शमधनगिरा निर्व्यलीकं सुरैः प्राक्
क्षोभिष्यामो जलधिममृतं तत्र लप्स्यामहे च।
पास्यामश्चाप्यथ तदुभये यद्यमी साधवः स्यु-
र्नैवं चेत्किं विहतमियता बाहवः क्वागमन्नः ॥ २६ ॥'

इति। ततः साधु साध्वित्यनुमोद्यमानाः सचिवेन, प्रस्थाप्य वाचस्पतिं, प्रथमतः संधास्यन्तः प्रतस्थिरे दानवाः सद्य एव मन्दरम्। पूर्णमनोरथश्च गुरुः पुनरुपावर्तमानः संददर्श मन्दरमेत्य संततशिवध्याननिर्धूतकल्मषान् शिवार्चनव्रतिनः शिवार्पितप्राणान् शिवनामकीर्तनपवित्रितमुखान्

तथापि इस बातपर विचार करना चाहिए कि—समुद्रको मथकर अमृत निकालेंगे और हमलोग अमृतपान करेंगे इस प्रकार इस स्वर्गवासी मुनिने हमसे कहा था ॥ २५ ॥

इस बातको सुनते ही वैष्णवीमायासे मोहित दानवोंने तत्काल अनुमति दे दी। राक्षसोंने कहा—

हम इस मुनिवरके कथनानुसार बिना खेदके देवोंके साथ सन्धि कर लेंगे, पहले समुद्रको मथेंगे, फिर वहाँ अमृत प्राप्त करेंगे, अगर देवगण ठीक रहेंगे तो हम दोनों ही अमृत पियेंगे, यदि देवगण कुछ इधर-उधर करेंगे तो उस स्थितिके लिए हमारे हाथ तो हैं ही, वह तो कहीं अन्यत्र नहीं चले गये रहेंगे ॥ २६ ॥

इस पर मन्त्रीने 'साधु-साधु' कहकर उनका अनुमोदन किया, बृहस्पतिको विदाकरके पहले सन्धि करनेके लिए दैत्यगण तत्काल मन्दराचलको चल पड़े। पूर्णमनोरथ होकर लौटने पर मन्दराचल आकर बृहस्पतिने देखा कि इन्द्रादि देव सतत शिवका ध्यान करते रहनेसे निष्पाप हो रहे हैं, वह शिवपूजाव्रती बन गये हैं, उनके प्राण शिव पर अर्पित हैं, उनके मुख शिवनाम कीर्त्तनसे पवित्र हो रहे

शिवकथापारायणपरायणान् शिवाहंभावभावितान् शिवाद्वैतवादकोविदान् भस्मदिग्धतनूरुहान् भसितत्रिपुण्ड्रमण्डितपञ्चाष्टादिस्थानमनोहरान् प्रालम्बिजटाजूटवलयावलम्बितशकुनिकुलनादशकुनावेदितसंनिहितशांभवप्रसादान् शुद्धाध्ववर्तिनो विज्ञानकलमानिव शुनासीरमुखान् बर्हिर्मुखान् ॥

आख्याय निखिलं वृत्तमाशयं च विरोधिनाम् ।
आदितेयान् स दैतेयैः संधातुं समनीनहत् ॥ २७ ॥

ततो महता बलेन महता संनाहेन महता चावधानेन संधातुमागताः सर्वेऽपि दानवाः, प्रकृतिकुटिला अपि परिणततपोविशेषेण परिक्षीणकल्मषतया दुर्दर्शान् मध्याह्नभास्करानिव, दुरासदान् युगान्तपावकानिव, विस्रम्भणीयान् विश्वसृज इव, पुनः पुनर्दर्शनीयान् पूर्णसुधाकरानिव, संलक्ष्य गीर्वाणान्, संत्यज्य दुर्विशङ्कितानि, प्रतिपिध्यानुयात्रिकान्, परिहृत्य शस्त्रास्त्राणि, निर्मलेन मनसा निरन्तरं परिरेभिरे । संक्रन्दनोऽपि

हैं, वह शिवकथापराथण हैं, वह बराबर शिवोऽहम्की भावनासे भावित रहते हैं, वह शिवाद्वैतवादके ज्ञाता बन गंये हैं, उनकी देह भस्म लिप्त हो रही है, पाँच अथवा आठ स्थानपर उन लोगोंने भस्म त्रिपुण्ड्र लगा रखा है, उनकी लम्बी जटाओंमें निवास करनेवाले पक्षिगणके शब्द सूचितकर रहे हैं कि शीघ्र ही इनके ऊपर शिवकी प्रसन्नता होने वाली है, वह शुद्ध मार्गावलम्बी हैं, वह विज्ञानके फलसदृश लग रहें हैं ॥

वृहस्पतिने देवोंसे सारा समाचार तथा दैत्योंका अभिप्राय बताया, और उन्होंने देवोंको दैत्योंके साथ सन्धि करनेके लिए प्रस्तुत किया ॥ २७ ॥

इसके बाद महती-सेना, पूरी तैयारी एवं बड़ी सावधानीके साथ सन्धि करनेके लिए आये हुए समस्त कुटिल दानवोंने देखा कि परिपक्व तपस्याके प्रभावसे पापोंके क्षीण हो जानेके कारण देवगण मध्याह्नकालिक सूर्यकी तरह दुर्दर्श तथा युगान्तवह्निकी तरह दुर्गम हो रहे हैं । विश्वसनीय ब्रह्माके समान एवं दर्शनीय पूर्णचन्द्रमाके सदृश लगनेवाले देवोंको देखकर दानवोंने दुःशङ्काओंका परित्याग-कर दिया, साथ आनेवाले अनुचरोंको लौटा दिया, शस्त्रास्त्र छोड़ दिये, निर्मल

यथान्यायं समागम्य दानवैः, अभिवन्द्य पुरोधसं भार्गवं, अनुमतो वाचस्पतिना, किरन्निव सुधारसं, किंचिदिदमाचचक्षे---

'साफल्यं तपसामिदं सुमहतां साफल्यमक्ष्णामिदं
साफल्यं पितुराशिषामिदमिदं साफल्यमस्यायुषः ।
श्रीमत्काश्यपतातपादचरणस्थानोचितैर्भ्रातृभि-
र्ज्यायोभिर्यदहं विरोचनमुखैर्वात्सल्यपात्रीकृतः ॥२८॥

अपि च—

आराद्धा ननु यूयमेव गुरवस्त्रैलोक्यराज्यार्पणा-
दाराद्धा गुरुभार्गवप्रभृतयो ब्रह्मर्षयः शक्तितः ।
किं कर्तव्यमितोऽपि केवलमिह श्रान्तोऽस्मि शान्तोऽस्मि च
प्राप्तुं तत्परमामृतं यदि भवत्याज्ञा यतिष्ये सुखम् ॥२९॥'

इति वदन्तम्, भ्रातरमिन्द्रमिदमाहुरसुरेश्वराः 'मैवमाखण्डल मैवम् ।

हृदयसे देवोंको गले लगाया। इन्द्रने भी यथोचित रूपमें दानवोंका स्वागत किया, शुक्र पुरोहितकी वन्दना की, और बृहस्पतिकी अनुमतिसे अमृतकी वर्षा-सी करते हुए इस प्रकारसे कहा—

यह हमारी दीर्घ तपस्याकी सफलता है, यह हमारी आँखोंकी सफलता है, यह हमारी पैतृक आशीषकी सफलता है और यह हमारी आयुकी सफलता है कि हमारे पिता काश्यपके चरणोंमें स्थान पाकर साथ खेलनेवाले हमारे भाई विरोचन प्रभृतिने मुझसे ज्येष्ठ होनेके कारण मुझे अपने वात्सल्यका पात्र बनाया है ॥ २८ ॥

हमने त्रैलोक्यका राज्य अर्पित करके बड़े भाइयों की आराधना की है, बृहस्पति एवं शुक्र आदि ब्रह्मर्षियोंकी भी शक्ति भर आराधना की है, आगे मुझे क्या करना है इस सम्बन्धमें मैं श्रान्त तथा शान्त हूँ, यदि आप अमृत प्राप्त करनेकी आज्ञा देंगे तो उसको लिये मैं प्रसन्नतापूर्वक प्रयास करूँगा ॥ २९ ॥

इस प्रकार कहते हुए अपने भाई इन्द्रको दैत्योंने कहा—नहीं नहीं, इन्द्र, आप ऐसा नहीं कहें,

त्वमसि शतक्रतुस्त्वमसि नीतिपथे कुशल-
स्त्वमसि दयास्पदं भगवतः प्रमथाधिपतेः ।
अपि खलु बालकेन भवता भवता मघवन्
निखिलमनाकुलं कुलमिदं प्रतितिष्ठते नः ॥ ३० ॥

व्याप्टते त्वयि तपसि राज्यमिदं व्याकुलीभवेदिति संरक्ष्यतेऽस्माभि-रनियुक्तैरपि साह्यमेवानुचिन्त्य भवतः ।

एकेन विधृतं राज्यमियन्तो वयमीदृशाः ।
निर्वहन्तोऽद्य जानीमो नैपुण्यं वत्स तावकम् ॥ ३१ ॥
अमृतं यदि भोक्तव्यमनुमन्यामहेतराम् ।
संविभज्यैव तद्भोज्यं न निर्भज्येति नो मतिः ॥३२॥

तदाख्यातु भवानर्णवमथनोपायमादिष्टं नारायणेन' इत्यनुयुञ्जानेषु दानवेषु, यथाश्रुतमाख्याय पुरन्दरस्तमेव मन्दरमुत्पाट्य सागरे निपा-

---

आप शतक्रतु हैं, आप नीतिनिपुण हैं, आपके ऊपर प्रमथनाथ शिवकी दया है, आप बालक भले हों, परन्तु आपने समस्त काश्यप-वंशको प्रतिष्ठित बनाया है ॥ ३० ॥

आपके तपोनिरत रहने से यह राज्य अस्त-व्यस्त न हो जाय इस विचारसे हम लोगोंने बिना आपके कहे ही राज्य संभालकर आपकी सहायता ही की है ।

आप अकेले राज्य चला चुके हैं, इतने पराक्रमी होकर हम सभी मिलकर इस समय राज्य चलाते हैं, इसलिये हम आपकी राज्यसञ्चालनचातुरीसे परिचित हैं ।

यदि अमृत पीनेकी इच्छा है तो हम सहमत हैं, केवल इतनी ही हमारी कामना है कि हम मिलकर ही अमृतपान करें, विलग होकर नहीं ॥ ३२ ॥

अतः आप बताइये कि भगवान्‌ने समुद्र-मन्थनका क्या उपाय आपसे बताया है । दानवोंके द्वारा इस प्रकारसे पूछे जानेपर इन्द्रने यथाश्रुत समुद्र-मन्थनोपाय उन्हें बता दिया, और उसी मन्दराचलको उखाड़कर समुद्रमें डालने के लिये बलिको उत्साहित किया ।

तयितुमुत्साहयामास बलिम्। ततः 'कियदेतदुत्पाटनं, नाम गिरेः, विधमामो मुखमारुतेन, विक्षिपामोऽङ्गुलिस्फोटेन, समुद्धरामो वामहस्तेन, संक्रमयामः सायकेनैकेन' इति बलोत्सेकादुच्चावचं गर्जत्सु दानवेषु, बलिरिदमवादीत्—'हन्त कथमर्भका इव यूयमकृतप्रज्ञा इव निरङ्कुशं प्रतिजानीध्वे।

विंशत्यापि भुजैः पुरा गिरिवरं विक्षोभयञ् शूलिनः
पादाङ्गुष्ठनखाग्रयन्त्रणदलद्दोःसंधिबन्धश्चिरम्।
क्रोशंक्रोशमवाप वार्षिकनिशामण्डूकवद्यः श्रमं
युष्माभिः श्रुतिगोचरं न गमितः शङ्के स लङ्केश्वरः ॥३३॥

अपि द्रष्टुमशक्यो यः सिद्धैरपि महर्षिभिः।
विना शंभोः प्रसादेन कथमुत्पाटयेम तम् ॥ ३४ ॥

इन्द्रकी बातें सुनकर दानवोंने कहना प्रारम्भ किया—पहाड़का उखाड़ना कौनसी बड़ी बात है? इसे तो हम मुँहकी फूँकसे उड़ा दे सकते हैं, चुटकी बजाकर फेंक दे सकते हैं, वामहस्त से उठा ले सकते हैं, एक बाणसे चलितकर दे सकते हैं। इस प्रकार दैत्यगण जब बलगर्वसे गरज रहे थे तब बलिने कहा—हाय आपलोग बालकों की तरह क्या बे सिर-पैरकी प्रतिज्ञायें करते चले जा रहे हैं?

बीस बाहुओंके रहते हुए रावणने पूर्वकालमें गिरिवर मन्दरको चलायमान किया था, उस समय पादाङ्गुष्ठके नखाग्रभागसे यन्त्रित होनेपर उसके बीसों हाथोंकी सन्धियाँ टूटने सी लगी थीं, और वह रावण बरसाती मेढ़ककी तरह चिल्लाकर किसी तरह एक कोश तक ले जाने में ही थक गया था, क्या आपने कभी उस लङ्केश्वर रावणके बारे में कुछ नहीं सुना है॥ ३३॥

विना महादेवकी कृपाके सिद्ध-महर्षि लोग भी जिस मन्दर पर्वत को देख भी नहीं सकते हैं, विना महादेवकी कृपाके हम उसी मन्दर पर्वतको किस प्रकार उखाड़ सकेंगे॥ ३४॥

तदद्य वयं सर्वे प्रपद्य भगवन्तमुमाकान्तं प्रसाद्य वाङ्मनःकायैः प्रार्थयेमहि प्रार्थनीयम्' इति । ततः साधु साध्वित्यभिनन्द्यमाना भार्गवाङ्गिरसाभ्यामन्योन्यकृतसंविदो देवासुराः, प्रतिपद्य मन्दरं शैलम्, प्रणिधाय मनांसि, वर्तमानाः कठोरे तपसि, वाग्भिरस्तुवन्नित्थमम्बिकारमणम्—

'युगविगमोन्मिषद्विपमलोचनकोणपत-
द्भुतवहविस्फुलिङ्गहुतसर्वजगद्ध्विषे ।
अचलधनुर्धराय हरिणाङ्कशिखामणये
विजयजयैकहेतुविशिखाय नमो भवते ॥ ३५ ॥

शिवं ध्यायस्यन्तः सकलजगतां यच्छसि शिवं
शिवोऽसि त्वं नाम्ना ननु शिवतरश्चासि विदितः ।
शिवार्थी जन्तुस्तच्छिवमखिलभावेन भगवन्
भवन्तं हित्वान्यं शरणयतु कं नान्यशरणः ॥३६॥

अतः आज हम सभी चलकर भगवान् पार्वतीपतिको मन-वचन-कायसे प्रसन्न करें तथा अभिलषित वस्तुकी प्रार्थना करें ।

शुक्र तथा बृहस्पतिने साधु साधु कहकर उनका अनुमोदन किया, तब देव तथा असुर मन्दराचलके पास आये, मनको एकाग्र किया, कठोर तप किया, एवं वाणीसे शिवकी इस प्रकार स्तुति की--

प्रलयकालमें विकसित तृतीय नेत्रके कोणसे निकलने वाले अग्नि स्फुलिङ्गमें आपने विश्वका होमकर दिया है, आप अचल धनुर्धर तथा चन्द्रभूषण हैं, आपके बाण विजयके साधन हैं, हे शिव, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३५ ॥

आप अपने अन्तःकरणमें शिवका ध्यान करते हैं, आप समस्त जगत्को शिव देते हैं, आपका नाम ही शिव है, आप शिवतरके रूपमें विदित हैं । हे भगवन्, अपनी भलाई चाहने वाला प्राणी आपके अतिरिक्त किसकी शरण जाय ? दूसरा कोई उसे शरण देने वाला नहीं है ॥ ३६ ॥

तदिदानीम्—

मन्दिरं क्षालयन्तस्ते मन्दरं दुग्धसागरे ।
अमृतं लब्धुमिच्छामस्तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ३७ ॥' इति ।

ततस्तथा कुरुतेति घनस्तनितगम्भीरया गिरा गगनसंभवया संतोषिताः सन्तोऽसुराः सुराश्च समनह्यन् ॥

विनिघ्नन्तः पादैरथ विचलयन्तः करतलै-
रुदस्यन्तो दण्डैरुपरि च किरन्तस्तमिषुभिः ।
निषेदुः श्रान्तास्ते यदपि च विषेदुर्दनुभुवो
निमित्तं दुष्टं तन्निखिलमुशना तेषु जगृहे ॥ ३८ ॥

अथ प्रतीक्षमाणश्चरलग्नमाचार्यो दिवौकसां 'संवर्तोचितं रूपमालम्ब्य सर्वतो वाहि' इति संदिदेश गन्धवाहम् ॥

अथ दिवसावसान इव पद्मभुवः पवनः
स्वयमकृत क्षणादिव विदिक्षु च दिक्षु चरन् ।

अतः इस समय—

हम आपके मन्दिरस्वरूप इस मन्दराचलको क्षीरसागरमें धोकर उससे अमृत प्राप्त करना चाहते हैं, कृपया आप हमें वैसा करनेकी अनुमति प्रदान करें ॥ ३७ ॥

इसके बाद मेघगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई कि आप वैसा ही करें, इसपर सन्तुष्ट होकर देवों तथा दानवोंने वैसा करनेकी तैयारी प्रारम्भ की ।

मन्दर पर चरणोंसे आघात करके, उसे हाथोंसे चलाकर, दण्डोंसे उठाकर एवं बाणोंसे आहत करके दैत्यगण श्रान्त होकर बैठ गये, वे खिन्न हो उठे, शुक्रने दानवोंकी इस असफलताको अशकुन समझा ॥ ३८ ॥

देवगुरुने अन्तिमलग्न-प्रतीक्षा करते हुए वासुदेवसे कहा कि आप प्रलयकालिक रूप धारण करके चारो ओर प्रवाहित हों ।

इसके बाद ब्रह्माके दिवसावसान अर्थात् प्रलयकालमें जैसे पवन दिशाओं

अलघुविघूर्णितार्णवसमुक्षितकुक्षितल-
क्षितिवलयार्द्रताशिथिलमूलमहार्यकुलम् ॥ ३९ ॥
स्तोकस्तोकप्रचलदनिलग्रासदुर्भिक्षखेदैः
कालं कालं कथमपि चिरं यापयांचक्रिरे ये ।
आकण्ठं ते पपुरिममविच्छिन्नधारं समीरं
प्राप्ताः शंभोरुपकरणतां पन्नगास्तन्नगाग्रे ॥ ४०॥

अथ तमदृष्टचरं वेगमनलसारथेरभिनन्दत इव मन्दरस्य गिरेर-लक्ष्यत मनागिव शिरःकम्पः ॥

चकम्पे हन्तायं गिरिरनुचकम्पे पुरहरो
जहीतेदं क्लैब्यं जहित च वृथावस्थितमिदम् ।
इति स्वेन स्वेन व्यवसितधियः काश्यपसुताः
समेता गर्जन्तः सपदि चलयामासुरचलम् ॥ ४१ ॥

तथा विदिशाओंमें .सञ्चार करता है उसी तरह पवनका सञ्चार हुआ, और जोरोंसे हिलनेवाले सागरके जलने पृथ्वीको सींचकर गोलीकर दी, जिससे शिथिल मूल हो गया वह मन्दर पर्वत ॥ ३९ ॥

इससे पहले हवा मन्द-मन्द चलती थी, अतएव महादेवके भूषण सर्पगण आहार की दुर्लभताके कारण दुर्भिक्ष समयको बड़ी कठिनाईसे बिता रहे थे, अब जब हवा तेजीसे बहने लगी, तब उन सर्पोंको प्रचुर मात्रामें वायु मिली जिन्हें उन लोगोंने आकण्ठ पान किया, इस प्रकार उस पर्वतपर उस समय महादेवके सर्पोंके लिये सुदिन हो गया ॥ ४० ॥

वायुदेवके उस अदृष्टपूर्व वेगको देखकर उसकी प्रशंसामें मानो मन्दराचलने अपना सिर हिला दिया ।

अहा, मन्दर पर्वत हिल रहा है, मालूम पड़ता है महादेवने कृपाकर दी है, कायरपनको छोड़ो और इस व्यर्थ अवस्थानका भी परित्याग करो । इस प्रकारसे स्वयं चेष्टाशाली काश्यपके पुत्र दैत्यगणने मिलकर गर्जना करते हुए मन्दराचलको चलित कर दिया ॥ ४१ ॥

तदानीं च—

निष्पतद्द्रुममुत्पतत्खगमद्भुतस्खलदश्मभू-
झर्झरस्रुतनिर्झराम्बुझलज्झलारवभैरवम् ।
गर्भगह्वरनिर्भरभ्रमदुद्भटानिलपूरित-
क्रन्ददन्तरकन्दरं किल मन्दरं ददृशुर्जनाः ॥ ४२ ॥

गर्जन्तश्च ते तदनु पर्जन्या इव गणयन्तश्च करगतमिव कार्यमशेषं, पूर्वतो दिक्पतीन्, दक्षिणतो देवानपरान्, पश्चिमतो वाणं सहस्रबाहुं उत्तरतो महासुरानितरानपि विभज्य विनियुञ्जानाः, खाते परितः परिखावलय इव मूलगर्ते कराञ्चलानि निदधानाः, परित्यजन्तः प्रहरणानि, परिहरन्तोऽङ्गुलीयकानि, आबध्नन्तः कटितटेपूत्तरासङ्गं, आरोपयन्तः कङ्कणान्यङ्गदस्थानं, उपवीतयन्तो निवीतलम्बीनि हारमण्डलानि, उद्बोधयन्तः परस्परमसकृदपि 'समं निधत्त कराञ्चलानि, सममुत्तम्भयत, समं विस्रंसयत, समुच्छ्वसित, समं निःश्वसित, समं कुरुत बलानि, परथा विशीर्येयुः शिखराणि, विनमेदयमेव मन्दरः, क्वापि चलेदपि ततो

वृक्ष गिरने लगे, पक्षिगण उड़ने लगे, पत्थरकी जमीनके खिसकनेसे निर्झरके जल शब्द करने लगे जो शब्द भय उत्पन्न करता था, पर्वतकी गुफामें घूमती हुई वायुसे पूरित कन्दरायें आर्त्तनाद करने लगीं, इस प्रकार लोगोंने देखाकि मन्दर चल रहा है ॥ ४२ ॥

तदनन्तर दानव मेघकी तरह गरजने लगे, उन्होंने समस्त कार्यको करगत समझ लिया, पूर्व दिशामें दिक्पालोंको, पश्चिममें सहस्रबाहुबाणको, दक्षिणमें अन्यान्य देवों एवं उत्तरदिशामें अन्य महासुरोंको नियुक्त करके कार्यारम्भ किया गया। मन्दरकी चारों ओर परिखावलयकी तरह प्रतीत होनेवाली खाईमें हाथ डालकर, प्रहरण अस्त्रोंका परित्याग करके, अङ्गूठियोंको छोड़कर सभीने अपनी-अपनी चादरें कमरमें लपेट लीं। गलेमें लटकते हुए हारोंको यज्ञोपवीतकी तरह पहन लिया, कङ्कणोंको केयूरके स्थानपर पहुँचा दिया, बार-बार एक दूसरेको समझाया करते थे कि एक साथ हाथ लगाओ, एक साथ उठाओ, एक साथ गिराओ, एक साथ सांसलो, एक साथ जोर करो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो

भद्रपीठं चन्द्रापीडस्य, समुद्विजेत दुहिता शैलराजस्य, क्षुभ्येयुः प्रमथाः, कुप्येदपि शैलादिः, चतुरन्तयानगत इव भगवानम्बिकारमणश्चतुरतरमस्माभिर्वाहनीयः' इति वादयत्सु वादित्राणि गन्धर्वेषु, गायन्तीषु गाथाः किन्नरीषु, नृत्यन्तीषु निर्जरवारकान्तासु, श्लाघमानेषु चारणेषु, प्रयुञ्जानेष्वाशिषः परमर्षिषु, वर्षत्सु दिव्यवलाहकेषु पुष्पवर्षाणि, हर हरेति तारध्वनिभिरापूरयन्तो विध्यण्डमण्डलमुन्नमयामासुरुर्वीधरं मन्दरम् ॥

आपातालनिमग्नमूर्तिनि बलान्मूले समुन्मूलिते
शैलस्यास्य भुजङ्गराजनगरप्रासादशृङ्गायिते ।
खेलन्त्यः शतशः फणीन्द्रसुदृशः स्वच्छन्दमत्तास्पदे
हृष्यद्भिः प्रतिलेभिरे दिविचरैरक्लेशमप्रार्थितम् ॥ ४३ ॥

अपि च—

अभ्यर्णस्थलभाजि तत्र शिखरिण्यामूलमुन्मूलिते
तत्क्षोभक्षुभिते च काञ्चनगिरौ किंचित्समाकुञ्चिते ।

हो सकता है इस मन्दराचलके शिखर टूट जाँय, मन्दराचल झुक जाय, कदाचित् भगवान् शङ्करका भद्रपीठ चलायमान हो उठे, पर्वतराजपुत्री उद्विग्न हो जाँय, प्रमथगण क्षुभित हो उठें, या पर्वतराजही कुपित हो उठें, अतः होशियारीसे महादेव समेत इस मन्दरको उठालें, जिससे महादेवको ऐसा लगे कि हम पालकी पर बैठे हैं। तदनन्तर गन्धर्वगण बाजे बजाने लगे, किन्नरियाँ गान करने लगीं, देवगणिकायें नृत्य करने लगीं, चारणगण स्तुतिमुखर हो उठे, ऋषिगण आशीर्वाद देने लगे, दिव्यमेघ पुष्पवृष्टि करने लगे, तब 'हर-हर' इस शब्दसे ब्रह्माण्ड-मण्डलको पूर्ण करते हुए देवों एवं दानवोंने मिल-जुलकर मन्दरको ऊपर उठा लिया।

पातालपर्यन्त फैला हुआ मन्दर पर्वतका मूल नागलोकके प्रासादोंके शिखर-सा लग रहा था, उस मूलके आमूल उखाड़ लिये जाने पर नागलोकमें स्वच्छन्द भावसे खेलनेवाली नागबालायें बिना किसी क्लेश एवं प्रार्थनाके ही प्रसन्नहृदय स्वर्गवासियों को प्राप्त हो गईं ॥ ४३ ॥

जब समापवर्त्तों उस मन्दराचलके आमूल उखाड़ लिये जाने पर उस पर्वतके

विभ्रश्यद्गृहभित्ति विश्लथपुरद्वारं विशीर्णत्रुट-
त्सौधोत्सेधविटङ्कसंघमजनि स्थानं सुराणां तदा ॥४४॥

समुद्धृत्य तमारसातलप्रतिष्ठमपि सद्यः समारोपितं कलमिव लीलया प्रस्थिताः दुग्धार्णवं प्रति देवासुराः। अशिथिलशिखरं अप्रकम्पनितम्बं अखण्डितगण्डोपलं अनुज्झितनिर्झरप्रवाहं अस्फुटितपर्यन्तदर्यन्तरं अभञ्जिततरुपुञ्जं अनुत्खातलतावितानं अस्पन्दमृगवृन्दं अनुद्भ्रान्तशकुन्तं अव्यापन्नपन्नगं अनवसन्नकिन्नरीगानं अस्तब्धसिद्धचारणकोलाहलं अविश्रान्तगान्धर्ववादित्रं अनुपरुद्धतपोधनध्यानं आनन्दयन्तो भगवन्तमुमाकान्तमवहन्त मन्दरम्। स च नीयमानः सर्वैरपि सुरासुरैरखिलभुवनाधारस्य पशुपतेरप्याधारतावलेपादिव पादैराचक्राम शिरांसि पर्वतानाम्। परितः स्फुरदच्छनिर्झरापदेशेन प्रत्यक्षमिव विचकार दिङ्-

---

सञ्चालनसे काञ्चनगिरि-सुमेरु भी थोड़ा चलित हो उठा, तब देवपुरीमें गृहभित्तियाँ कुछ खिसक गईं, पुरद्वारमें थोड़ा ढीलापन आ गया, और प्रासादशिखर पर वर्त्तमान कपोतपालिकायें जहाँ-तहाँ टूट-फूट गईं ॥ ४४ ॥

धानके फलकी तरह मन्दराचलको अनायास उठाकर देव तथा दानव क्षीरसागरकी ओर चले, पातालपर्यन्तव्यापी मूलवाले उस मन्दराचलको वे लोग इस तरहसे उठाये लिये जा रहे थे जिससे उसके शिखरोंमें शिथिलता नहीं आई थी, उसके नितम्बमें कम्पन नहीं हुआ था, उसका गण्डोपल अखण्डित था, निर्झर प्रवाहमें कुछ कमी नहीं हुई थी, समीपकी दरियाँ नहीं फूट सकी थीं, वृक्ष नहीं टूटे-फूटे थे, लतायें यथावस्थित थीं, मृगवृन्द ज्योंके त्यों बैठे थे, पक्षिगण शान्त थे, सर्प नहीं कुचले गये थे, किन्नरियोंके गीत बन्द नहीं हुए थे, सिद्ध-चारणोंका कोलाहल नहीं रुका था, गन्धर्वोंका वाद्यवादन नहीं रुका था, तपस्वियोंका ध्यान नहीं टूट पाया था। इस प्रकार महादेवको प्रसन्न करते हुए वे मन्दराचलको उठाये लिये जा रहे थे। देव तथा दानव जब मन्दराचलको लिये जा रहे थे तब वह मन्दराचल अन्यान्य पर्वतोंके शिखरों पर अपना पादन्यास करता जा रहा था मानों उसका यह गर्व उदित हो उठा हो कि वह अखिल भुवनाधार होनेवाले पशुपतिका भी आधार है। चारो ओर मन्दराचलके निर्झरके निर्मल जलका प्रकाश उसके यशकी तरह फैल रहा था।

मुखेषु यशांसि निर्मलानि । आकाश एव नीयमाने तस्मिन्, अधस्तनीषु दिव्यभूमिषु तासु तासु तपस्यन्तस्तपोधनाः कतिचिदतिचकिताः प्रायुञ्जत परमाशिषः, परिपेठुः स्वस्त्ययनानि, अजपन्नभयंकरम्, आवर्तयन्नमृतमृत्युंजयम्, अनुदध्युरापदुद्धरणमम्बिकारमणम्, आशशंसिरे च बलातिबलाभ्यामश्रमम् दिविचराणाम्। महाप्रकाशमणिगणाकीर्णस्य तस्य चलतः पथिवशादागत्य पार्श्वतलमध्वप्रतिरोधादत्रैव निलीयमानः पतिरपि त्विषां प्रदीप इव दिवा प्रवर्तितो भग्नतेजा ददृशे। अपि च पुनरक्लेशमानीयमाना पत्या सह कात्यायनी रुचिरान् प्रदेशान् पश्यन्ती विविधानि वस्तूनि परिपृच्छन्ती प्रणयिनमभीक्ष्णं प्रसन्नेन चेतसा स्थापयिष्यतोऽपि गिरिमनुजगृहे देवासुराननुजगृहे ॥

उड्डीय स्वयमुत्पतन् गिरिरसौ वाचैव नेतुं क्षमो
भग्नस्कन्धशिरोधरैर्दिविचरैरित्थं यदद्योह्यते ।

मन्दराचल जब आकाशमें जा रहा था तब नीचेकी दिव्य भूमियोंमें तपस्या करनेवाले तपस्वी लोग आश्चर्यचकित होकर आशीर्वाद प्रदान करने लगे, स्वस्त्ययन पढ़ने लगे, अभयङ्कर मन्त्र जपने लगे, मृत्युञ्जय मन्त्रकी आवृत्ति करने लगे, आपत्तियोंसे उद्धार करने वाले शिवका ध्यान करने लगे और बला तथा अतिबला नामक विद्याके प्रभावसे देवोंकी अश्रान्तिकी कामना करने लगे।

अति प्रकाशशाली मणिगणसे आकीर्ण वह मन्दराचल जब आकाशमें चल रहा था तब मार्गवश सूर्यसे वह जा मिला, उससे सूर्यका रास्ता रुक गया, उसके पास सूर्य ऐसा अप्रकाश लगता था. मानों वह दिनमें जलाया दीप हो। पतिके साथ विना किसी क्लेशके जाती हुई पार्वती रम्य प्रदेशोंको देखती और अपने प्रियतमसे नाना वस्तुओंके सम्बन्धमें पूछती हुई जा रही थी। देव तथा दानव उस मन्दराचलको ले जाकर समुद्रमें रखना चाहते थे अतः पार्वतीकी उनपर कृपा थी।

जब कहने भरसे ही यह पर्वत स्वयं उड़कर जा सकता है तब सिर तथा गर्दनको बोझसे झुकाकर देवगण उसे क्यों ढो रहे हैं, पर्वतके पंखोंको काटनेवाले

एतत्पर्वतपक्षतिक्षतिकृतो मूर्खस्य दौष्कर्म्यमि-
त्यायस्ताः पथि पर्यभाषिषत ते सर्वे सुपर्वेश्वरम् ॥ ४५ ॥

अपि च---

भग्नो यस्य दशाननः प्रचलने किंचित्प्रवृत्तः पुरा
शक्यं तस्य गिरेः कथं नयनमित्यस्ताविषुः साधवः ।
अन्ये चक्षमिरे न तद्भवति का श्लाघात्र शाखामृगै-
रानीताश्च निपातिता हि जलधौ शैलाः समूला इति ॥४६॥

इत्थमतिभारभङ्गुराः सुरासुरा यावदासेदुरन्तिकं दुग्धनिधेस्तावदुद्वेगः श्वेतद्वीपसदामुदजृम्भत । 'पश्यत पश्यत पर्यन्ते नीयमानम् महागिरिं, पातयिष्यते नूनमत्रायमर्णवे, परिप्लावयिष्यते च स निःशेषमिदमन्तरीपम्, तदद्यैव सज्जीभवत समुत्तिष्ठत सर्वतोऽपि वेलामुच्छ्रयध्वं' इति, 'हन्त केनेदमुत्प्रेक्षितं बकबन्धकौशलम् , किंचिदपि चेदुच्छ्वसिति सागरः किं करणीयमुच्छ्रितयापि वेलया, तदारोक्ष्यामो वयमद्यैव वैकुण्ठमर्क-

---

इन्द्रकी यह मूर्खतापूर्ण कृति है, रास्तेमें श्रान्त देवगण इन्द्रके सम्बन्धमें इस प्रकार बातें कर रहे थे ॥ ४५ ॥

जब देव-दानवगण मन्दराचलको लिये जा रहे थे, तब साधुजन यह कहकर उनकी स्तुति करते थे कि जिस पर्वतके उठानेमें रावण भी भग्नमनोरथ हो गया था, उस पर्वतको उठाकर ले जाना कैसे सम्भव है । कुछ ऐसे भी थे जो इस स्तुतिको नहीं सह सकते थे, उनका कहना था कि इसमें प्रशंसाकी क्या बात है, वानरगणने भी तो कितने समूल पर्वत लाकर इस सागरमें रखे थे ॥ ४६ ॥

इस प्रकार अत्यन्त भारसे पीड़ित देव तथा दानव जब क्षीरसागरके पास पहुँचे, तब श्वेत-द्वीपवासियोंमें घबड़ाहट पैदा हुई । देखो—यह पर्वत ढोकर लाया जा रहा है, अवश्य ही यह इसी समुद्रमें गिराया जायगा, इस पर्वतके समुद्रमें गिरते ही हम लोगोंका यह अन्तरीप जलप्लावित हो उठेगा, अतः अभीसे तैयार हो जाओ, सबसे ऊँचे तटपर चढ़ जाओ । कुछ लोग कहते थे कि—यह सारा प्रयास निष्फल है, अगर समुद्र थोड़ा भी बढ़ा तो ऊँचा तट क्या करेगा ? अतः

मण्डलम् वा धाम त्रिधाम्नः' इति, 'अनुचितमेतदालोचितम्, अयुक्तं हि सेवकानामपहाय भगवन्तमन्यत्र गन्तुं' इति, 'किमुच्यते भगवन्तमपहायेति, किं न विचारितं भवता, भगवानेव मन्दरपातदर्शनकुतूहलव्याजेन प्रस्थातुकामो वर्तत इति, कति वारानेष पपात मन्दरः, कति वारान्नोदजृम्भत सागरः, कस्यापि ब्रह्मणः कल्पे न जानीमो वयम् विप्रवासं, अहो खल्वमीभिराधुनिकैर्बाध्यामहे भागवतैः' इति, 'भवतु भवतु कथयन्तोऽपि दृढमितोऽपि कवलिताः सरिद्भिः सागरैश्च महत्स्वायतनेषु महीगतेषु शार्ङ्गपाणेः कति न भवद्विधाः परमभागवताः, तदास्तामिहैव भवद्भिः, आधुनिकास्तु वयमज्ञातपारावारा गोपायन्तः क्वचिदात्मानं गोविन्दमेव निरन्तरमनुसंदधीमहि' इति च विप्रवदतां विविधान्वादान्, पश्यतामसकृदुन्मील्योन्मील्य, परिपृच्छतामागच्छतो वैमानिकान्, परिभ्रमतामभितोऽपि कोलाहलेन महता, पारिषदानामग्रणीः कुपितो विष्वक्सेनो बहिर्निर्गत्य परितोऽपि चक्षुः प्रसारयन्नवलोकयन्नानी-

---

हम अभी वैकुण्ठमें अथवा अर्कमण्डलपर चले चलें। दूसरे कहते थे कि—आपका ऐसा सोचना ठीक नहीं है, सेवकगणके लिए भगवान्को छोड़कर अन्यत्र जाना उचित नहीं। अन्य जन कहते थे कि—भगवान्को छोड़नेकी क्या बात है, क्या आपने विचार नहीं किया है? भगवान् स्वयम् मन्दर-निपात-दर्शनके कुतूहलसे जाना चाह रहे हैं। कितनी बार तो यह मन्दर सागरमें गिरा है और कितनी बार यह सागर बढ़ा है। किसी ब्रह्माके कल्पमें हमने भागनेकी बात नहीं देखी है। आजके भागवत हमें भागनेको बाधित कर रहे हैं, आश्चर्य है !!

दूसरे कह रहे थे कि रहने दीजिये इन बातोंको, आपके समान कितने परमभागवत नदियों तथा समुद्रोंमें पृथ्वीपर समा चुके हैं, आप यहीं रहिये, हम नवीन भागवत हैं, हमसे सागर नहीं देखा है, हम कहीं छिपेंगे और वहीं भगवान्का ध्यान करेंगे। इस प्रकारसे विवाद करनेवालोंके परस्पर विरुद्ध कथनोंसे, एवं सिर उठाकर देखनेवाले आते हुए वैमानिकोंसे पूछनेवाले, और इधर-उधर चक्कर काटनेवाले लोगोंके कोलाहलसे कुपित भगवान्के पारिषदोंके मुख्य विष्वक्सेन बाहर निकले, उन्होंने चारों ओर आँखें फैलायीं, देखा कि समीपमें ही

यमानमभ्यर्ण एव मन्दरम्, अवधारयन्ननुपदमेव तस्य सिन्धौ निपातनम् विज्ञापयामास विनयेन विदितवेदितव्यमपि स्वधर्म इति विश्वंभरम्॥

व्यत्यस्तकौस्तुभमवप्लुतवैजयन्ति
विस्रंसमानकनकाम्बरलोभनीयम् ।
सद्यः फणीन्द्रशयनादुदतिष्ठदीशः
कैलासशैलशिखरादिव कालमेघः ॥ ४७ ॥

द्रिव्यैः पञ्चभिरायुधैः सविनयैरावद्धसेवाक्रम-
स्तत्कालोपनतैस्तपोधनगणैर्धन्यैर्वृतः कैरपि ।
अभ्यर्णे वसतस्तदा खगपतेरालम्ब्य हस्तं शनै-
र्विष्वक्सेननिवेद्यमानसरणिर्विश्वंभरो निर्ययौ ॥ ४८ ॥

अथ तमतर्कितोपनिष्क्रान्तमरविन्दनाभमवसरज्ञो विधिरर्धपथे समेत्य सह महर्षिभिर्विविक्तसेवावसरलाभविस्मयानन्दमन्थरः पश्यन्तम-चलनिपातकौतुकम् परिवार्य केवलमवतस्थे ॥

मन्दराचल लाया जा रहा है और शीघ्र ही वह समुद्रमें गिरनेवाला है, तब विष्वक्सेनने स्वधर्म समझकर भगवान्‌को नम्र शब्दोंमें इसकी सूचना दी ।

सूचना मिलते ही भगवान् सर्पशयन छोड़कर उठ खड़े हुए, वह उस समय कैलास-शिखरसे उठनेवाले काले मेघके समान प्रतीत हो रहे थे । उनके उठने से कौस्तुभ मणि व्यस्त हो रहा था और वह गिरते हुए स्वर्णाभवस्त्रसे बहु सुन्दर प्रतीत हो रहे थे ॥ ४७ ॥

भगवान् उस समय नम्रतायुक्त शरीरधारी अपने पाँच आयुधोंसे सेवित एवं तत्काल आये हुए कुछ महाभाग्यशाली तपस्वियोंसे परिवृत थे । वह समीपवर्ती गरुड़का हाथ पकड़े हुए थे, और विष्वक्सेन उन्हें मार्ग दिखला रहे थे । इस प्रकार भगवान् बाहर आये ॥ ४८ ॥

अकस्मात् भगवान्‌को बाहर आते देखकर अवसरज्ञ ब्रह्मा बीच मार्ग में ही उनके पास पहुँचे और महर्षियोंके साथ एकान्तमें सेवाका अवसर पाकर पर्वतके गिरनेको कौतुकमय दृष्टिसे देखनेवाले भगवान्‌को घेरकर खड़े हो गये ।

नवकुवलयदामश्यामलस्निग्धमुग्धं
नलिननयनमाद्यं तत्त्वमालोकयन्तः ।
परिजहुरमरौघाश्चेतसा कार्यभारम्
परिजहुरुभये ते पाणिभिः शैलभारम् ॥ ४९ ॥

ततश्च ।

सुरासुरकरोदरस्खलितशैलमूलस्थल-
स्थितोपलतलाहतिक्षुभितसिन्धुबन्धूत्थितः ।
भ्रमत्तिमितिमिङ्गिलभ्रमितबालकोलाहलैः
समं निखिलमम्बरं परिववार तारस्वनः ॥ ५० ॥

स्खलदचलसमुद्भवल्लोलकल्लोलकोलाहल-
व्यतिकरबधिरभ्रमत्कूर्मनक्रद्विपक्रन्दितैः ।
स्फुटितकमलजाण्डभाण्डप्रचण्डस्वनोत्प्रेक्षण-
क्षुभितविविधमुक्तहाहारवैश्चाहसीदच्युतः ॥ ५१ ॥

नूतननीलकमलके समान श्यामवर्ण अतिस्निग्ध मुग्धरूप कमलनयन स्वरूप आदितत्त्वको देखनेवाले देवोंने हृदयसे कर्त्तव्य-भारको उतार दिया, और उसी समय देवों तथा दानवोंने भी अपने हाथोंपरसे शैलके भारको उतार दिया ॥४९॥

देवों तथा दानवोंके हाथोंसे छूटे हुए मन्दराचलके मूलभागसे गिरनेवाले पत्थरोंके आघातसे क्षुभित होनेवाले सागरसे उत्पन्न भयङ्कर दीर्घतायुक्त शब्द आकाशमें पहुँचे हुए बाल मत्स्योंके द्वारा किये गये कोलाहलके साथ आकाशमें फैल गये ॥ ५० ॥

गिरते हुए मन्दराचलके आघातसे चञ्चल होनेवाले कल्लोलोंके कोलाहलसे बहरे हो जानेवाले घूमते हुए कूर्म, नक्र तथा हाथियोंका चिल्लाना सुनकर तथा फूटनेवाले ब्रह्माण्डोंकी भयङ्कर आवाजकी सम्भावनासे क्षुब्ध लोगों द्वारा किये गये हा-हा शब्दसे भगवान्को हँसी आ गई ॥ ५१ ॥

निर्मग्नमन्दरमणिद्युतिसंप्रदिग्धा
निष्पेतुरम्बरतले पयसः कणा ये ।
लग्नाश्चिराय लिकुचामलकाम्रमात्रा-
स्तारास्त एव परिणेमुरिति प्रतीमः ॥ ५२ ॥

पथि गिरिवरादस्माद्भारावसन्नसुरासुर-
प्रतिपदकृतस्कन्धव्यत्याससंभ्रमकम्पितात् ।
मणिभिरभितो यस्यां यस्यां भुवि स्खलितं क्वचि-
त्तस्मजनि खनिः सा सा नाम स्थलेषु जलेषु च ॥५३॥

अपि च विदूरादम्बरतलादापततोऽस्य महता वेगेन प्रकीर्यमाणे पर्यन्तगते निरवशेषं परिपीयमाने च दरीमुखैरेव परिसरगते पयसि, शून्यमिवार्णवं मन्यमाना नभश्चरा निर्मज्जुरुभयेऽपि भये । उन्मथितेषु च तन्मूलघट्टनादर्णवचरेषु जन्तुषु, ततः परिभ्रष्टाः करिण एव जलकरिणः,

---

समुद्रमें डूबते हुए मन्दराचलकी मणिद्युतिसे मिलित जो जलकण आकाशकी ओर उड़े वे जलकण बड़हर आँवले एवं आमोंकी मात्राके थे, वेही जलकण चिरकालके लिए आकाशमें लीन हो गये, पीछे चलकर—मैं समझता हूँ—वही तारोंके रूपमें परिणत हो गये ॥ ५२ ॥

देव-दानवगण जब मन्दराचलको लिये आ रहे थे तब रास्तेमें भारकी अधिकताके कारण उनके कन्धे बैठने लगे, उस समय पग-पगपर उन लोगोंने कन्धा बदलना प्रारम्भ किया था, कन्धा बदलनेके समय मन्दराचल कम्पित हो उठा करता था, उसके कम्पित होनेपर उसके ऊपर अवस्थित रत्नगण पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ गिर पड़े थे, जहाँ कहीं जल या स्थलमें रत्न गिरे थे वहाँ खानें बन गई हैं ॥५३॥

मन्दराचल जब सुदूर आकाश देशसे बड़े वेगके साथ गिर रहा था तब उसके वेगसे समुद्रतटका सारा जल बिखर गया था तथा वह जल निःशेषरूपमें कन्दराओं द्वारा पी लिया गया था, उस समय सागर सूना-सा लगता था और देव तथा दानव भयभीत हो उठे थे । मन्दराचलके मूलसे आकाशचारी जन्तुगण

किराता एव जलमानुषाः, निर्झरचराः शफरा एव तिमयश्च तिमिङ्गिलाश्च संपेदिरे। अपि च पुनरवगाहमाने रसातलं गिरावभ्यर्णगतं दुग्धमादायादाय सुखमभिषिञ्चन्तः पारमेश्वरं लिङ्गमभ्यनन्दन्नन्दिमुखा गणाः। ऊर्ध्वमाद्यु-लोकादुत्पतता च दुग्धपूरेण परिप्लाविता सिद्धनदी बभूव दुग्धनदी। संसिक्ताश्च पयसा मधुरेण सर्वतो नन्दनोद्यानवनपादपास्तदादि सुधामधुराणि सुवते फलानि ॥

मज्जन्मन्दरशैलकन्दरपुटव्याघूर्णदर्णोभर-
स्वैरोज्जागरघोषभीषणपयःकल्लोलिनीवल्लभाः ।
खेदस्तम्भितकिंपचानविबुधप्रारब्धभूरिस्तवा
गोविन्दस्य कुतूहलं विदधिरे ते केचिदेकक्षणाः ॥५४॥

मज्जति मज्जति शैले पतति च पततीह कुलमिदं द्युसदाम् ।
शरणं शरणमतस्त्वं शार्ङ्गधरेति प्रचुक्रुशे विबुधैः ॥ ५५ ॥

पिस गये, उसमें भाग्यवश जो बच गये वे हाथी ही दरियाई हाथी हैं, किरात ही जलमानुष हैं, मन्दरके झरनोंमें रहनेवाली मछलियाँ ही तिमि तथा तिमिङ्गिलके रूपमें परिणत हुई हैं। मन्दराचल जब पातालमें पैठ रहा था तब समीपमें मिलने वाले क्षीरसागरके दूधसे शिवलिङ्गका स्नपन करानेका अवसर प्राप्त करके नन्दी आदि शिवगणको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ था। आकाशपर्यन्त ऊपरकी ओर दूधके उड़नेसे आकाशगङ्गा दूधकी नदी बन गयी थी। नन्दनवनके वृक्ष उस दूधसे सिक्त हो जानेके कारण ही अमृतमधुर फल फला करते हैं।

समुद्रके जलमें डूबते हुए मन्दराचलके कन्दरोंमें पानी भर आया, वे कन्दर स्वच्छन्दरूपमें भीषण रव करनेवाले समुद्र बन गये। उन अनेक भीषण समुद्रोंको देखकर श्रान्त देवगण किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो भगवान्‌की स्तुति करने लगे, उन स्तुतियोंसे कुछ क्षणोंके लिए भगवान्‌को बड़ा कौतूहल हुआ ॥ ५४ ॥

मन्दरके डूबते ही समस्त देवगण डूब जायंगे और उसके गिरते ही सभी गिर पड़ेंगे, अतः हे शार्ङ्गधर, आप ही हमारे रक्षक हैं, इस प्रकार देवगण चिल्लाने लगे ॥ ५५ ॥

ततश्चकितसुरासुरस्तोमसंस्तूयमानो भगवानरविन्दलोचनः प्रसाद-विमलपावनैः परिवहत्करुणासारसान्द्रितैः कटाक्षैरनुगृह्य, कल्पतरुपल्लवोल्लासिना कैवल्यलक्ष्मीनिवासमन्दिरेण करारविन्देन तानाश्वासयामास। तत्क्षणं च भूभारभङ्गुरभुजङ्गपुङ्गवभोगवलयपरिबृंहणादिव कुलिश-कर्कशेन शाणनिकृष्टवज्रफलकस्निग्धेन सर्वतोऽप्यशेषभुवनात्मनाप्ययुतयोजनमात्रविस्तारशालिना चरमाङ्गेन, पाराशर्यसंक्षेपपरिमितैरनुश्रवैरेव चतुर्भिश्चरणैः, संकोचविकासशीलया मायेव कन्धरया, समस्तागमस्तोममस्तकेनेव च मस्तकेन परमाद्भुतेन समुद्भवन्नवनिगर्भाच्चापमुक्त इव सायकः समग्रेण रंहसा समुत्पपात महान् कमठः ॥

प्रत्युद्यत्कमठकठोरपश्चिमाङ्ग-
व्यासङ्गप्रशिथिलमूलसंनिवेशः ।
उत्क्षिप्तः प्रतनुरिवोपलो बलिष्ठै-
रद्रिर्द्रागुदपतदर्णवाद्विदूरे ॥ ५६ ॥

इसके बाद चकित देव-दानवगणसे स्तूयमान भगवान् कमलनयन प्रसन्नतासे निर्मल, पवित्र तथा करुणाप्रवाहपूर्ण कटाक्षसे देखकर कल्पवृक्ष-पल्लवकी तरह उल्लसित एवं कैवल्यलक्ष्मीके आश्रय अपने करारविन्दसे उन्हें धीरज बँधाया। उसी समय पृथ्वीके भारसे भङ्गुर शेषफणमण्डलके विस्तृत हो जानेसे वज्रकठोर, शानपर चढ़े हीरेकी तरह चिकने, सर्वतः अशेषभुवनात्मा होनेपर भी चार अयुत-योजनमात्र विस्तीर्ण पुच्छदेशसे तथा व्यास द्वारा संक्षिप्त वेदके समान चार चरणोंसे, एवं सङ्कोच-विकासशील मायाकी तरह लगनेवाली ग्रीवासे और समस्त आगमके समान लगनेवाले मस्तकसे कमठराज पृथ्वीगर्भसे निकले जो चापमुक्त बाणकी तरह वेगसे निकल रहे थे।

निकलते हुए कमठराजके कठोर पुच्छदेशसे सम्पर्क हो जानेके कारण मन्दराचलका मूल शिथिल पड़ गया और वह बलिष्ठ व्यक्ति द्वारा फेंके गये पत्थरके टुकड़ेकी तरह झटसे समुद्रसे बहुत दूर अलग फेंक दिया गया ॥ ५६ ॥

उद्वान्तसागरपयोभरिक्तगर्भ-
पर्यन्तकन्दरगलत्पवनो गिरीन्द्रः ।
मग्नोत्थितः सलिलतो महता श्रमेण
निःसीमनिःश्वसितखिन्न इवावभासे ॥ ५७ ॥

आलक्ष्य च तदाश्चर्यमानन्दमन्थरेषु वृन्दारकेषु, कृतार्था वयममुनाऽनुग्रहेण किमतः परम् करवामेति विज्ञापयत्सु विनयेन गरुडध्वजम्, समानयत वासुकिमित्यनुशशास समीपगतश्चतुराननः । ततस्तथेति प्रतिगृह्य शासनं तस्य निर्जिहाना बहिर्निर्जराः समानग्रामा यूयमेव समानयत वासुकिं सान्त्वनेनेति प्रार्थयामासुरसुरवरान् ॥

प्रागेव पातालजुषां प्रवृत्तिं जिज्ञासवो दारकुमारकाणाम् ।
ते मन्दरोद्धारबिलाध्वनैव सद्योऽवतेरुर्दनुजाः प्रहृष्टाः ॥ ५८ ॥

प्रविशन्तश्च ते ददृशुरतर्कितोद्धृतमन्दरमूलकन्दरोद्धान्तमूर्च्छितपन्न-

---

ऊपर फेंके गये सागरके जलसे खाली सागरके गर्भमें उत्पन्न वातसे पूर्ण कन्दर वह मन्दराचल बड़े परिश्रमसे पानीसे मग्नोत्थित होनेके कारण दीर्घ निःश्वाससे खिन्न-सा लग रहा था ॥ ५७ ॥

इस आश्चर्यजनक दृश्यको देखकर देवगण आनन्दविभोर हो उठे, उन लोगोंने भगवान्से नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि हम आपके इस अनुग्रहसे कृतार्थ हो गये हैं, कहिये अब आगे क्या करें ? इसपर भगवान्के समीपमें वर्त्तमान ब्रह्माने कहा कि वासुकि नागको ले आइये । ब्रह्माकी आज्ञाको शिरोधार्य करके देवगण बाहर निकले और उन लोगोंने असुरोंसे प्रार्थनाकी कि आप लोग वासुकी नागसे अधिक परिचित हैं क्योंकि आप उनके पातालरूप गाँवके रहनेवाले हैं, अतः आप ही जायें और वासुकि नागको समझा-बुझाकर ले आयें ।

असुरोंकी स्त्रियाँ और बच्चे पहले ही पाताल गये हुए थे, उनकी खबर जाननेकी इच्छा असुरोंको थी, अतः वे मन्दरके उखाड़े जानेसे जो बिल मार्ग बन गया था उसी मार्गसे खुशी-खुशी तत्काल पातालको चल पड़े ॥ ५८ ॥

पातालमें प्रवेश करनेपर असुरोंने देखा कि मन्दराचलके एकाएक उखाड़

गाश्वासनपरिभ्रान्तबन्धुजननिरन्तरं, अर्णवनिमज्जदचलराजसंमर्दनिर्दल
दतलवितलादिलोकनिष्पेषघोषभीषिताश्वसदाश्वस्तविहस्तजानपदजनाक्रो
अतितूर्णमुद्गच्छदादिकच्छपनिष्ठुरपृष्ठसंघट्टनस्फुटितशैलशिलाभङ्गसमुच्छ
लदभङ्गुरस्फुलिङ्गपरिष्वङ्गदंदह्यमाननगरग्रामपल्लीनिवेशं, निरन्तरोत्पात-
धारानिरीक्षणसाध्वसेन पतिष्यति नाम भूतलं, चलिष्यति नाम सुमेरुः,
स्फुटिष्यति नाम विध्यण्डकपालं, प्रवेक्ष्यति नाम सागरः, परित्यक्ष्यति
नाम शेषो भुवनभारमित्यसंभावितमूलमनुक्षणमुच्चलन्तीभिः किंवदन्ती-
भिः समाकुलमभितो रसातलम्। समागम्य ते वासुकिं सभाजिता
यथोचितं समावेद्य सागरमथनसंरम्भम्, अनुपदमेव कथान्ते कथयामासुः
शनैरेव भवितव्यं भवता मन्दरवेष्टनदाम्नेति। अनुमोदमानो वचनम-
मीषामाह च स्मेदमुरगपतिः—'अहो चिराय मया श्रुतोऽयमभ्युदयो
भ्रातृजनस्य। यत्किल समागम्य दैतेयैरादितेयाः साधयन्ति मनीषितम्।
तत्र स्वयमनियुक्तैरपि काद्रवेयैर्भ्रातृभिस्तत्साहायकमाचरितव्यमिति न्याय

लिये जानेसे उसकी मूल कन्दरामें रहनेवाले नाग दूर जा गिरे हैं और उन्हें
मूर्च्छा आ गयी है बन्धुजन उन्हें आश्वासित कर रहे हैं, मन्दराचलके समुद्रग
होनेसे अतल-वितलादिलोक विदलित हो गया है, वहाँ भीषण चीत्कार मचा हुआ
है, यात्री लोग डर गये हैं, जिन्हें वहाँके रहनेवाले तसल्ली देनेमें व्यस्त हैं, अति
वेगसे निकलते हुए कमठराजके कठोर पृष्ठ भागसे टकरा जानेके कारण फूटती हुई
पर्वतशिलाके खण्डोंसे आग पैदा हो रही है जिससे नगर, ग्राम, पल्ली आदि जल
रहे हैं। पातालमें उस समय नाना प्रकारकी असम्भव किंवदन्तियाँ फैल रही थी
लोग कहते थे कि निरन्तर होनेवाली उत्पातपरम्पराके भयसे भूतल धँस जायगा
सुमेरु चलने लगेगा, ब्रह्माण्ड कपाल फट पड़ेगा, सागर पातालमें पैठ जायगा
शेष नाग पृथ्वीका भार उतार फेकेंगे। इसी समय दानवगण वासुकिके पास
आये, वासुकिने उनका यथोचित सत्कार किया। दानवोंने वासुकिसे कहा कि
सागरको मथनेकी तैयारी हो रही है, जिसमें आपको शीघ्र ही मन्दरवेष्टनरज्जु
बनना होगा। उनके कथनका समर्थन करते हुए वासुकिने मुस्कराकर कहा—
अहा, बहुत दिनोंके बाद मुझे भाइयोंका यह अभ्युदय सुननेको मिला है कि
दानवोंसे मिलकर देवगण अभीष्ट सिद्ध कर रहे हैं। इसमें तो नहीं पूछे जानेपर

एव चोदयति, अत्र किमावेदनेन भवताम् । परं तु—

मूले बालधिमग्रतः सुरगिरेर्मौलिं च मे बध्नता
कल्पे प्राचि पिनाकिना भगवताकृष्टोऽस्मि यल्लीलया ।
तत्कालश्लथसंधिबन्धपरिवृत्तास्थीनि मर्माणि ता-
न्यद्यापि स्मितजृम्भितक्षवथुषु स्वाच्छन्द्यमुच्छिन्दते ॥५९॥

अपि च—

यस्तल्पेष्वपि कोमलेषु शयितुं शक्नोमि नाश्मस्विव
त्यक्त्वा कुण्डलतां स्वपन्नपि च यो नायन्तुमद्योत्सहे ।
पाषाणद्रुमगुल्मकण्टकदरीकूटप्रपातोद्भटं
सोऽहं वेष्टयितुं क्षमः किमचलं गात्रैर्जराजर्जरैः ॥ ६० ॥

तदद्य किंचिदनुगृह्य मां, नयन्तु भवन्तस्तक्षककार्कोटकशङ्खचूड-गुलिकैरावतपद्ममुखान् महात्मनस्तरुणान् फणाधरान्, अन्ततो नयत जितश्रमं वा शेषं' इत्यभिदधानो वासुकिः पुनरित्थमभिदधे दानवैः—

भी सर्पोंको सहायता करना चाहिए । यह तो न्यायोचित है इसमें कहनेकी क्या आवश्यकता है । परन्तु—

पूर्वकल्पमें महादेवने सुमेरु पर्वतके मूलमें मेरी पूँछ तथा अगले भागमें मेरे सिरको बाँधकर अनायास इतना कसकर खींच दिया था कि तत्काल हमारी देहकी सन्धियाँ शिथिल पड़ गयी थीं, हड्डियाँ छिटक गयी थीं, मर्म चूर हो गये थे, उसीसे आज भी जब मैं हँसता, जँभाई लेता या छींकता हूँ तो मुझे परवशता प्रतीत होती है—कष्ट होता है ॥ ५९ ॥

मुलायम बिछावनपर भी मैं पत्थरपरकी तरह नहीं सो सकता हूँ, कुण्डलरूपता-को छोड़कर मुझमें सोनेके लिए भी सीधा होनेका उत्साह नहीं रह गया है । ऐसी स्थितिमें मैं इन वार्द्धक्यग्रस्त शरीरावयवोंसे पाषाण, वृक्ष, लतागुल्म, काँटे, दरियाँ, एवं झरनोंसे परिपूर्ण पर्वतको किस प्रकारसे वेष्टित करनेमें समर्थ हो सकूँगा ॥ ६० ॥

अतः आज आप मुझपर थोड़ी दया करें, आप तक्षक, कर्कोटक, शङ्खचूड़ आदि जवान सर्पोंको ले जायँ । अन्ततः शेष नागको ही ले जायँ, वे थकते नहीं हैं, इस प्रकार कहते हुए वासुकिको फिरसे दानवोंने इस प्रकार कहा—

'क्षुद्रैः किं करणीयमेभिरुरगैः क्षीणायुषामन्तकै-
र्या शेषं नयतेति वागजनि ते सैवास्तु सत्याधुना ।
भूभारे ह्युपयुक्त एष विदितः सर्वैस्ततोऽन्यः पुन-
स्त्वं शेषो भवसीति निश्चितधियस्त्वामेव याचामहे ॥ ६१ ॥

अपि श्लक्ष्णीकुर्मो मणिवदचलं पाणिकषणै-
रपि त्वां वोढास्मः सुखशयितमादुग्धजलधेः ।
सुखं चाकर्षामस्तदुपरि यथा तुष्यति भवान्
प्रसीदायच्छस्व प्रचल शनकैः प्राप्नुहि यशः ॥ ६२ ॥

किं बहुना । प्रातिवेशिका वयं भवतः परिचितहृदयाश्च चिरसंवासेन। ततस्तत्त्वमेतदवधार्यताम्—

महद्भिर्ग्रथ्नीमः स्रजमजगरैर्मन्दरचरै-
र्मरुद्भिर्वा पाशैर्भ्रमयितुमलं स्तब्धमचलम् ।

जिनकी आयु समाप्त हो गयी रहती हैं उनके लिए यमराजतुल्य इन तक्षक आदि क्षुद्र सर्पोंको लेकर मैं क्या करूँगा, आपने स्वयं कहा है कि शेषको ले जाइये, वही बात सत्य होवे । शेषनाग पृथ्वीके भारवहनमें लगे हुए हैं यह बात सर्वविदित है, अतः आपही शेष रह जाते हैं, इसलिये हम आपसे ही चलनेकी याचना करते हैं ॥ ६१ ॥

आप कहें तो हम हाथोसे घिसकर मन्दरको मणिकी तरह चिकना बनादें, आप सुखसे सो जाइये और हम आपको क्षीरसागर तक ढोकर ले चलें, आप जैसे सन्तुष्ट हों उसी तरह आरामसे मन्थनकालमें आपको खींचें, कृपा कीजिये धीरे-धीरे चलिये अवश्य, यशको हाथसे मत जाने दीजिये ॥ ६२ ॥

अधिक क्या कहें, हम आपके पड़ोसी हैं, हम पड़ोसमें रहनेके कारण आपसे परिचित हैं । इतना निश्चित समझिये—

मन्दराचलपर रहनेवाले बड़े-बड़े अजगरोंसे हम माला बना सकते हैं, अथवा बड़े-बड़े पाशोंसे हम स्थिर मन्दरको चलायमानकर सकते हैं । हम चाहें तो

करायैर्मथ्नीमो जलधिमथवा किं क्षरति नो
यशस्तूद्गातुं ते पुनरपि वदामः पुनरपि ॥ ६३ ॥'

इति प्रार्थितो दानवैरनुत्तरो भुजगपतिः प्रस्थातुकामो वलयमेकमुत्सृजन्यावदुत्तस्थौ, तावदर्णवमथनक्षोभशङ्कितपतनामवनीं धारयितुमवस्थापितः स्वयंभुवा वज्रस्तम्भ इव संददृशे । ततः प्रतिष्ठध्वमित्यनुज्ञाय दानवान्, प्रसारयन् मन्दरोद्धाररन्ध्राभिमुखं मुखं, अनुवृतस्तक्षकादिभिः, अनुमतो भूभारवहननिश्चलेन भगवता शेषेण, शनैः शनैः शिथिलीचकार भोगवलयान् ॥

अथ तेन विलाध्वना विशन्तं पवनं पार्थिवगन्धसारसान्द्रम् ।
प्रथमे पथि विश्रमे फणीन्द्राः पपुराकण्ठमयाचितोपपन्नम् ॥

ततः प्रपात इव परिहृतनिम्नोन्नते तस्मिन् बिलद्वारे, महता यत्नेन मन्दंमन्दमुत्सर्पन्तो दशयोजनं, अधःपतन्तः शतयोजनं, आरुरुक्षन्तः

हाथसे भी समुद्रको मथ दे सकते हैं, (आपके नहीं जानेसे भी हमारा कुछ बिगड़ता नहीं हैं) केवल आपको यशस्वी बनानेके उद्देश्यसे ही हम बार-बार प्रार्थना कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

दानवों द्वारा इस प्रकारसे प्रार्थनाके किये जानेपर नागराज वासुकि अनुत्तर हो गये, वह चलनेको उद्यत होकर बलयाकार अवस्थान छोड़कर उठे, उस समय वह ऐसे प्रतीत होते थे मानों समुद्रमथनके समय पृथ्वीके पतनकी सम्भावना देखकर—उसे बचानेके लिए ब्रह्माने वज्रमय स्तम्भ बना दिया हो । इसके बाद वासुकिने असुरोंसे चलनेको कहा, स्वयं उसने मन्दरोद्धारसे बने हुए बिलकी ओर मुख किया, तक्षकादि उसके पीछे हो लिये, भू-भार वहनकरनेमें लगे रहनेके कारण निश्चल शेषने उसे अनुमति दी, फिर वासुकिने धीरे-धीरे अपने बलयाकार अवस्थानका त्याग किया ।

इसके बाद बिलके मार्गसे आनेवाली पार्थिवगन्धसे पूर्ण हवाको मार्गमें प्रथम विश्रामकालमें बिना प्रार्थनाके प्राप्त करके नागोंने उसका आकण्ठ पान किया ॥६४॥

अनन्तर प्रपातकी तरह निम्नोन्नत भावसे रहित उस बिल द्वारमें नागगण बहुत प्रयत्न करके दशयोजन आगे बढ़ते थे फिर सौ योजन नीचे चले आते थे,

पुनः, अवेक्षमाणा निम्नोन्नतानि, फूत्कुर्वन्तो भूयसा यावदश्राम्यन्नागलाशनाः, तावत्करावलम्बनप्रदानापदेशेन परिघतोमरगदाप्रासादिभिः प्रहरणैः प्रकल्पयन्त इव सोपानानि, परिकर्षयन्तः शनैः शनैरिव प्रापयामासुरवनितलं फणाधरानसुरेश्वराः ॥

आपातालात्फणधरपतेरा च मूलात्सुमेरो-
रद्राक्षुस्ते स्तिमितपतितं भोगमायासयोगात् ।
मन्थानाद्रेरवनिवलयादुद्धृतस्यातिवेगा-
दन्तर्लग्नं त्रुटितघटितं मूलमेकं भुवीव ॥ ६५ ॥

अथ कथंचिदाश्वस्तमहिपुङ्गवमालक्षयन्तो दानवा नगनगरग्रामनदनदीनदीशसंतानदन्तुरेण भौमेन पथा परिक्रमणमावेद्य मान्द्यहेतुं, आसाद्य तदनुज्ञां, आफणामण्डलादा च वालमूलादुद्धृत्य कराञ्चलैर्युगपदुपनिवेशयन्तः स्कन्धेषु तं, अपरान् पुनर्महोरगानङ्गुलीभिरङ्गुलीयकानीव, पादैर्नूपुराणीव, पाणिभिः कङ्कणानीव, कटिभिः कटिसूत्राणीव, वक्षसा हारवलयानीव, वहन्तो लीलया तारापथेन पथा दुग्धोदधिमभिप्रतस्थिरे ॥

फिर ऊपर चढ़ना चाहते थे, श्रमसे फूत्कार करते थे, इस प्रकार जब नागगण श्रान्त हो गये, तब तक हस्तावलम्बन प्रदान करनेके छलसे असुरोंने परिघ, तोमर, गदा, प्रास आदि अस्त्रोंको आगे रखकर सोपान-सा बना दिया, और धीरे-धीरे उन्हें आगे बढ़ाते हुए वह सर्पोंको पृथ्वीपर ले आये ।

पातालसे लेकर सुमेरुके मूलपर्यन्त फैले हुए तथा श्रमवश शिथिल पतित नागराजके फणको असुरोंने देखा, उन्हें वह ऐसा लगा मानों अतिवेगसे पृथ्वीसे उखाड़े गये मन्दर पर्वतका टूट-फूटकर भीतरमें लगा हुआ एक मूल हो ॥ ६५ ॥

इसके बाद असुरोंने नागराजको थोड़ा आश्वस्त देखकर कहा कि पर्वत, नगर, ग्राम, नद, नदी आदिसे घिरी इस पृथ्वीपरके मार्गसे चलनेमें गति मन्द रहेगी । तब नागराजकी आज्ञा पाकर—राक्षसोंने उन्हें फणामण्डलसे लेकर पूँछ तक एकबार हाथोंसे उठाकर कन्धोंपर डाल लिया, दूसरे सर्पोंको अङ्गुलिसे अँगूठीकी तरह, चरणोंसे नूपूरकी तरह, हाथसे कङ्कणकी तरह, कमरसे कटिसूत्रकी तरह, छातीसे हारकी तरह, उठाये हुए असुरगण अनायास आकाशमार्गसे क्षीरसागरको चल पड़े ।

दूरादलक्ष्यत सुरैर्दनुजांसलग्ना
दाघीयसी भुजगपुङ्गवभोगरेखा ।
तिर्यक्प्रवाहमुपयातवतीव दिष्ट्या
मन्दाकिनी निपतिता शिखरे हिमाद्रेः ॥ ६६ ॥

पायंपायं पवनमभितः स्थौल्यमापाद्यमानं
वाहंवाहं फणधरपतिं विश्लथस्कन्धबन्धाः ।
प्रत्युद्यातैः सुरपरिवृढैर्भारविश्रान्तिहेतोः
सार्धं दैत्या भुवि निदधिरे संनिधौ शार्ङ्गपाणेः ॥ ६७ ॥

अथ शिथिलांसमांसलितखेदविनोदकृते
परिकलिताङ्गभङ्गमभितोऽपि वपुर्धुवताम् ।
करचरणोदराङ्गुलिभुजान्तरकन्धरतो
भुवि भुजगा निपेतुरितरे विबुधद्विषताम् ॥ ६८ ॥

खर्वोन्नतासुरस्कन्धसंधारणकृतां व्यथाम् ।
वीजितो विबुधैर्दैत्यैर्विजहौ वासुकिः शनैः ॥ ६९ ॥

असुरोंके कन्धोंपर वर्त्तमान अतिदीर्घ नागराजकी देह ऐसी लग रही थी मानों हिमालयके शिखरपर वक्र प्रवाहसे गिरती हुई मन्दाकिनी हो ॥ ६६ ॥

मार्गमें हवा पीकर स्थूलताको प्राप्त वासुकि नागको ढोनेके कारण असुरोंके स्कन्ध शिथिल हो रहे थे, उन्हें विश्राम प्रदान करनेके लिए देवगण आगे आये, फिर देव तथा दानव मिलकर नागराजको भगवान्‌के आगे जमीनपर रख दिया ॥ ६७ ॥

इसके बाद दानवोंने शिथिल कन्धोंको तथा बढ़े हुए श्रमको विनोदित करनेके लिए अँगड़ाइयाँ लीं और अपने शरीरको हिलाया-डुलाया, वैसा करने से उनके हाथ, पैर, पेट, अङ्गुलि तथा गर्दनसे सर्पगण गिरने लगे ॥ ६८ ॥

ऊँचे-नीचे असुरोंके कन्धों द्वारा ढोये जानेके कारण उत्पन्न श्रान्तिको नागराजने देवों द्वारा पङ्खा किये जानेके बाद दूर किया ॥ ६९ ॥

परिश्राम्यतश्च वासुकेरतिवेलश्वासनिःश्वासपरम्परापरिणमदुपचयापचया परिणतशरकाण्डपाण्डरा च भोगयष्टिरभिपूरयितुं दुग्धसागरमापतिता विदूरादुच्छृङ्खलतरङ्गमालासमाकुला स्तब्धेव सिद्धनदी सुरासुरैरालुलोके ॥

क्षितिधरपरिपातक्षुभ्यदम्भोधिगर्भ-
प्रचलदमृतबिन्दुस्यन्दसान्द्रैः समीरैः ।
फणिपतिरपनीतस्वेदखेदो ददर्श
त्रिजगदनभिवेद्यं देवमाद्यं मुकुन्दम् ॥ ७० ॥

प्रणिपतन्नथ वासुकिः फणामणिप्रकाशधारानीराजनैराराधयामास चरणारविन्दमरविन्दनाभस्य, आह चेदम् 'भगवन्नशिक्षितोऽस्मि शेष इव व्याकरणे, अनभियुक्तोऽस्मि पद्म इव पाञ्चरात्रे, अकृतश्रमोऽस्मि कम्बलाश्वतराविव गान्धर्वे, केवलमहं भगवतो मेरुधन्वनः सायकसंधानावसरसंपन्नम् भवतश्चरणारविन्दविन्यासभाग्यं परिशीलयन्नान्तरेण करणेन,

---

थके हुए नागराजके दीर्घ निश्वाससे उपचय तथा अपचयको प्राप्त करनेवाली उनकी फणपरम्परा ऐसी प्रतीत होती थी मानों क्षीरसागरको पूर्ण करनेके लिए आई हुई निम्नोन्नत तरङ्गावलीसे युक्त दूरयात्रासे स्तब्ध आकाशगङ्गा हो ।

मन्दराचलके निपातसे क्षुब्ध समुद्रके गर्भसे उड़नेवाली अमृतकी बूँदोंसे युक्त वायुका सेवन करके नागराजने अपनी थकान मिटाई, तदनन्तर उन्होंने त्रिलोकनमस्य आदिदेव मुकुन्दके दर्शन किये ॥ ७० ॥

प्रणाम करके नागराजने फणामणियोंके प्रकाशसे भगवान्के चरणारविन्दकी आरती उतारी, और इस प्रकारसे कहा—

भगवन्, मैंने शेषनागकी तरह व्याकरण नहीं पढ़ा है, पद्मकी तरह मुझे पञ्चरात्रमें भी प्रवेश नहीं है, कम्बल तथा अश्वतरकी तरह मुझे गन्धर्व विद्याका ज्ञान नहीं है, मैं तो महादेवके द्वारा बाणके रूपमें सन्धान प्राप्त करनेके समय आपके चरणन्यासका सौभाग्य पाकर ही कृतार्थ हुआ, उस सौभाग्यको ही अन्तःकरणसे सराहता रहता हूँ, आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें रहता हूँ, आपके आदेशकी

परिपालयन् भवच्छासनम्, आकाङ्क्षन् भवतो नियोगानुग्रहमासे भवदधीनः' इति । तदनु च—

'किं तन्त्रैः किं मन्त्रैः किं व्याकरणेन किं पुराणेन ।
चराणाम्बुजे निमग्ना धिषणा यदि पद्मनाभस्य ॥ ७१ ॥

इति स्तूयमानमब्जसंभवादिभिरिन्दिरारमणो वासुकिमिदमवादीत्—'वत्स वासुके न वक्तव्यमिदं त्वया । परिजानतैव हि भक्तिमियतीमपि मया प्रतिष्ठापितोऽसि प्रथमभुवनाधिपत्ये । तदिदानीं माहेश्वरं धनुरनुस्पृश्य संपादितं यशो माहेश्वरं गिरिमिमं प्रदक्षिणीकृत्य परिवर्धयेत्यादिशामि ।

तेजसाप्याययिष्यामि दिव्येन त्वामसंशयम् ।
कामं वेष्टय मन्थाद्रिं कर्षन्तु त्वां सुरासुराः ॥ ७२ ॥'

इति दत्तवरो वासुकिरिन्दिरारमणेन, परितोषयन् सुरासुरान्,

इच्छा रखनेवाला आपका जन हूँ । इसके बाद ब्रह्मा आदिने निम्नलिखित शब्दों में भगवान्‌की स्तुति की—

शास्त्रों तथा मन्त्रोंके ज्ञानसे क्या होगा, व्याकरण या पुराणसे ही क्या होने वाला है । यदि भगवान्‌के चरणोंमें बुद्धिलीन हो गई (तो शास्त्र आदिकी आवश्यकता नहीं रह जाती है) ॥ ७१ ॥

ब्रह्मा आदिसे इस प्रकार स्तुत होकर भगवान्‌ने वासुकिसे कहा—

वत्स, वासुके, तुमको इस तरह नहीं कहना चाहिये । तुम्हारी इस तरहकी भक्तिको देखकर ही मैंने तुम्हें नागलोकका राजा बनाया है । अतः अब शिवके धनुषके स्पर्शसे प्राप्त यशको शिवके पर्वतको प्रदक्षिण करके विस्तृत करो, यही मेरा तुमसे आदेश है ।

मैं तुमको दिव्य तेजसे पूर्ण कर दूँगा, तुम मन्दराचलको वेष्टित करो, और देव तथा दानव तुम्हें खींचें ॥ ७२ ॥

इस प्रकार भगवान् द्वारा दिये गये वरको प्राप्त करके वासुकिने देवों तथा

पश्यत्सु वैमानिकेषु, समुत्प्लुत्य वेगेन, सद्यःकृत्तविद्रुमकाण्डवत्संवेष्टयामास भोगेन मन्दरगिरेराभोगम् ॥

प्रणमन्तः स्तुवन्तश्च भगवन्तं जनार्दनम् ।
ववल्गुश्च जगर्जुश्च वासवाद्याः सुरासुराः ॥ ७३ ॥

इति श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमतप्रतिष्ठापनाचार्यचतुरधिकशतप्रबन्ध-निर्वाहकश्रीमन्महाव्रतयाजिश्रीमदप्पयदीक्षितसोदर्यश्रीमदाच्चान्दीक्षितपौत्रेण नारायणदीक्षितात्मजेन श्रीभूमिदेवीगर्भसंभवेन श्रीनीलकण्ठ-दीक्षितेन विरचिते श्रीनीलकण्ठविजये चम्पूकाव्ये तृतीय आश्वासः ।

दानवोंको सन्तुष्ट करते हुए वैमानिकोंके सामने तत्काल कटे हुए विद्रुमकाण्डकी तरह वेगसे उछलकर—अपने फणसे मन्दर गिरिके आभोगको वेष्टितकर लिया।

इन्द्र आदि देव तथा दानव भगवान्‌को प्रणाम करके और उनकी स्तुति करके तड़पने तथा गरजने लगे ॥ ७३ ॥

तृतीय आश्वास समाप्त ।

तुरीयाश्वासः

संवेष्टयन्नथ स मन्दरमम्बुराशौ
सार्धद्वयेन वलयेन भुजङ्गराजः ।
पार्श्वद्वयेऽपि शतयोजनमुच्छ्रिशेष
पुच्छं मुखं च मथनाय सुरासुराणाम् ॥ १ ॥

ततः पूर्वजैः पूर्वकायः फणिपतेः अवरजैरपरकायश्च परिग्राह्य इति न्यायमाचक्षाणेषु दानवेषु, कटाक्षेण कमलाक्षस्य, शासनेन च स्वयंभुवः, समुत्साहिताः परिकल्प्य शिरोभागमासुरं, परिजगृहुर्वालभागमदितिसुताः । अनन्तरमन्तर्भ्रमदचलराजमूलशिलासंघसंघर्षणकण्डूयननिद्राणकमठराजनिःश्वासपरम्परापरिहृतपवनाशनलोकदुर्भिक्षं, अभितः प्रकीर्णदुग्धकल्लोलनिपातपरिपूरितशुद्धजलार्णवं, आमूलपरिभ्रमदमृतसागरैकावर्तपरिभ्रमिततिमितिमिङ्गिलोद्गीर्णतत्कालनिगीर्णाजीर्णशफरतर्णकाकीर्णं,

---

इसके बाद नागराज वासुकिने ढाई फेरे डालकर समुद्रमें मन्दराचलको वेष्टित किया और पूँछ एवं मुखकी ओर सौ योजन करके अपने शरीरको अवशिष्ट रखा, जिस अवशिष्ट भागको हाथोंसे पकड़कर देव-दानवगण समुद्रका मन्थन करेंगे ॥ १ ॥

अनन्तर दानवोंने कहा कि जो पहले पैदा हुए हैं वह नागराजके पूर्वदेह भागको पकड़ें और जो बादमें पैदा हुए हैं वह परदेह भागको पकड़ें, यही न्याय है, इसपर भगवान्‌के इशारे तथा ब्रह्माके आदेशसे शिरोभाग असुरोंके लिए छोड़कर देवोंने पुच्छ भाग ग्रहण किया । अब समुद्रमन्थन प्रारम्भ हुआ, अभ्यन्तर देशमें मन्दराचलकी मूलशिलाके भ्रमणसे कमठका पृष्ठ खुजलाया जाने लगा तत्कृत सुख विशेषसे कमठराजको नींद आ गयी, वह लम्बी साँसें लेने लगे, जिससे वायुकी प्रचुरता हो आयी अतः पवनभक्षी नागोंके लिए भक्ष्य सुलभ हो गया । चारों तरफ दूधका प्रवाह बह चला, उसके सम्पर्कसे शुद्ध जलका सागर भी पवित्र हो उठा । मूलदेश पर्यन्त क्षीर-सागर घूमने लगा उसके साथ तिमि

अत्युच्चशिखरिशिखरनिष्पतदच्छनिर्झरस्रोतोनिपातपरिधौतचक्रवालशि-
लाचक्रं, अतिरभससमुद्धूतधातुरागसमुद्भावितकाण्डसन्ध्यासंसूचितहाला-
हलोपप्लवं, उत्प्लवमानसागरं दुग्धशीकरास्वादसुहितभुजगराजभोगप्रसारण-
वेगपतदुत्पतत्सुरासुरस्तोमपर्यवस्थापनव्यग्रपद्मसंभवं, उभयपार्श्वसंघटित-
शिलासंघसंघर्षणसुखनिर्मुच्यमानचिरपरिणामनिर्मलवासुकिनिर्मोकशकल-
परिधानसंजिघृक्षानुधावत्प्रमथयूथनिनादमेदुरं, अत्यायासपरिश्रान्तजर-
दुरगराजसमुद्गान्तपरुषविषानलज्वालाकलापदुरापलालाप्रवर्तितहालाहल-
बीजावापम्, आवसथपरिभ्रमणसमुद्विग्नकात्यायनीपरिरम्भसंभ्रमानन्दित-
चन्द्रशेखरतया प्रतिक्षणमुपर्युपचीयमानमहातपःसंभारं, आरसातलपरि-
भ्रमदर्णवावर्तगर्तसंदृश्यमानफणिलोकवृत्तान्ततया प्रशान्तगृहोदन्तविचार-
सुस्थपरिजनोरगपरिचरणसंभृतानन्ददन्दशूकेश्वरं, अद्भुतमवलोकयतां,

और तिमिङ्गिल नामक विशाल मत्स्य भी घूमने लगे, घूमनेसे उनके द्वारा तत्काल भक्षित वे लघुमत्स्यगण उनके मुखोंसे निकल आये, जो अभी तक उनके जठरानल द्वारा पचाकर जीर्ण नहींकर दिये गये थे। अत्युच्च पर्वत शिखरों परसे गिरनेवाले स्वच्छ झरनोंसे लोकालोक पर्वतका शिलाचक्र धुलने लगा। अतिवेगसे धातुराग उड़ने लगे, उनसे अकाल सन्ध्या हो आयी, उस अकाल सन्ध्यारूप उत्पातने होनेवाले विषोपद्रवकी सूचना दी। उड़ते हुए सागरदुग्धकी बूँदोंको चखकर तृप्त होनेवाले नागराजने अपने फण फैलाये, उनके फणप्रसारण-वेगसे देव-दानवगण गिरने-पड़ने लगे, ब्रह्मा उन्हें यथावस्थित रूपमें स्थापित करनेके लिए व्यग्र हो उठे। दोनों भागोंमें शिला द्वारा किये गये घर्षणसे जातसुखका अनुभव करके वासुकिने पुराने निर्मल केंचुलका परित्याग किया, उस केंचुलरूप वस्त्रके सङ्ग्रहार्थ प्रमथगण इधर-उधर दौड़ लगाने लगे, उनके शब्दसे वह प्रान्त भर गया। अतिश्रमसे थके हुए बूढ़े नागराजने विषानलज्वालापूर्ण लाला उगलना प्रारम्भ किया जिससे हालाहलका बीजपवन हुआ। आवास पर्वतके परिभ्रमणसे भयभीत पार्वती द्वारा किये गये आलिङ्गनसे महादेवको प्रसन्नता प्राप्त हुई जिससे प्रतिक्षण देवों तथा दानवोंकी तपस्या बढ़ने लगी। पाताल पर्यन्त सागरका जल घूमने लगा जिससे नागलोककी सारी घटनाएँ प्रत्यक्ष दीखने लगीं, नागगण घरकी खबर जाननेकी चिन्तासे मुक्त होकर नागराजकी परिचर्यामें लग गये

अद्भुततरमद्यापि शृण्वतां, अपर्याप्तमुपन्यसितुं वाचस्पतेरपि, अशक्यं काव्यशतेनापि वर्णयितुं काव्यस्य, सर्वतो निर्वृतैरपि महर्षिभिः समुत्सृज्य समाधिमालक्ष्यमाणमपक्ष्मपरिक्षेपं, अनुल्लिखितार्थलाभसमुल्लासेन किंचिदप्यगणितशरीरक्लेशमायस्यद्भिरपि सुरासुरैरालोकमानः सागरमथनसंरम्भमाननन्द गोविन्दः ॥

निर्मन्थश्लथसंधिबन्धनिखिलोद्देशक्षरन्निर्झरः
शैलोऽदृश्यत सिद्धचारणमरुद्गन्धर्वविद्याधरैः ।
अश्रान्तभ्रमणश्रमेण जलधेः पीतं प्रभूतं पयः
स्रोतोभिः पुनरुद्वमन्निव मुखश्रोत्राक्षिनासादिभिः ॥ २ ॥

अपि च ।

निःश्वसति भोगिभर्तरि निर्दग्धमहासुरैर्विषज्वालैः ।
उच्छ्वसितममरवर्गैरुत्प्रेक्षितकार्यलाघवैरन्तः ॥ ३ ॥

जिससे नागराज आनन्दित हो उठे। वह समुद्रमन्थन वृत्त देखनेवालोंके लिए अद्भुत तथा सुननेवालोंके लिए अद्भुततर था। शुक्र काव्यशत द्वारा भी उसका वर्णन नहीं कर सकते थे। सांसारिक झंझटोंसे मुक्त महर्षिगण समाधि छोड़कर अपलक नयनोंसे उसे देख रहे थे, असम्भूत फलकी लालसासे उल्लसित देव-दानव शरीर क्लेशकी चिन्ता छोड़कर जिस समुद्रमन्थनमें लगे हुए थे उसे देखकर भगवान्को बड़ी प्रसन्नता हुई।

मन्थनकालमें सन्धिबन्धनोंके शिथिल हो जानेसे चारों ओर झरने गिरने लगे, उस समय सिद्ध, चारण, मरुद्गण तथा विद्याधरोंने उस मन्दराचलको देखा, वह ऐसा लगता था मानो उसने जो बहुत-सा समुद्रका जल पी लिया था, उसे अनवरत परिभ्रमणजन्य श्रमके कारण मुँह, कान, आँख, नाक स्वरूप स्रोतोंसे वमन कर रहा हो ॥ २ ॥

नागराजने जब निश्वास छोड़ा तब विषज्वालासे असुरगण दग्ध होने लगे, उस समय देवोंने हृदयमें कार्यकी सिद्धिकी सम्भावनासे प्रसन्नताकी साँस ली ॥३॥

मथ्नतामप्येवं महतोत्साहेन तेषामपाङ्क्षयन् शनैः शनैः शक्तिह्रासं, आप्याययन्वासुकिमम्बरचरानपि स्वतेजसा, त्रिविक्रमः स्वयमपि मथितु-मुपचक्रमे ॥

स्वेनैव भ्रमयति माधवे भुजाभ्यां
बभ्राम भ्रमरकवत्स शैलराजः ।
किं चित्रं भ्रमति महर्षिसिद्धसङ्घे
मृद्भारे क्वचन महान्भ्रमोऽजनीति ॥ ४ ॥

अत्रान्तरे च समन्ततः प्रकीर्यमाणमन्दरशिखरकाननप्रसूनपराग-परिचयादिव धूसराणि ददृशिरे दिङ्मुखानि । परिस्फुटितनिष्क्रयूनाः फणामणय इव वासुकेः प्रतिसूर्या जज्वलिरे । परितोऽप्यासन्नमकाण्ड-विप्लवं जगतामवेक्षितुमक्षमेण दयानिधिना महेश्वरेण दृशोर्निमीलनादिव प्रचकाशे पद्मबन्धुरिन्दुश्च नाकाशे । सपर्वतवनद्वीपवसुमतीकम्पसंपन्न-

---

यद्यपि देव-दानवगण बड़े उत्साहसे समुद्रमन्थन कर रहे थे, फिर भी भगवान्ने देखा कि उनकी शक्ति क्षीण होती जा रही है, तब भगवान्ने वासुकि-को तथा आकाशचारी देवोंको अपने तेजसे पूरित किया और वह खुद भी समुद्र मथने लगे ।

जब भगवान् स्वयं अपने हाथोंसे मन्दरको घुमाने लगे तब वह मन्दराचल भ्रमरक (रही) की तरह घूमने लगा । इसके लिए आश्चर्य प्रकट करनेकी जरूरत नहीं है, जिसमें महर्षि तथा सिद्धगण भ्रमण किया करते हैं उसके कारण एक मिट्टीके लोंदेमें भ्रमण क्रिया उत्पन्न हो गई यह कौन-सी बड़ी बात हो गई ॥४॥

इसी समय समस्त दिशामुख धूसर हो उठा ऐसा लगा कि बिखरे हुए मन्दरशिखरके वनका प्रसून पराग आ मिला हो । फूटकर निकले हुए वासुकि-नागके फणामणिगणकी तरह सूर्यकान्तगण प्रज्ज्वलित हो उठे । सूर्य तथा चन्द्रका प्रकाश आकाशसे लुप्त हो गया ऐसा मालूम पड़ा मानों जगत्के शीघ्रभावी अकाण्ड संहारको नहीं देख सकनेके कारण दयालु महादेवने अपने नयन बन्द कर लिये हों । पर्वत, वन, नदी तथा द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीके कम्पनसे सुमेरु चञ्चल

चलनसुमेरुशिखरस्थसुरराजनगर-प्रासादद्दीपिका इव परिपेतुरभितोऽपि तारकाः ॥

उद्यन्निर्घातघोषप्रतिभयमुदयद्धूमकेतूपकेतु
क्रन्दद्दिक्पालगन्धद्विपमुदधिपतत्तुङ्गशैलाग्रशृङ्गम् ।
उड्डीनश्येनकङ्कप्रकरमुपचितध्वान्तमुद्भ्रान्तवातं
प्राप्तं मृत्योरकस्मादिव वदनबिलं विश्वमासीत्तदानीम् ॥ ५ ॥

तदनु निर्गमिष्यतः कालकूटस्योष्मणा क्वथिताद्उदधेरुत्पतन्तः पयःकणा यत्र यत्र निपेतुस्तत्र तत्र पर्वता व्यदीर्यन्त, पादपाः प्रजज्वलुः, पशुपक्षिणो विनेशुः, प्रागेव सागरचराणि यादांसि ॥

निःसंख्यस्फुरितस्फुलिङ्गजटिलोत्सङ्गज्वलत्पावक-
ज्वालाभङ्गविटङ्कसंकलितधूमस्तोमभीमस्ततः ।
क्रुध्यत्कालविवृत्तवक्त्रकुहरोन्मुक्ताट्टहासोद्भट-
स्फूत्कारध्वनिभीषणः प्रववृते कोऽप्यद्भुतो मारुतः ॥ ६ ॥

हो गया, फलतः स्वर्गाधीशके नगरके प्रासादोंकी दीपमालाके समान तारे चारों ओर गिरने लगे ।

भयङ्कर निर्घात शब्द होने लगे, धूमकेतु, उपकेतु आदि उदित होने लगे, दिक्पाल तथा उनके दिग्गज चीत्कार कर उठे, ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंके शृङ्ग टूट-टूटकर सागरमें गिरने लगे, बाज तथा कङ्क आदि पक्षी उड़ने लगे, चारों ओर अन्धकार बढ़ गया, जोरोंकी हवा बहने लगी, इस प्रकार उस समय यह संसार मृत्युके मुखमें एकाएक जा पड़ा ॥ ५ ॥

इसके बाद निकलनेवाले कालकूटकी ऊष्मासे क्वथित सागरके जलकण जहाँ गिरते थे वह पर्वत फटने लगे, वृक्ष प्रज्वलित हो उठे, पशु-पक्षी नष्ट होने लगे, सागरके जल तो सर्वतः पूर्व नष्ट हुए ॥

असङ्ख्यरूपमें फैले हुए स्फुलिङ्गोंकी ज्वालासे पूर्ण पावककी ज्वालाके सम्पर्कसे धूमराशिको साथ रखकर अति भीषण बनी हुई तथा कुपित कालके मुख-विवरसे निकलनेवाले अट्टहाससे भीषणतम वायु अद्भुतरूपमें प्रकट हुई ॥ ६ ॥

स निर्जिहान एव यज्जगर्ज तर्जयन् दिशो
बभर्ज यच्च दुर्जयोष्मजर्जरं जगत् ।
ततः प्रभूतभूतघातजातपातकावली-
विलापनाभिलाषुकः किमाससाद सागरम् ॥ ७ ॥

ततस्तदालीढाः सप्तापि सिन्धवः सप्ताज्यबिन्दव इव जज्वलुरेकयैव ज्वालया । तदग्रसरोष्मतापिता एव भस्मावशेषतामभजन्त जन्तवः क्षुद्रास्त्रिभुवने । प्रदीपशिखराग्रविन्यस्तेन प्रसूनेनेव धुत्तूरस्य सुधानिधिनैव सुतरां परिम्म्ले । प्रक्षिप्तो दूरमस्य मरुतो रंहसा पतगपतिरेव किं पपात, किमुत्पपात, किमतप्यत, किं निरदह्यत, किं मुमूर्च्छ, किं जीवितं जहाविति न ज्ञायते । उद्वान्तविषानला समभिव प्राणैरुरगपतेरपि तनुर्वर्ध्रिकेव सलिलक्लिन्ना वस्त्रभस्त्रिकेव रिक्तोदरा निःसारतया क्षणादवालम्बत नितम्बतः शैलपतेः । परिमृष्टाश्च तेन मायाविनोऽपि महासुराः, सुकृतशालिनोऽपि सुपर्वाणः, माहात्म्यनिधयोऽपि महर्षयः, चिरजीवितावलेन परं

वह वायु निकलते ही दिशाओं को आतङ्कित करती हुई गरजने लगी, दुर्जय गर्मीसे जर्जर जगत्को भूनने लगी, अतः बहुसंख्यामें प्राणियोंके संहारसे उत्पन्न पापपुञ्जको प्रक्षालित करनेके लिये वह सागरके पास आई ॥ ७ ॥

उस वायुसे सम्पर्क होते ही सात समुद्र सात घृत बिन्दुओंकी तरह एक ही प्रकारकी ज्वालासे प्रज्वलित हो उठे । उस वायुके आगे चलनेवाली गर्मीसे त्रिभुवनके छोटे-छोटे प्राणीगण भस्मावशेष हो गये । प्रदीपकी शिखाके ऊपर रखे गये धत्तूर पुष्पकी तरह चन्द्रमा अत्यन्त म्लान हो उठे । उस वायुके वेगसे उड़ाये गये गरुड़ कहाँ गिरे ? किधर उड़ गये ? कितनी मात्रामें झुलसे ? कितना दग्ध हुए ? कैसे मूर्च्छित हुए, या कि मर गये कुछ भी नहीं ज्ञात हुआ । विषानल वमन करती हुई वासुकि नागकी देह जलसे भींगी वरही अथवा खाली वस्त्र निर्मित भाथीकी तरह मन्दराचलके नितम्बदेशपर लटक गई । उस भीषण वायुसे मायावी महासुर भी अछूते नहीं रह सके, पुण्यशाली देवोंपर भी उसका असर हुआ, महात्मा सिद्धगण भी उससे प्रभावित हुए, परन्तु चिरजीवित्वके बलपर वह

ज्ञन्मात्रशेषिताः, परिक्षीणया गिरा, परिभ्रमता च लोचनेन, प्राकृता इव पर्यचेष्टन्त धरणीतले ॥

ऊष्माणावबहद्विभावसुरभौ सांसिद्धिकागन्तुकौ
सस्यन्दे क्वथितं शरीरमभितः पाथोमयं पाशिनः ।
सर्वाङ्गीणदृगन्तकन्दलदतिस्फाराश्रुधाराशतैः
सेकंसेकमनुक्षणं तु मघवा गात्रं दधौ जीवितम् ॥ ८ ॥

हताः स्मो वयमस्मिन्कर्मणि प्रवर्तिता भवतेति परिभाषमाणेषु सुरासुरेषु, परितप्यमानस्ततोऽपि त्रपयैव पद्मसंभवो विश्वंभरमिदमवादीत्—'भगवन् किमेतदिति मन्यसे ।

न संवर्तः प्राप्तो न च वहति संवर्तपवनः
शतेनाब्दैः शोषं नयति स परं तु त्रिभुवनम् ।
न च व्यापद्यन्ते तदुपरि चरन्तस्तनुभृतः
क एष ब्रह्माण्डं कवलयति निःशेषयति च ॥ ९ ॥

ज्ञानमात्र शेष बने रहे, उनकी वाणी क्षीण हो गई, नयन घूमने लगे, वे साधारण जनकी तरह पृथ्वीपर लोटने लगे ।

सूर्यने स्वाभाविक ताप तथा विषाग्नि, सम्बन्धजनिततापः—दोनों प्रकारके तापोंको धारण किया, वरुणदेवका जलमय शरीर क्वथित होकर बहने लगा, इन्द्रने समस्त शरीरमें अवस्थित लोचनोंके कोणभागोंसे बहनेवाली अश्रुधाराओंसे अपनी सन्तप्त देहको पुनः पुनः सींचकर किसी प्रकार जीवन धारण किया ॥ ८ ॥

आपके द्वारा इस कार्यमें प्रवर्त्तित होनेसे हम मारे जा रहे हैं, देवों तथा दानवोंने इस प्रकार ब्रह्मासे शिकायत की, उनकी शिकायतसे पैदा होनेवाली लज्जासे ब्रह्मा सन्तप्त होकर भगवान्से कहने लगे—

भगवन्, आप क्या समझ रहे हैं, यह क्या हो रहा है ?

न संवर्त्त उपस्थित हुआ है और न संवर्त्त-वायु ही बह रही है । वह संवर्त्त भी तो सौ वर्षोंमें त्रिभुवनको शुष्क करता है । यह भी है—कि संवर्त्तवायुके ऊपर रहनेवाले प्राणी उसके शोषणसे नहीं मरते हैं, फिर यह है क्या जो ब्रह्माण्ड को उदरस्थ करके निश्शेषित करता जा रहा है ॥ ९ ॥

अपि च ।

नासौ वह्निर्न हि खलु भवत्यग्निनाग्नेः प्रणाशो
नापि क्ष्वेलो न हि गरलतो हानिराशीविषाणाम् ।
नेदं सृष्टं सकृदपि मया नोपदिष्टं त्वया वा
किं व्याहारैर्मम च किमपि क्षुभ्यतीवान्तरात्मा ॥ १० ॥'

इत्यभिदधान एव विधौ, अशङ्कितोपनतरसातलातङ्कसंघटितसमाधिक्षोभकोपदुर्दर्शकालरुद्रसमुन्निद्रितफालनेत्रसमुत्थित इव महाप्रलयपावकप्रतिसर्गनिर्गलदनर्गलशेषविषनिःश्वासधूमसमाश्लेषजनितविषमषीपिण्ड इव मथनसंक्षोभचलितवडवानलसंवलितः, सुन्दरतरमन्दरगिरिकन्दरशयस्वायंभुवशांभवलिङ्गचलनसंभावितप्रत्यवाय इव परमदारुणः, कल्पानलदग्धजगदण्डपिण्डीकरणप्रसक्तकालचण्डीकरक्षालनोदकमिव क्षीरोदमाकलयन्, प्रथमनिःसृतपवनपरिस्पन्दमात्रनिःशेषितेषु भुवनेषु, दग्धव्यानुपलम्भसंभवक्षुधाप्रसारितरसनासहस्रभीषणेन ज्वालाकलापेन लेलि

यह आग नहीं है क्योंकि आगसे आगका नाश होते नहीं देखा गया है। यह विष भी नहीं है क्योंकि विषसे सर्पोंका नाश नहीं होता है। इसका मैंने कभी भी निर्माण नहीं किया है, और न आपने ही मुझे इसके निर्माणका उपदेश किया है, अधिक क्या कहें, हमारी आत्मा चञ्चल होती जा रही है ॥ १० ॥

ब्रह्मा इस प्रकारसे भगवान्से कह ही रहे थे कि अचिन्तितरूपमें पातालमें खलबली मची, जिससे कालरुद्रकी समाधि टूट गई, इसपर जो कालरुद्रको क्रोध हुआ तो उनका ललाटनयन खुल गया, उससे निकलनेवाले प्रलयपावकके समान, प्रत्येक सृष्टिमें अविच्छिन्न भावसे निकलनेवाले शेषनागके निश्वासधूमसे रचित स्याहीके गोलेके समान, अतिरमणीय मन्दरपर्वतकी कन्दरामें आरामसे रहनेवाले स्वयंभूशिवलिङ्गके चालनसे उत्पन्न परमदारुण प्रत्यवायके समान वह हालाहल प्रलयाग्निदग्ध विश्वब्रह्माण्डको पिण्डाकार बनानेमें लगी हुई कालचण्डीके हाथ धोने लायक यही समुद्र है ऐसा समझकर—पहले निकलनेवाली वायुसे ही समस्त विश्वके निःशेषित हो जानेके कारण अन्य दाह्यवस्तुके अभावमें भूखसे फैली हुई रसनासहस्रके समान भीषण ज्वालाकलापसे विधाताके इस विश्वप्रपञ्चको

हान इव वैरिञ्चमपि प्रपञ्चं, अवसादितभुवनकोलाहलो हालाहलो निर्गत्य, वारण इव वारणमभिदुद्राव रमारमणम्। तत्क्षणं च परुषविषानल-ज्वालापरिलोपप्रतीकारमन्त्राक्षराङ्गाररूषितानीव वदनानि चतुर्वदनस्य दधिरे दन्ततालुरसनाधरे मालिन्यम्॥

म्लायन्त्यां वैजयन्त्यामथ कनकपटे धूसरे धूमजालै-
श्चक्रे निर्ज्वालचक्रे सपदि परिणतस्फोटशङ्के च शङ्खे।
उत्सर्पन्तं समन्तादपि परिकलयन्नुद्भटं कालकूटं
कालात्मा पद्मनाभो मनसि विनिदधे कालसंघर्षयोगम्॥
सिञ्चन्तीं परमामृतानि दिशि दिशि दृश्यप्राकृतैरंशुभिः
खेलन्तीममृतार्णवे मणिमयीमारुह्य नौकां नवाम्।
स्निग्धापाङ्गतरङ्गशिक्षितभवक्ष्वेलां मुकुन्दश्चिरा-
दस्मार्षीदमृतेश्वरीं भगवतीमम्बामहंभावतः॥ १२॥

दग्ध सा करता हुआ—संसारके कोलाहलको शान्त करके बाहर निकला, और एक हाथी जिस प्रकार दूसरे हाथी पर टूटता है उसी तरह भगवान् पर टूट पड़ा। तत्काल भगवान्के दाँत, तालु, जीभ तथा अधर काले पड़ गये, ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे भयङ्कर विषानलके प्रतीकारमन्त्रोंसे रूखे हो उठे हों॥

भगवान्की वैजयन्तीमाला म्लान होने लगी, उनका स्वर्णवर्ण वस्त्र धूमजालसे धूसर हो गया, उनके चक्रकी कान्ति समाप्त हो गई, और उनके शङ्खके फूट जानेकी शङ्का प्रबल हो गई। भगवान्ने जब देखा कि यह अद्भुत कालकूट विष उनके अति समीप आता जा रहा है तब उन्होंने सोचा कि क्या मुझे मृत्युसे सङ्घर्ष करनेका अवसर भी आ जायगा॥ ११॥

इसके बाद भगवान्ने अम्बा अमृतेश्वरीका—'अहम् अमृतेश्वरी' इस तादात्म्य-भावनासे स्मरण किया जो प्रत्येक दिशामें अपनी अमानुष कान्तिसे अमृतकी वर्षा कर रही थी, जो अमृतार्णवमें मणिमय नौकापर आरूढ़ होकर खेलकर रही थी, तथा जो स्नेहमय अपाङ्गतरङ्गसे सांसारिक विषको नियन्त्रित कर रही थी॥ १२॥

तामित्थं स्मरतश्चिरं मधुभिदस्तारां सुधामालिनीं
धूतद्वैतकलङ्कशङ्करकलापुंभावरूपात्मनः ।
पाषाणव्यतिभेदजर्जरजरच्छैवालवत्तत्क्षणा-
दारात्किंचिदपासरत्परिगतो हालाहलः सर्वतः ॥ १३ ॥

अथ स्वस्थो यथापुरमम्बुजेक्षणस्तावतापि संरम्भेण तनुमात्रत्राणे पर्यवसन्नेन निराशो हालाहलनिग्रहे, निश्चिन्वन्ननितरसाध्यसाधनधौरेयैरप्यधर्यमन्तकान्तकस्य भाग इति, निर्धारयन्नन्तरेण परदेवताप्रसादमलभ्यतां शिवसाक्षात्कारस्य, चिन्तयन्नपि चिच्छक्तिविभूतिरूपतामात्मनः, परमेण समाधिना समाराध्य नारायणीमित्थमस्तावीत्—

'यज्जन्मस्थेमभङ्गव्रतमिह जगतां यच्च सर्वान्तरत्वं
यत्स्वातन्त्र्यं च मोक्षे श्रुतिषु निगदितं विश्वसाम्राज्यचिह्नम् ।
तद्यस्याः साहचर्यात्परिणमति परब्रह्मणि श्रीमहेशे
तामाद्यामात्मविद्यामहमिति कलयन्सर्वतो निर्वृतोऽस्मि ॥

मधुसूदनने जब इस प्रकारसे अमृतमयी ताराका ध्यान किया—जो अद्वैत भावमें अवस्थित शङ्करकी कलाके पुरुषरूप विष्णुकी आत्मस्वरूप है—तब तत्काल उनके चारों ओरसे वह कालकूट थोड़ा दूर चला गया जैसे पत्थरके प्रहारसे जीर्ण शैवालजाल दूर हट गया हो ॥ १३ ॥

अब भगवान् पहलेकी तरह स्वस्थ हो गये थे, परन्तु उतने संरम्भसे भगवान् अपने शरीरमात्रकी रक्षामें समर्थ हो सके इसीसे उन्होंने समझ लिया कि वह हालाहलका निग्रह नहीं कर सकेंगे, निश्चय कर लिया कि जिस कार्यमें अन्यजन सफल नहीं होते हैं वह अन्तकके भी अन्तक—शिवके ही द्वारा ही सिद्ध होता है; यह भी निश्चय कर लिया कि परदेवताकी प्रसन्नताके बिना शिवका साक्षात्कार असाध्य है, सोचा कि मेरी आत्मा चिच्छक्तिकी ही विभूति है, तब उन्होंने परम समाधि लगा कर नारायणी शक्तिकी स्तुति की ।

महेश जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयके कर्त्ता हैं, वह सर्वान्तरात्मा हैं, मोक्षके प्रति स्वतन्त्रता उनके विश्वसाम्राज्यका द्योतक है । यही सारी बातें महेशमें जिसके साहचर्यसे पैदा होती हैं, इस समय मैं उसी आत्मविद्याका अहंभावसे ध्यान करता हुआ सभी ओरसे शान्ति प्राप्तकर रहा हूँ ॥ १४ ॥

यल्लक्ष्मीदयितोऽस्मि यद्दनुभुवां जेताऽस्मि यत्कर्मिणां
कर्मस्वभ्युदयप्रदोऽस्मि यदपि ध्येयोऽस्मि वा योगिनाम् ।
तत्सर्वं त्रिपुरे महेश्वरि महामाये जगद्रूपिणि
त्वत्सौभाग्यमहाविभूतिकणिकालेशस्य लेशायते ॥ १५ ॥

अपि च—

अतीतत्रैगुण्यामशरणशरण्यां भगवती-
महं तामालम्बे दृढतरमहंतां पशुपतेः ।
तदाद्यं तत्त्वानामजरमपरिच्छेद्यमपरं
पराभूतद्वैतं परमपदमाविर्भवतु मे ॥ १६ ॥'

इति स्तुतिभिरर्थ्याभिर्ध्यायतो निश्चलं शिवाम् ।
अस्पन्देष्वस्य गात्रेषु पस्पन्दे दक्षिणो भुजः ॥ १७ ॥

अवतीर्णा चास्य कर्णसरणिमशरीरिणी वाणी ।

मैं लक्ष्मीका स्वामी, दानवोंका जेता, कर्मपरायणजनोंके लिए कर्मफलप्रद तथा योगियों द्वारा ध्येय हूँ, यह सारी मेरी विभूतियाँ, हे जगद्रूपिणि महामाये महेश्वरि त्रिपुरे, तुम्हारे सौभाग्यविभूतिके लेशका भी लेश हैं ॥ १५ ॥

मैं सत्त्व, रज, तमसे परे रहनेवाली, अशरणशरण्य, पशुपतिको अहङ्कार प्रदान करनेवाली भगवतीका दृढ़भावसे अवलम्बन करता हूँ, वह समस्त तत्त्वोंमें आदिमत्त्व, अविनाशी तथा अज्ञेय है, द्वैतको दूर करनेवाला वही परमपद मेरे आगे प्रकट हो ॥ १६ ॥

इस प्रकारसे निश्चल भावनाके द्वारा जब भगवान् भगवती शिवाका ध्यान कर रहे थे, तब उनका समस्त शरीर स्थिर हो उठा था, उसी समय उनका दाँया हाथ थोड़ा स्पन्दित हुआ ॥ १७ ॥

उनके कानोंमें यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी ।

'साधु वत्स जगन्नाथ साधु विष्णो जगन्मय ।
पश्य त्वमात्मनात्मानं परमं ज्योतिरैश्वरम् ॥१८॥' इति ॥

अथ यावत्समाधिं तं श्लथयामास माधवः ।
तावदाविर्बभूवास्य पुरः पुरहरं महः ॥ १९ ॥

तत्र च पवित्रतरनदनदीशादितीर्थस्वरूपतासंभावितक्लेदनैयत्यानुवृत्त्येव सामिविकसितललाटविलोचनधूमरेखासंस्तवेनेव कवलितजाह्नवीकोपपरिपूरितगर्भतयेव च परिणतपाटलिम्नि जटावलये प्रतिष्ठितया सान्ध्यरागसंवलितेनेव सकलशिवज्ञानाधिगमारम्भसंसूचनायेव द्वितीयाचन्द्रतामुपजग्मुषा, परमज्ञानरूपतयेव परिहृतकलङ्कानुषङ्गेण कपर्दबन्धनोरगदंष्ट्राङ्कुरेणेव कुटिलनिर्मलेन चन्द्रखण्डेन मण्डितम्, जगन्निष्कामताहेतुतयेव निष्कामजनोपासनीयेन पक्ष्मविवरसमुच्छलदर्चिःस्फुलिङ्गपरिष्वङ्गमात्रादेव निःशेषीभवति जगति निरीक्षितव्यासंभवादि नित्य-

---

वत्स जगन्नाथ, जगन्मय विष्णो, साधु साधु ! तुम ईश्वरकी ज्योतिसे अभिन्न अपने स्वरूपको आत्मामें देखो ॥ १८ ॥

इसके बाद माधवने जब अपनी समाधिका परित्याग किया, तब उनके सामने शिवस्वरूप तेज प्रकटित हो उठा ॥ १९ ॥

अनन्तर भगवान्ने महादेवका साक्षात्कार किया, वह महादेव चन्द्रकलासे भूषित थे, उनके सिर पर वर्त्तमान चन्द्रकला अतिपवित्र, नदी, नद आदि तीर्थस्वरूप होनेके कारण गीलापनसे युक्त होनेसे अर्धविकसित ललाट-लोचनकी धूमरेखासे परिचित होनेके कारण एवं जाह्नवीके कोपको उदरस्थ करनेके कारण पूर्ण गर्भ होनेसे रक्ताभ जटामण्डलमें रहनेके कारण सान्ध्यरागरञ्जितसी लगती थी, वह चन्द्रकला सकल विज्ञानकी प्राप्तिके आरम्भकी सूचनासी देरही थी, परमज्ञानस्वरूप होनेके कारण उसमें कलङ्कका संबन्ध नहीं हो पाया था, वह जटाबन्धनमें उपयुक्त सर्पके दांतकी तरह कुटिल तथा निर्मल थी । वह महादेव भक्तोंके आन्तरिक तमको दूर करनेवाले उसतृतीय नेत्रसे युक्त थे जो तृतीय नेत्र जगत्को कामरहित बनानेका कारण होनेकी वजह से निष्कामजन-वन्दनीय था, वरुनियोंके वीचसे निकलने वाले तेजसे जगत्को निःशेष कर देनेवाले उस नयनके

निमीलितेन भसितत्रिपुण्ड्रहारमालिकापद्मरागतरलेनेव ललाटलोचनेन परिहरन्तमान्तरं तमो भक्तिमतां, कुण्डलितकुण्डलिराजफणामणिमयूखराजिनीराजितेन निसर्गसुन्दरेण गण्डमण्डलेन, श्रुत्युल्लङ्घनभयादिव कर्णान्तपर्यवसितेन निरन्तरकरुणासारवाहिना लोचनयुगलेन, त्रिपुरविजययशोविशदेनेव परापराशेषविद्यात्मना प्रवहतो वचनामृतस्य निष्यन्देनेव मन्दस्मितेन च मदयन्तमिव मनांसि महायोगिनां, कदासौ पूर्येत, कदा चेममारोहेयमिति कुतूहलादुद्ग्रीवमालोकयन्तमिव चूडाचन्द्रमसं उदञ्चितात्रपादतया किंचिदन्यतो जिगमिषन्तमिव प्रकृतिचापलेन वेदमयं मृगमपरपादनियन्त्रणेन नियच्छन्तमात्मन्येव निभृतमेकेन करेण, अतिकठिनाज्ञानपाषाणसमुट्टङ्कनायेव गृहीतटङ्कमितरकरेण, निरुपप्लवापवर्गदानसत्रदीक्षिते जयत्यभयंकरे करे निःसारभोगवदान्येन किं मयेति ह्रियेवाधोमुखेन वरोङ्कितेन करारविन्देन परिपूरयन्तमभिमतान्यभिसंधिमतां, नीरूपदिगम्बराच्छादननिर्वेदादिव बहुरूपेण तारक्षवेण

लिये विश्वमें कुछ देखनेको नहीं रह गया था अतः वह नयन बराबर मुंदा रहा करता था, वह नयन भस्म, त्रिपुण्ड्र एवं हार के पद्मरागपर तरल होता रहता था। महादेवकी शेष दो आंखें श्रुतिके उल्लङ्घनके भयसे ही कर्णपर्यन्त विश्रान्त तथा निरन्तर करुणाकी वर्षा करने वाली थीं। वह महादेव अपने मन्दस्मितसे महायोगियोंके हृदयोंको आनन्दित कर रहे थे जो मन्दस्मित त्रिपुरविजयकी कीर्त्तिसे धवल एवं परा-अपरा विद्याके रूपमें प्रवाहशील वचनामृतके प्रवाहके समान लग रहा था। महादेवका कपोल कुण्डलके रूपमें उपयुक्त सर्पराजके फणामणिकी कान्तिसे चमक रहा था। महादेवने एक हाथसे वेदस्वरूप मृगको पकड़ रखा था जो वेद मृग यही सोचा करता था कि यह चूडाचन्द्र कब पूरा होगा और कब हम इसके ऊपर चढ़ेंगे, इसी धुनमें उसने अपने चरण उठाकर और गरदन ऊँची करके ऊपरकी ओर देख रहा था। महादेवने दूसरे हाथसे छेनी पकड़ रखी थी जो अतिकठोर अज्ञानपाषाणको चीरनेके लिये गृहीत मालूम पड़ती थी। एक हाथ जब अबाध मोक्ष-प्रदानका व्रत ले चुका है विश्वको अभय दे रहा है तब मेरी क्या आवश्यकता है इस प्रकारकी लज्जासे दूसरा वरदहस्त अधोमुख हो रहा था और ध्यान करनेवालोंको अभिमत प्रदान कर रहा था। चिरकाल तक नीरूप दिगम्बर धारण करते रहनेके कारण उत्पन्न निर्वेदके चलते

चर्मणाभिसंवीतं, चिन्मयेऽतिनिर्मले वपुषि जपाकुसुमपार्श्वगस्फटिके पलन्यायेन मञ्जीरफणिफणामणिप्रभापुञ्जपिञ्जरचरणारविन्देनातिपवित्रेण भाग्ययोगनिर्मलैरन्तःकरणैरिव चरणलग्नैः समाधिषु योगिनां पञ्चभिरक्षरैः शिवसूत्रस्य पर्यवसितैरिव सव्यापसव्ययोः पादयोरतिसुन्दरैर्नखैरवतंसयन्तमादिभारतीचिकुरबन्धं, अध्यासीनमधःकृतान्तःकरणवासनाष्टकमास्तीर्णात्मत्रयमहातल्पकल्पितमखिलतत्त्वपथोत्तीर्णमानन्दमयमहार्हमासनं, अन्वास्यमानमखिललोकमातृकया संविदानन्दघनीभावसंपन्नविग्रहया कादम्बिन्येव करुणारसपूर्णया आत्मविद्ययेव सादरमालिङ्गन्त्या समानगुणरूपसौन्दर्यशीलया भगवत्या सर्वमङ्गलया, सुखविश्रान्तमिव शरन्मेघमण्डलं, सुधासारघटितमिव कर्पूरपरागसंचयं, अतिकोमलमिव स्फटिकाचलं, आहतघनीभावमिव चन्द्रिकासारं, आवर्त्यपिण्डितमिव परमामृतं,आसेचनकमासेचनकानां, आश्चर्यमाश्चर्याणां, मङ्गलं मङ्गलानां

महादेवने बहुरूप व्याघ्रचर्म धारण कर रखा था। उनका शरीर ज्ञानमय तथा अति निर्मल था, जैसे जपापुष्पके समीपमें वर्त्तमान स्फटिक पर जपापुष्पका राग प्रतिफलित होता है उसी तरह चरणभूषण बनाये गये सर्पराजकी फणामणियोंसे प्रभा द्वारा उनके नख रक्ताभ हो रहे थे। उनके नख ऐसे लगते थे मानों समाधिलग्न महायोगियोंके प्ररूढभाग्य-सम्पर्कसे निर्मल अन्तःकरण ही उनके चरणोंमें लग्न हो रहे हों या शिवसूत्रके पांच (नमः शिवाय) अक्षरही दाहिने और बायें चरणमें संसक्त हों। उन सुन्दर नखोंसे वह (चरणप्रणत) आदिभारतीके केशपाशको उद्भासित कर रहे थे। वह महादेव अन्तःकरणकी आठ वासनाओंको बिछाकर बैठे हुए-से लग रहे थे, उन्होंने आत्मत्रयका तल्प बिछा रखा था, उनका आनन्दमय बहुमूल्य आसन अखिल तत्त्वपथसे परे वर्त्तमान था। आनन्दमय शरीरधारिणी मेघमालाकी तरह करुणा रससे पूर्ण आत्मविद्या सरीखी अखिललोकजननी उनका आलिङ्गन कर रही थी, उनकी अर्धाङ्गिनी भगवती सर्वमङ्गला गुण, रूप, सौन्दर्य एवं स्वभावमें उनके ही समान थी। वह महादेव शरत्-कालके मेघकी तरह सुखविश्रान्त, सुधामें सने कर्पूरचूर्णके समान, अतिकोमल स्फटिकगिरितुल्य, घनीभूत चन्द्रिकाराशिसदृश, पिण्डीभूत परमामृत समान लग रहे थे। उन्हें देखनेसे तृप्ति नहीं होती थी, वह आश्चर्योंके आश्चर्य,

आदिमादिमतां, अवधिमवसीदतां, आकरं विद्यानां, आलयं दयासौलभ्ययोः, अचिन्तनीयप्रभावमपि चिन्तनीयमखिललोकस्य, अद्वैतब्रह्मस्वरूपमप्याविष्कृतपञ्चब्रह्मरूपम्, अतिदूरमर्वाचां प्रमाणानाम्, अविप्रकर्षगोचरमादिगिरां साक्षात्कार दाक्षायणीरमणम् ॥

शाणोल्लीढशरन्मृगाङ्कशकलस्तोमाभिरामं महः
स्तत्पश्यन्निभृतं विनिद्रकमलद्राघीयसा चक्षुषा ।
साहस्राम्बुजपूजनव्रतसमाधित्सुः पुरा साहसं
चक्रे यद्विरिरंशे स्वयं तदुचितं मेनेऽधुना माधवः ॥२०॥

अपि च ।

वैराजशाक्करथन्तरवामदेव्य-
कालेयराजनगवांव्रतरौहिणाद्यैः ।
तं सामभिर्बहुभिर्ऋग्यजुषेण चोच्चैः
शौरिः स्तुवन्पुरहरं शतशो व्यनंसीत् ॥ २१ ॥

मङ्गलोंके मङ्गल, आदियोंके आदि, अवधियोंके अवधि, विद्याओंके आकर, दया तथा सुलभताके आलय थे । वह अचिन्त्य-प्रभाव होकर भी अखिललोकचिन्तनीय, अद्वैत ब्रह्मरूप होकर भी प्रपञ्चस्वरूप द्वैतको प्रकट करने वाले, आधुनिक प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अति दूर तथा आदिम वाणिओंके समीपस्थ थे ।

शानपर चढ़ाये गये शरद्ऋतुके चन्द्रखण्डकी तरह सुन्दर उस शिवस्वरूप तेजको विकसित कमलके सदृश दीर्घनयनोंसे शान्तभावमें देखकर शिवके लिए सहस्रकमल द्वारा पूजनव्रतके समापनकी इच्छासे पूर्वकालमें जो साहस किया था माधवने उस साहसको उचित समझा ॥ २० ॥

वैराज, शाक्वर, रथन्तर, वामदेव्य, कालेय, राजन, गवांव्रत, रौहिण आदि साममन्त्रों तथा बहुत सारे ऋग्वेद तथा यजुर्वेदके मन्त्रोंसे भगवान्ने महादेवकी स्तुति करते हुए बार-बार उन्हें प्रणाम किया ॥ २१ ॥

भव्यैरष्टभिरान्तरैः परिचरन् पुष्पैरहिंसादिभिः
कोटीरे परभक्तिभारनमिते कुर्वन्प्रणामाञ्जलिम् ।
वाग्भिर्गद्गदनिर्गताभिरखिलत्रय्यन्तसैद्धान्तिक-
स्रोतःसारमयीभिरस्तुत स तज्ज्योतिः परं ज्योतिषाम् ॥

'सान्निध्यमात्रजो यस्य स्पन्दो बिन्दोरिदं जगत् ।
अद्वन्द्वमपरिस्पन्दि तद्द्वन्द्वं नौमि शांभवम् ॥ २३ ॥

ओमित्युमेति युवयोरभिधानमेकं
सृष्ट्यादिसृष्टयवधितागुणमात्रभिन्नम् ।
एकं च तावदभिधेयमपीह रूपं
वेणी जटेति कचसंहतिभेदभिन्नम् ॥ २४ ॥

यद्घोरघोरतररूपमघोरसंज्ञ-
मावर्तितभ्रुकुटिभीषणमाननं ते ।

अतिरमणीय अहिंसा आदि आभ्यन्तर पुष्पोंके साथ भक्तिभावसे नत मस्तकसे प्रणामाञ्जलि समर्पण करते हुए भगवान् गद्गदभावसे निकलती हुई अखिल वेदान्त–सिद्धान्तकी स्रोतःसारमयी वाणीके द्वारा शिवस्वरूप ज्योतिके भी ज्योतिको नमस्कार किया ॥ २२ ॥

जिसके सान्निध्यमात्रसे बिन्दुमें स्पन्दन होता है उसीका परिणाम हो जाता है यह जगत्, सकलद्वन्द्वसे परे तथा अविनश्वर उस शाम्भवद्वन्द्वको (शिव-पार्वती के जोड़ेको) मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥

'ओम्' और 'उमा' आप दोनोंका यह नाम वस्तुतः एक ही है, अन्तर इतना ही है ओंकार सृष्टिके विलयका अवधि तथा उमा सृष्टिकी जननी है। ओम् तथा उमा शब्दका वाच्य अर्थ शिव तथा पार्वती भी एकही है अन्तर केवल यही है कि पार्वतीके सिर पर चोटी है और शिवके सिर पर जटा है ॥ २४ ॥

घोरसे भी अतिघोर जो आपका अघोरसंज्ञक कुटिल भ्रूभङ्गसे भीषण मुख

तदक्षिणं पशुपतेः परमं पदं मे
सांसारिकार्तिहरणं शरणं प्रपद्ये ॥ २५ ॥'

इति स्तुवन्तमिन्दिरारमणमिन्दुशेखरः परिरभ्य बाहुभ्यामिदमाचचक्षे —'भगवन् कमललोचन भवदर्शनेन परमामस्मि निर्वृतिं प्राप्तः । आत्मनोऽपि किमधिकं प्रेमपदम् । तथा हि—

शिवा घोरा चेति श्रुतिषु विदिते ये मम तनू
तयोराद्या मूर्तिः परमरमणीया त्वमसि मे ।
त्वमस्यर्धं देहे त्वमसि वदनं दक्षिणमिति
त्वयि प्रीये यावत्तव भवति तावच्च विदितम् ॥ २६ ॥

किमिच्छसि किं करणीयम्' इत्यमिदधत्युमावल्लभे, रमावल्लभेनेदमभिदधे—'किमन्यदेष्टव्यम् । इदं किल किमपि विशृङ्खलं दुर्यश इव संभावितस्य सद्यःसमाक्रान्तविध्यण्डमण्डलं, दुर्विदग्धस्य पाण्डित्यमिव तृणीकृतब्रह्मादिदैवतं, नीचगतमैश्वर्यमिव निमिषार्धमपि क्षन्तुमक्षमं,

---

है वही आप पशुपतिका दक्षिण पद है, वह सांसारिक सन्तापका दूर करनेवाला है, मैं उसे प्रणाम करता हूँ ॥ २५ ॥

इस प्रकार स्तुति करनेवाले लक्ष्मीनाथको बाहुओंसे आलिङ्गित करके शिवजी ने कहा—हे भगवन् कमललोचन, मुझे आपके दर्शनसे बड़ा आनन्द मिला है । आत्मासे बढ़कर प्रीतिपात्र हो ही क्या सकता है ? मेरी शिवा तथा घोरा नामकी जो दो देहें श्रुतियोंमें कही गई हैं, उनमें शिवा नामकी मेरी परम रमणीय देह तुमही हो । तुम मेरी देहके अर्धभाग हो, तुम मेरे दक्षिण मुख हो, मैं तुम पर कितनी प्रीति रखता हूँ यह तुमको ही विदित है ॥ २६ ॥

भगवन्, आप क्या करना चाहते हैं ? इस प्रकार शिव द्वारा पूछे जाने पर भगवान्ने कहा—इसके अतिरिक्त क्या चाहना है ? यह संभावित कार्यके नहीं कर सकनेसे उत्पन्न दुर्यशके समान, तत्काल समस्त ब्रह्माण्ड-मण्डलको आक्रान्त करनेवाला, दुर्जनके पाण्डित्यकी तरह ब्रह्मादि देवगणको तुच्छ समझनेवाला, नीच व्यक्तिगत ऐश्वर्यकी तरह क्षणभरके लिये क्षमा करनेमें असमर्थ, मूर्ख राजाकी

बालिशराजोपसेविजीवनमिव प्रतिक्षणं चित्रीयमाणं, पाशुपतावहेलनमिव भस्मीकृतजगत्त्रयं, क्षीणायुपामामयौल्वण्यमिव विफलीभवत्प्रतीकार-प्रकारं, पाषण्डमुखमिव परिहरणीयं दर्शनपथात्, प्रतारकसौहार्दमिव परमदारुणं, विषयनिषेवणमिव व्यामोहकारणं, भवत्पादाब्जवैमुख्यजं दुरितमिव भवत्प्रपदनैकभेषजं, अव्यपदेश्यमनिर्धार्यं, अदूरविप्रकर्षेण शक्यमिव विषमिति व्यपदेष्टुं, अतर्कितोपनतमतीतभवप्रारब्धमिव समाक्रम्य जगत्त्रयं, संनिपात्य देवासुरान्, प्रक्षोभ्य कमलासनं, परिवृत्य मामपि प्रवृत्तं शनैर्भूषणाम्बरादिषु, भगवत्याः सुधामालिन्याश्चरणस्मरण-प्रभावादपसृत्येव किंचिदधरोत्तरयति विश्वमिदम् ॥

अक्षोभ्यं भिषजां शतैरविषयः शस्त्रस्य वास्त्रस्य वा
दुःसाधं मणिमन्त्रयन्त्रशरणैर्दुर्निग्रहं योगिभिः ।

सेवामें नियुक्त जनके जीवनकी तरह प्रतिक्षण विचित्रता प्राप्त करनेवाला, शिव-भक्तके तिरस्कारकी तरह अशेष त्रिभुवनको भस्म कर देनेवाला, गतायु व्यक्तिके रोगवेगकी तरह समस्त प्रतीकारोपायोंको व्यर्थ बना देनेवाला, पाखण्डी व्यक्तिके मुखकी तरह नहीं देखने योग्य, ठग व्यक्तिकी मैत्रीके सदृश परमदारुण, विषय-सेवनके समान व्यामोह उत्पन्न करनेवाला, आपके चरणारविन्दसे विमुख रहने पर उत्पन्न होनेवाले पापकी तरह आपकी शरणमें जानेमात्रसे साध्य, किसी भी शब्दसे व्यवहृत होनेके अयोग्य, किसीके द्वारा अनिश्चितरूप, समीपसे देखने पर विषके रूपमें कहे जानेके योग्य, अकस्मात् प्रकट होकर, बीते हुए सृष्टिकालमें उत्पन्नके समान जगन्त्रयको आक्रान्त करके वर्त्तमान यह कोई अद्भुत पदार्थ देवों तथा दानवोंको गिरा-पड़ाकर, ब्रह्माको क्षुब्धकर धीरे-धीरे मुझको भी वस्त्र-आभूषण प्रभृतिके द्वारा घेरकर जो भगवती सुधामालिनीके स्मरणके प्रभावसे कुछ दूर हट-सा गया है, वह अद्भुत पदार्थ जगत्को विचलित कर रहा है ।

इस अद्भुत पदार्थको औषधोपचार-चतुर वैद्य नहीं छू सकते हैं, शस्त्र अथवा शास्त्रका वहाँ कुछ भी साध्य नहीं है, मणि, मन्त्र, यन्त्रआदिके ज्ञाता योगी उसको साध्य नहीं कर सकते हैं, इस पदार्थने कमलासन ब्रह्माको व्यामोहमें

व्यामुह्यत्कमलासनं विनिपतद्देवर्षिसिद्धासुरं
निर्व्यापारितमद्भुजं च किमिदं किंनाम न ज्ञायते ॥२७॥

यदादिष्टं पाल्यं जगदिति जगन्नाथ भवता
तदेतत्पर्यन्तं तव करुणया साधितमिव ।
दुरूहे दुःसाधे महति पुनरस्मिन् प्रविलये
ममेदं कार्यं यत्तव चरणयोस्तत्त्वकथनम् ॥ २८ ॥'

इति निर्विण्ण इव निवेदयति गरुडध्वजे, प्रहसन् पार्वतीरमणः, पश्य तावदिति ब्रुवन्, प्रसारयन् दक्षिणं बाहुं, अनुसस्मार हालाहलम् ॥

सर्वातङ्कविशङ्कशङ्करजटालंकारचन्द्राङ्कुर-
ज्योत्स्नानिर्भरपूरितत्रिजगतीगर्भावधूतो बहिः ।

डाल दिया है, देव, ऋषि, सिद्ध तथा असुरोंको निपातित कर दिया है, अधिक क्या कहा जाय, इसने तो मेरे हाथोंको भी व्यापारशून्य बना दिया है, यह क्या है तथा इसका क्या नाम है ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है ॥ २७ ॥

हे जगन्नाथ, आपने मुझे जो जगत्के पालनका आदेश दिया था, इस समय तक मैं उस आदेशका आपकी दयासे पालन करता आया था । इस दुरूह तथा दुःसाध्य प्रलयमें (अब मैं उस कार्यको करनेमें अपनेको असमर्थ पा रहा हूँ अतः) मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि यथार्थ स्थितका आपके चरणोंमें निवेदनकर दूँ ॥ २८ ॥

इस प्रकार जब खिन्न होकर भगवान्ने शिवजीसे निवेदन किया तब हँसते हुए शिवजीने कहा कि देखिये तो क्या होता है ? इस प्रकार कहते हुए शिवजीने अपना दहिना हाथ फैलाया और हालाहलका स्मरण किया ।

सर्वविध आतङ्कसे विशङ्क महादेवकी जटाके अलङ्कार चन्द्रकलाकी चन्द्रिकासे जगतीका अभ्यन्तर भाग पूर्ण हो गया, उसी चन्द्रिकाके प्रभावसे वह विष न

स क्ष्वेलः क्वचन व्यलीयत महाशुण्डालशुण्डाहति-
क्षुभ्यत्क्षुद्रसरस्तरङ्गनिकरव्याकीर्णशैवालवत् ॥ २९ ॥

अजनि शनैर्विशदं जगदपसर्पति कालकूटसंतमसे ।
तात्पर्यमिव कवीनां तार्किककोलाहलोपरमे ॥ ३० ॥

ततश्च सान्निध्यत एव भगवतश्चन्द्रचूडस्य पल्लवितान्यरण्यानि, पर्यपूर्यन्त सागराः, प्रावर्तन्त सरितः, पस्पन्दिरे मरुतः, प्रचकाशिरे ज्योतींषि, प्रसेदुर्दिशः, प्रशेमुरुत्पाताः, प्रादुरभूवन्मङ्गलानि, अचेतयन्त जन्तवः, यथापुरमबुध्यत वासुकिः, उत्तस्थुर्देवासुराः, शनैरुपलभ्य संज्ञा-मम्भोजसंभवोऽपि संददर्श चन्द्रशेखरम् ॥

पर्याप्तेन्दुशतद्युतिं परिचितं सत्या शुकश्यामया
साकूतस्मितसुन्दराधरपुटं शार्दूलचर्माम्बरम् ।

जानें कहाँ विलीन हो गया, जैसे महान् शुण्डादण्डशाली गजराजके शुण्डाघातसे क्षुभित अल्पाकार जलाशयके तरङ्गोंसे उसमें यत्र-तत्र बिखरा हुआ शैवाल विलीन हो जाता है ॥ २९ ॥

हालाहलजनित अन्धकारके हटते ही विश्व अतिविशद हो उठा, जैसे तार्किकों द्वारा उपस्थापित कोलाहलके समाप्त होते ही कवियोंके तात्पर्य विशद हो उठते हैं ॥ ३० ॥

इसके ही साथ-साथ भगवान् चन्द्रचूडके सान्निध्यमात्रसे वन पल्लवित हो गये, समुद्र पूर्ण हो गया, नदियाँ बहने लगीं, हवा चलने लगी, तारे चमकने लगे, दिशायें प्रसन्न हो उठीं, उत्पात शान्त हो गये, मङ्गलमय कार्य होने लगे, जन्तुओं में चेतना लौट आई, पहलेकी तरह वासुकि नाग फिरसे मन्दरमें बाँधा गया, देव-दानव उठ खड़े हुए, और धीरे-धीरे होशमें आकर ब्रह्माने भी शिवजीके दर्शन किये ।

सौ चन्द्रमाकी तरह प्रकाशमय कान्तिवाले, शुकश्यामलाङ्गी सतीसे युक्त, अधरों पर साभिप्राय मुस्कानको धारण करनेवाले तथा व्याघ्रचर्मधारी एवं बड़ी

सावज्ञाग्रकरप्रसारणमहासंरम्भसंभावना-
संहृष्यत्कमलेक्षणं च तमसौ पश्यन्न तृप्तिं ययौ ॥३१॥

ततः प्रतिलब्धचेतना ब्रह्मादयः, पक्षिण इव सुप्तोत्थिताः प्रातरुच्चावचैः कोलाहलैरुद्यन्तमिव सहस्रकिरणमुपतिष्ठन्ते यावदुमारमणं, तावदस्य भवसागरनिमग्नभक्तजनोद्धारदर्शितानुराग इव, परिणामकर्कशपशुपाश-ग्रन्थिविश्लथनायाससंभृतारुण्य इव, पार्वतोकुचकुम्भकुङ्कुमालेपपरिचय-पाटल इव, तामरसोदरसोदरत्विषि पाणितले, पल्लव इव मधुव्रतः, पद्म-रागकरण्ड इव कस्तूरिका, जाम्बवमात्रपरिमाणजातसंकोचमपि दुराधर्ष-मूष्मणा, दुर्दर्शमतिदारुणेन तेजसा च, समालक्ष्यत तरलमिव साध्वसेन तद् गरलम् ॥

लापरवाहीके साथ हाथके अगले भागको फैलाकर किये गये सत्कारके द्वारा ब्रह्माको आनन्दित करनेवाले उस देवाधिदेव चन्द्रशेखरको देखकर ब्रह्मा अति सन्तुष्ट हुए ॥ ३१ ॥

इसके बाद ब्रह्मादिदेव होशमें आये, जैसे प्रातःकालमें सोकर उठनेवाले पक्षिगण नानाविध कोलाहलसे उगते हुए सूर्यकी आराधना करते हैं उसी तरह वे ब्रह्मादिदेव शिवकी स्तुति करने लगे ।

इसी समय वह भीषण विष महादेवके हाथ पर आ गया, उनका हाथ भवसागरमें निमग्न भक्तजनके उद्धारके प्रति अनुरागसे रञ्जित-सा लग रहा था, परिणाम-कठोर पशुपाशग्रन्थिके खोलनेके श्रमसे लाल हो गया-सा प्रतीत हो रहा था, पार्वतीके स्तनों पर किये गये कुङ्कुमलेपके सम्पर्कसे रक्तवर्ण लग रहा था, वह कमलके गर्भकी तरह रक्तवर्ण था । उस रक्तवर्ण हाथ पर वह विष पल्लव पर भ्रमरके समान तथा पद्मराग-निर्मितपात्रमें कस्तूरीके समान प्रतीत हो रहा था, यद्यपि एक जामुनफलके बराबर आकारका होनेसे वह लज्जित-सा प्रतीत होता था परन्तु सन्ताप-प्रदानमें वह अजेय था, दुर्दर्श तेज भी उसकी ओर देख तक नहीं सकते थे । वह विष भयके कारण चपल-सा लग रहा था ।

आश्चर्यस्तिमितत्रिविष्टपमतिप्रेमाहितात्याहित-
प्रत्युभ्यद्गिरिजागृहीतपुनरुद्भूताग्रहस्ताम्बुजम् ।
मह्यं मह्यमिति प्रतिस्वमसकृत्क्ष्वेलार्पणप्रार्थना-
संनह्यद्गणदर्शितस्मितलवं शंभोः स्थितं पातु नः ॥३२॥

ततः प्रकृतिस्थे जगति, प्रबुद्धेषु देवासुरेषु, परिष्टुवति पद्मविष्टरे पद्मनाभे च, निषेद्धुमनुवर्तितुमप्यपारीणतया निश्चलार्पितदृष्टिषु नन्दिमुखेषु पारिषदेषु, अन्तरेव मङ्गलमाशासानया सर्वमङ्गलया समालिङ्गितो दृढं 'हालाहलो नाम विषराजोऽयमाचम्यतेऽस्माभिः, मा विभीत, विज्वरा भवत' इति प्रतिबोध्य पश्यतो जनान्, माधव इव नवनीतम्माधवो गरलमुपयुयुजे । यस्य शिष्यवर्गे वडवानलः, भुजिष्यवर्गे भुजगविषाणि, वनीपकवर्गे वज्रनिष्पेषः, गणनीय एव गगनमणिः, तादृशि कालकूटे तादृशोमपि दारुणतामुपसंगृह्य, जम्बूफल इव, जीर्णामलक इव, खर्जूरपिण्ड इव, खदिरसारखण्ड इव, विशति निःशङ्कमाननं विषमलोचनस्य,

---

महादेवने जब उस विषको हाथमें ले लिया तब देवगण आश्चर्यसे ठिठक गये, अतिशय प्रेमवश (शिवके द्वारा विषको हाथ पर लेनेको) महान् अनर्थ समझकर पार्वतीने शिवजीका हाथ पकड़कर विष छीन लेना चाहा, परन्तु शिवजीने अपना हाथ ऊपर उठा लिया । प्रत्येक महादेवके गणके मुखोंसे यह बात निकलने लगी कि वह विष मुझे मिले—मुझे मिले । इस स्थितिमें शिवका मुस्कुराते हुए खड़ा रहना हमारी रक्षा करे ॥ ३२ ॥

इसके बाद जगत्के स्वस्थ हो जाने तथा भगवान् एवं ब्रह्माके स्तुति करने लगने पर, नन्दिप्रभृति पारिषदगण महादेवको न विष पीनेसे रोक सके न उनका अनुमोदन ही कर सके । अपने हृदयमें मङ्गलकामना करती हुई पार्वतीने शिवका आलिङ्गन कर लिया, तब जैसे माधवने नवनीत खाया था उसी तरह शिवने यह कहते हुए विष खा लिया कि—'मैं इस विषराज हालाहलका पान कर रहा हूँ, आप मत डरें, आपका ताप दूर हो' । जिस हालाहल विषका वड़वानल शिष्यवर्गमें है, अन्यान्य सर्पविष सेवकवर्गमें हैं, हीरेकी कनी दयाप्रार्थी है, सूर्य जिसके तापके आगे फीका पड़ जाता है, वह कालकूट अपनी भयङ्करताको समेटकर जम्बूफल, पुराना आँवला, खर्जूरपिण्ड अथवा खदिरसारकी तरह जब निःशङ्क-

जठरस्थजगत्सोपमाशङ्कमाना दयामयी भगवती दाक्षायणी पल्लवकोमलेन पाणिना परामम्र्श कण्ठपदम् ॥

निर्मर्यादभवज्वरज्वलनसीदज्जोवजीवातुना
संस्पृष्टं करपल्लवेन जगतां मातुः सुधास्यन्दिना ।
सद्यः शीतलितं शरत्परिणतज्योत्स्नामृतस्यन्दव-
त्तस्तम्भे गरलं गले भगवतश्चन्द्रार्धचूडामणेः ॥ ३३ ॥

यच्छैलेषु यदम्बुराशिषु यदुद्भिज्जेषु यज्जन्तुषु
क्वापि क्वापि हृतस्य तस्य सहसा लेपात्मना शेषितम् ।
तत्सौराष्ट्रिकदारदादिभिदया विख्यातमद्याप्यहो
कीटायापि न मन्यते खगपतिं धन्वन्तरिं चाश्विनौ ॥३४॥

अन्तर्निगीर्णमपि तेन तदाविरासी-
त्कालोन्मिषत्कुवलयच्छवि कण्ठमूले ।

भावसे महादेवके पेटमें जा चुका तब महादेवके उदरदेशमें वर्त्तमान जगत्के दाहकी शङ्का करनेवाली दयामयी भगवती पार्वतीने अपने पल्लवसुकुमार हाथसे महादेवका गला सहला दिया ॥

असीम सांसारिक तापरूप अग्निकी ज्वालासे सीदित होनेवाले जगत्को जीवन प्रदान करनेवाले अमृतवर्षी माता पार्वतीके हाथसे स्पृष्ट होनेपर वह तत्काल शरद् ऋतुकी प्रौढ़ चन्द्रिकाके प्रवाहकी तरह शीतल होकर महादेवके गलेमें रुका रह गया ॥ ३३ ॥

उस हालाहल विषका जो थोड़ा सा अंश लेपके रूपमें पर्वतों, सागरों, लता या वृक्षों अथवा जन्तुओंमें कहीं-कहीं शेष रह गया, उसीका नाम सौराष्ट्र और दारद आदि पड़ा, वह आजभी प्रसिद्ध है और वह गरुड़, धन्वन्तरि या अश्विनीकुमारको अतितुच्छ गिनता है ॥ ३४ ॥

महादेवने उस हालाहल विषको पी तो लिया, परन्तु कालक्रमसे वह नील-

आयस्य गुप्तमपि खल्वनृतं कदापि
सद्यः स्फुटीभवति साधुषु निर्मलेषु ॥ ३५ ॥

अथ भगवन्तमनायासकवलोकृतकालकूटं आविष्कृतमन्दस्मितसुन्दरमाश्वस्तया भवान्या मुहुर्मुहुराश्लिष्य परिचुम्बन्त्या परामृश्यमानकन्धरापदं, आनन्दतुन्दिलतया किमप्यज्ञातकरणीयैरालिङ्गद्भिरितरेतरं, अन्योन्यमास्फोटयद्भिरन्योन्यममरगणैरसकृदुपसंगृह्यमाणचरणारविन्दमालक्ष्य चन्द्रशेखरम्, आनन्दनिर्भरा गोविन्दविधिपुरंदरादयो देवाः, बलिविरोचनादयो दानवाः, ब्रह्मर्षयश्च सनकादयो यथामति स्तोतुमारेभिरे ॥

'दिष्ट्या विषेण भग्नाः स्मो दिष्ट्या पीतमिदं त्वया ।
दिष्ट्या च नीलकण्ठं त्वां गृणती साधिता श्रुतिः ॥३६॥

पाषाणान् सितनीलपीतहरितान्वैडूर्यवज्रादिकान्
कण्ठे वक्षसि मूर्ध्नि वा निदधतां का नाम तेन स्तुतिः ।

कमलके रंगमें उनके कण्ठमूलमें प्रकट हुआ, जैसे प्रयास करके छिपाये जानेपर भी अनृत स्वच्छहृदय साधुओंपर कभी न कभी खुल ही जाता है ॥ ३५ ॥

इसके बाद महादेवने जब अनायास कालकूटको निगलकर सुन्दर मन्दहास प्रकट किया, तब आश्वस्त होकर बारबार पार्वतीने शिवजीका आलिङ्गन करके उन्हें चूमा, उनकी गरदन सहलाई, महादेवके गण आनन्दविभोर होकर एक दूसरेका आलिङ्गन करने लगे उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या करें, वे परस्पर धक्का देते तथा हँसते थे। उन लोगोंके द्वारा प्रणत भगवान् चन्द्रशेखरको देखकर आनन्दमग्न विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवगण, बलि, विरोचन आदि दानवगण तथा सनकादि ब्रह्मर्षिगणने यथामति शिवकी स्तुति करना आरम्भ किया।

हम सभी विषके सन्तापसे सन्तप्त हो रहे थे, हमारे सौभाग्यसे आपने उस विषको पी लिया है। अब हमारे भाग्यसे आपको नीलकण्ठ कहनेवाली श्रुति सार्थक हो रही है ॥ ३६ ॥

उजले, काले, पीले तथा हरे वैदूर्य आदि प्रस्थरखण्डोंको लोग कण्ठ तथा

एतद्भूषणमेतदेव जगतां दुःसाधमुज्जीवनं
कण्ठे यद्भगवन्नियच्छसि सुखं काकोलमुच्छृङ्खलम् ॥३७॥

अद्याहं परिपालकोऽस्मि जगतामद्यैव धातात्मभू-
रद्येमे हरिदीश्वरा भुजबलैरद्योद्भटा दानवाः ।
अद्यैते चिरजीविनो मुनिवरास्तन्त्रैश्च मन्त्रैरपि
स्वामिन्नाकलयामहे तव यदा कण्ठं घनश्यामलम् ॥३८॥

शैलादिकृतनिषेवण कैलासशिखरभूषण तत्त्वार्थगोचर चन्द्रार्धशेखर शापायुधकुलार्थ्यसस्मितापाङ्ग कोपारुणकटाक्षभस्मितानङ्ग ऊरीकृतविभूतिदिव्याङ्गराग गौरीपरिगृहीतसव्याङ्गभाग अङ्गानुषङ्गपावितनरास्थिलेश गङ्गातरङ्गभावितजटाप्रदेश वन्दनाभिरताखण्डल स्यन्दनायितभूमण्डल

मस्तकपर धारण करते हैं इससे उनकी क्या प्रशंसा है। यही भूषण है, यही जगत्का अति कष्टसाध्य उज्जीवन है जो कि आपने इस भयङ्कर हालाहल विषको अपने कण्ठमें निगृहीत कर रखा है ॥ ३७ ॥

वस्तुतः आज ही हम जगतके पालक हुए हैं, ब्रह्मा आज ही जगत्के निर्माता हुए हैं, आज ही यह देवगण दिगीश हुए हैं, दानवगण भुजबलसे अजेय हुए हैं और आज ही अपने-अपने तन्त्र-मन्त्रोंके द्वारा यह मुनिजन चिरजीवी हुए हैं जब हमने आपके इस कण्ठको मेघकी तरह श्यामलवर्ण धारण किये देखा है ॥ ३८ ॥

हे शैलराज पर निवास करनेवाले, कैलास शिखरके भूषण, तत्त्वार्थके विषय, चन्द्रकलाभूषण, आपकी जय हो। शापायुध-मुनिजन आपके सस्मित अपाङ्गकी प्रार्थना किया करते हैं, आपने कोपरक्त कटाक्षके द्वारा कन्दर्पको भस्मावशेष कर दिया है, आपने विभूतिके अङ्गरागको अपनाया है, आपके वाम भागको पार्वतीने अपना बना लिया है, आपने अपने शरीरके स्पर्शमात्रसे नरास्थिको भी पवित्र बना दिया है, आपकी जटाओंमें गङ्गा प्रवाहित होती रहती है। आपकी वन्दनामें इन्द्र निरत रहते हैं, आपने त्रिपुरदाहके समय पृथ्वीको अपना

अक्रीतदासतापसकदम्ब चक्रीकृतार्कशीतकरबिम्ब आहृतपुराणवेतण्ड
स्वीकृतसुमेरुकोदण्ड खर्वीकृतासुरमदानुपूर्वीविकास दर्वीकरेश्वरगृहीत-
मौर्वीविलास वीणामुनीन्द्रख्यापितगरिमपौरुष बाणाधिकारस्थापितपरम-
पूरुष अनिलाशनविहितनेपथ्य कमलासनविहितसारथ्य विश्वाधिकृत्वप-
दालम्ब अश्वायिताद्यवचोगुम्फ कुन्दस्मयहरकान्तिप्रकर मन्दस्मितलव-
शान्तत्रिपुर नादबिन्दुकलाभिज्ञास्पदभूरिभद्र स्वेदबिन्दुलवाविर्भावित-
वीरभद्र त्रस्तरक्षापरतन्त्र ध्वस्तदक्षाध्वरतन्त्र किरीटानीतविविधवेधः-
कपाल चपेटाघातशिथिलभास्वत्कपोल जृम्भितविक्रमोद्दण्ड स्तम्भित-
चक्रिदोर्दण्ड ब्रह्मस्तवोपचितमहाहर्ष जिह्मस्वभावजनदुराधर्ष वसुन्धरा-
धरसुतोपलालन जरन्धरासुरशिरोनिपातन कोपाहतपतितान्तक
व्यापादितसमदान्धक वरसंहननजटासंभृतपरभागगौर नरसिंहनियम-

रथ बनाया था, तपस्वीगण आपके बिना दामके गुलाम बने रहते हैं, आपने चन्द्रमा एवं सूर्यको अपने रथका दोनों चक्र बनाया था, आपने पुराने गजरूप गणेशके प्रति प्रेम किया है, सुमेरु पर्वत आपका धनुष बना, आपने असुरोंके मदको चूर किया, सर्पराजने आपके धनुषकी प्रत्यञ्चाका रूप धारण किया, नारदने आपके गौरव तथा पौरुषको प्रख्यापित किया, बाणासुरके अधिकारमें आपने भगवान्‌को रखा, सापोंको आपने भूषणका रूप प्रदान किया, ब्रह्माने आपका सारथि बनना स्वीकार किया, विश्वका अधिपतित्व आप पर अवलम्बित है, वेद आपके रथके अश्व बने, आपके शरीरकी कान्ति कुन्द पुष्पके गर्वको दूर करनेवाले हैं, आपके मन्दस्मित से त्रिपुर शान्त हो उठा, प्रणवके सूक्ष्मावयवोंको जाननेवाले आपकी कृपासे कल्याणराशिके पात्र होते हैं, आपने पसीनेकी बूँदके द्वारा वीरभद्रको उत्पन्न किया, भीतजनकी रक्षा करनेमें आप तत्पर रहा करते हैं, आपने दक्षके यज्ञका ध्वंस किया, आपने अनेक ब्रह्मकपालोंको किरीटरूपमें धारण किया है, चपेटाघात द्वारा आपने सूर्यके कपोलको शिथिल बनाया, आपका पराक्रम उद्दण्डरूपमें बढ़ता रहा है, आपने भगवान्‌के बाहुओंको स्तम्भित किया, आपको ब्रह्मा द्वारा की गई स्तुतिसे महाहर्ष होता है, कुटिलमति आपको नहीं प्राप्त कर सकते हैं, आपने नगराजकी पुत्रीको दुलारा है, आपने जरन्धर नामक असुरके सिरको गिरा दिया, आपके कोपसे आहत होकर यमराज पतित हुआ, आपने मदमत्त अन्धकासुरको मारा,

नालम्बितशरभावतार प्रपन्नभयमोचन विभिन्नभगलोचन प्रपञ्चदहनकारक विरिञ्चवदनहारक संचारपूतमन्दर पञ्चायुधातिसुन्दर अपनीतदक्षानन अभिनीतभिक्षाटन धारितमेरुकाननकुसुममालिकालंकार दारितदारुकाव-नकुलपालिकाहंकार समावर्जितभक्तमानसानुसार परावर्तितदृप्ततापसा-भिचार वैयासिकोक्तिगोचर वैयाघ्रकृत्तिभासुर गतपरिकर्मगणस्पृह कृतकरिचर्मपरिग्रह स्वध्यानशमितपातकप्रसङ्ग विध्यादिविबुधपूजित-स्वलिङ्ग शान्तमानसानुरोध क्षान्ततापसापराध फालानलवलनभीषण हालाहलगरलभूषण अरुणांशुकन्दलमणिसुन्दरफणिकुण्डल चरणाग्र-यन्त्रितदशकन्धरभुजमण्डल, आनन्दताण्डवनटनानुबन्ध गोविन्दपूजित-चरणारविन्द विनयानतामृताशनसहस्राहितप्रमोद तनयाभिलाषिमाधव-तपस्याकृतप्रसाद दिव्यास्त्रदानतोषितभृगुसूनुनम्य सव्यार्धभागभावित-

---

आपके मस्तक पर जटा है तथा आपका शेष शरीर गौर है, आपने नरसिंहको परास्त करनेके लिये शरभका रूप धारण किया, आप शरणागतके भयको दूर करनेवाले हैं, आपने वीरभद्रके द्वारा सूर्यके नयन उखड़वा लिये थे, आपने इस विश्वप्रपञ्चका दाह किया, आपने ब्रह्माका मुख अपहृत किया, आपने अपने सञ्चारसे मन्दरको पवित्र किया, आप पाँच आयुधोंसे अति सुन्दर हैं, आपने दक्षका सिर काट लिया, आपने भिक्षाटनका अभिनय किया, आपने मेरु पर वर्त्तमान वनके फूलोंकी माला धारण किया, आपने दारुकवनकी कुल-पालिकाका अहङ्कार दूर किया, आपने भक्तोंके हृदयका अनुसरण किया, आपने घमण्ड भरे तपस्वियोंके अभिचार कर्मको निष्फल किया, आप व्यासकी उक्तियोंके विषय तथा व्याघ्रचर्मसे भासित हैं, आपको परिकर्मगणकी स्पृहा नहीं है, आपने गजचर्म धारण किया है, आप अपने ध्यान करने वालोंके पाप शान्त करनेवाले हैं, ब्रह्मा आदि देवगण आपके लिङ्गकी पूजा करते हैं, आप मनके वेगको शान्त रखते हैं, आपने तपस्वियोंके अपराध क्षमा किये, आप कालानलकी ज्वालासे भीषण हैं, हालाहल विष आपका भूषण है, रक्त आभासे युक्त किरणवाले मणि आपके कर्णभूषण हैं, आपने चरणसे रावणके भुजमण्डलको नियन्त्रित किया, आप आनन्दमय ताण्डवनृत्यके अनुरागी हैं, आपके चरणारविन्द देवगणके द्वारा पूजित होते हैं, विनयनम्र देवगण आपके आनन्दको उत्पन्न किया करते हैं, पुत्रकी इच्छासे तपस्या करनेवाले विष्णु पर आपने कृपाकी थी,

हरिरूपरम्य वन्दितागतश्रुतिसार नन्दिपालितप्रतिहार बुद्धनानार्थरहस्य शतमन्युमुख्यामरभक्तिगोचर दुग्धपानार्थतपस्युपमन्युविश्राणितदुग्ध सागर अधिकसंचालितदुष्टपीडाचरण हरिविरिञ्चापरिदृष्टचूडाचरण अञ्चद्धर्मवृषाधार पञ्चब्रह्ममयाकार वेदाश्ववरोपहितस्वाम्य श्वेताश्वतरोपनिषद्गम्य चापल्यरहितरम्यस्वभाव कैवल्यवचनगम्यप्रभाव अखर्वमखाधिराज्यप्रताप अथर्वशिखानुवाद्यस्वरूप अगर्वनरस्तुतिमुदित अथर्वशिरःश्रुतिविदित नादान्तविभावनीय वेदान्तविबोधनीय प्रणतार्तिहर प्रणवार्थसार मुग्धलावण्याधार शुद्धचैतन्याकार आशीविषधारक काशीपुरनायक हृदम्बुजकृतविलास चिदम्बरकृतनिवास आकर्णचलितापाङ्ग गोकर्णरचितासङ्ग घोरासुरपुरधूमकेतुस्मित वाराकरगतरामसेतुस्थित

दिव्यास्त्र प्रदान द्वारा तुष्ट किये गये परशुरामके आप प्रणम्य हैं, आपने वाम अर्द्धभागमें हरिको रखकर अपने रूपको रम्य बनाया था, वेदके सार आपकी स्तुति करते हैं, आपके द्वारपालका कार्य नन्दी करते हैं, नानाप्रकारके अर्थ-रहस्योंको जाननेवाले देवगण आपकी भक्ति किया करते हैं, दूधके लिये तपस्या करनेवाले उपमन्युको आपने दूधका सागर प्रदान किया, आपने दुष्टोंको पीड़ा प्रदान करनेवाले चरण की भरपूर सञ्चालनाकी, विष्णु, ब्रह्मा आदि भी आपके तत्त्वको नहीं जान सके, आपने धर्मरूप वृषको अपना वाहन बनाया, आप परब्रह्म स्वरूप हैं, वेदस्तरूप अश्वोंपर आपका अधिकार है, आप श्वेताश्वतर उपनिषद्के प्रतिपाद्य हैं, आपका स्वभाव चापल्यरहित होनेके कारण रम्य है, मोक्षोपयोगी वचन आपके प्रभावका परिचय प्रदान करते हैं, समस्त स्वर्गराज्यपर आपका प्रभाव है, अथर्वशिखा नामक वेदभाग आपके स्वरूपका अनुवाद करता है, गर्वहीन मनुष्यकी स्तुतिसे आपको आनन्द होता है, अथर्ववेदके चरमभाग से आपका ज्ञान होता है, आप नादके अन्तमें बिन्दुरूपसे विभावनीय हैं, आप प्रणत व्यक्तियोंका कष्ट दूर करते हैं, आप ओंकारके अर्थके सारभूत हैं, भोले-भाले सौन्दर्यके आप आधार हैं, आप शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं, आप सर्पभूषण, काशीपुराधीश्वर, हृदयकमलवासी, चिदम्बरपुरके निवासी, कानपर्यन्त विस्तृत नयनशाली, गोकर्णकी चादर धारण करनेवाले हैं, आपकी मुसकान भीषण असुरनगरीके लिये धूमकेतु स्वरूप है, आप समुद्रस्थित रामसेतु पर

रक्षणलीलाविलास दक्षिणकैलासवास आताम्रलोलनयन एकाम्रमूलभवन आभीलविधुरसेवन श्रीशैलशिखरपावन आर्द्राक्षमधुरवाग्गुम्फ रुद्राक्ष-रुचिरदोःस्तम्भ कालकण्ठरुचिघटितलावण्य नीलकण्ठमखिनिहितकारुण्य सेवापरतन्त्रपालक शैवागमतन्त्रकारक सर्गस्थितिसंहृतिकार्यत्रयस्थेय भर्गश्रुतियन्त्रितगायत्र्यनुसन्धेय अध्यासितवरनिकुञ्जगृहहिमाहार्य अध्यापितहरिविरिञ्चमुखशिवाचार्य अर्चितानन्तविहार सच्चिदानन्दशरीर विजयी भव विजयी भव ॥

भुञ्जीथा न हलाहलं यदि महादेव त्वमेवंविधं
भुञ्जीरन् किमिमे सुराश्चरुपुरोडाशादिहव्यं मखे ।
आसीथा न यदि स्वयं पितृवने भूतानि संमोहय-
न्नासीरन् किमिमे जनाः सुकृतिनो हर्म्येषु सौधेषु च ॥३९॥

रहा करते हैं, आपकी लीला लोकरक्षार्थ है, आप दक्षिण कैलासपर वास करते हैं, आपकी आँखें रक्त तथा चपल हैं, आप ललाटमध्यवासी हैं, सभी दुःखी आपकी सेवा करते हैं, आपने श्री शैलशिखरको पवित्र किया, आपका वचन-विन्यास कच्चे बिभीतकके सदृश मधुर होता है, आपके करमूलमें रुद्राक्ष शोभा पाता है, कालकण्ठकी कान्ति आपके लावण्यको बढ़ाती है, आपने नीलकण्ठ-मखीपर दया की है, सेवामें निरत जनका आप पालन करते हैं, आपने शैवागम तन्त्रका प्रवर्त्तन किया, जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयरूप कार्यमें आप स्थिर भावसे वर्त्तमान रहते हैं, शिवके कानोंमें पड़ी गायत्री आपका अनुसन्धान करती है, हिमालयके निकुञ्जगृहमें आप वास करते हैं, आपने ब्रह्मा-विष्णु प्रभृति आचार्योंको पढ़ाया, आपने अनन्त विहारोंकी अर्चनाकी, आप सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, आपकी जय हो, जय हो ॥

हे महादेव, आप यदि इस प्रकारके भीषण इस हलाहलका पान नहीं कर लेते, तो क्या यह देवगण यज्ञगत चरु-पुरोडाश आदिके भक्षणमें समर्थ हो सकते । आप स्वयं यदि प्राणियोंको मोहित करते हुए श्मशानमें वास नहीं करते तो क्या यह पुण्यपरायणजन-समुदाय बड़े-बड़े भवनों या प्रासादों पर सानन्द रहते ॥ ३९ ॥

किं बहुना—

त्वत्प्रसूतास्त्वया गुप्तास्त्वया व्यापारिता वयम् ।
त्वां विदन्तोऽविदन्तो वा त्वामेव प्रीणयामहे ॥ ४० ॥'

इति स्तुवतो देवान् पुरशासनः पुनरित्थमनुशशास ।

'पुत्रा यूयं भुवनविदिता ब्रह्मनारायणेशा
दासा देवाः शतमखमुखा दानवेशास्ततोऽपि ।
कस्यान्यस्य व्यसनमहरं कालकूटे निगृह्णन्
लज्जे भूयः स्तुतिषु भवतां व्यापृतः स्वे कुटुम्बे ॥४१॥

तदलमतिक्रामति कालो मथनस्य । वत्सा देवासुराः, वत्स भोश्चतुरानन, शृणुतावहिताः परमुपदेशमिमम्—

अधिक क्या कहें—

हम आपसे उत्पन्न हुए हैं, आपसे रक्षित हैं, आपके ही द्वारा कार्योंमें व्यापारित होते हैं, हम आपको जानते हुए अथवा विना जाने आपको ही प्रसन्न किया करते हैं ॥ ४० ॥

इस प्रकारसे स्तुति करते हुए देवोंको पुरारिने पुनः इस प्रकार कहा—

ब्रह्मा, नारायण, ईश प्रभृति देवगण हमारे जगद्विदित पुत्र हैं, इन्द्र आदि देव हमारे दास हैं, असुरगण तो उससे भी बढ़कर मेरे दास हैं, कालकूटको निगृहीत करके मैंने किस अन्यजनका दुःख दूर किया है, मैंने आत्मीय जनपर ही तो अनुकम्पा की है, फिर भी आप मेरी स्तुति करते हैं जिससे मुझे लज्जा मालूम पड़ती है ॥ ४१ ॥

अतः इस समय स्तुतिकी बात व्यर्थ है, समुद्रमन्थनका काल बीता जा रहा है । वत्स देवगण तथा दानवगण, वत्स चतुरानन, आप सभी सावधान होकर मेरे इस उपदेशको सुन लें ।

अमुं यं वीक्षध्वे पुरुषमरविन्देक्षणमसौ
सवित्री सर्वेषामपि च भवतां मत्प्रियतमा ।
मदाज्ञामस्याज्ञां मम भजनमेतस्य भजनं
विजानन्तो यूयं विनमत तथास्मिन्मयि यथा ॥४२॥

भगवन्नरविन्दलोचन जानामि भवतो मयि प्रीतिमन्याद्दृशीम् । काममग्रे सहैवास्वहे । कालस्त्वयमेषामत्येति सुधाप्रदानस्य । तदस्य वियोगेन मे नार्हसि वैक्लव्यमधिगन्तुम् ।

भवानिति भवानीति पश्य भेदः कियानयम् ।
विग्रहं प्राप्तयोरेकं विश्लेषः क इवावयोः ॥ ४३ ॥

इति प्रसादयन्निन्दुशेखरः, प्रदक्षिणीकृत्य सहस्रशः, पादावाधाय मूर्ध्नि, परिरभ्य निर्भरं बाहुभ्यां, विसृष्टः कथंचिदपि विश्वंभरेण, पश्यत्सु देवासुरेषु, पार्वतीसहितस्तिरोदधे ॥

आप जिस कमलनयन पुरुषको सामने देख रहे हैं, वह आप सभीकी माता मेरी प्रियतमा है । इसकी आज्ञाको मेरी आज्ञा तथा इसकी भक्तिको मेरी भक्ति जानते हुए आप सभी इसको भी उसी तरह प्रणाम करें जैसे मुझे प्रणाम किया करते हैं ॥ ४२ ॥

हे भगवन् कमलनयन, आपकी प्रीति मुझपर कुछ दूसरे प्रकारकी है यह बात मैं समझता हूँ, फिर आगे तो हम और आप साथ ही रहेंगे, इस समय इनके अमृतमथनका समय बीता जा रहा है, अतः इस समय आपको हमारे वियोगमें अधीर नहीं होना चाहिये ।

देखिये, भगवान् तथा भवानीमें भेदही कितना है, हम दोनों जब एक ही शरीरको प्राप्त हो जाते हैं, तब हम लोगोंमें अन्तर ही क्या रह जाता है ? ॥ ४३ ॥

इस प्रकार चन्द्रशेखरने भगवान्को प्रसन्न किया, विश्वम्भर भगवान्ने हजार बार प्रदक्षिणा करके, उनके चरणोंको सिर पर रखकर, बाहुओं द्वारा गाढ़ालिङ्गन करके, किसी प्रकार उन्हें विदा किया, तदनन्तर पार्वतीसहित महादेव देवों तथा दानवोंके देखते-देखते तिरोहित हो गये ॥

तदनु च—

स्तुवन्तो दिव्याभिः स्तुतिभिरभिसंगम्य शतशः
स्पृशन्तः कोटीरैश्चरणकमलं कैटभभिदः ।
स्मरन्तः श्रीकण्ठं सममसुरवीरैर्दिविचराः
प्रहृष्यन्तः सिन्धुं प्रमथितुमुपाक्रंसत पुनः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमतप्रतिष्ठापनाचार्यचतुरधिकशतप्रबन्ध-
निर्वाहकश्रीमन्महाव्रतयाजिश्रीमदप्पयदीक्षितसोदर्यश्रीमदाच्चान्दीक्षितपौत्रेण
नारायणदीक्षितात्मजेन श्रीभूमिदेवीगर्भसंभवेन श्रीनीलकण्ठ-
दीक्षितेन विरचिते श्रीनीलकण्ठविजये चम्पूकाव्ये
चतुर्थ आश्वासः ।

इसके बाद असुरोंके साथ देवगण भगवान् कैटभारिके पास जाकर दिव्य स्तुतियोंसे उन्हें प्रसन्न किया, उनके चरणोंको अपने मस्तकभूषण-मणिओंसे छुआ, उन्हें स्मरण किया, और प्रहृष्ट होकर एक साथ पुनः समुद्रमन्थन करना प्रारम्भ किया ॥ ४४ ॥

चतुर्थ आश्वास समाप्त ।

पञ्चमाश्वासः

आलोड्यमानः पुनरेकतानैरामूलमब्धिः सुरदैत्यसंघैः ।
प्रादुष्करिष्यन्परमामृतं तत्प्रासीददीशान इव क्रमेण ॥१॥

ततश्च ततः क्षोभ्यमाणात्सजातीयमन्दरसंघर्षमसहमानतया समुत्थित इव मैनाकभूधरः, परिगलत्कलुषमदजलासारपरिजिहीर्षया निर्वासित इव भुवि नैर्मल्यैकमत्यस्थितैरान्तरैर्जन्तुभिः, सलिल एव संततवप्रक्रियाशीलनेन संसक्तैर्दुग्धसागरसरोजनालैरिव वज्रवलयैरावेष्टितचतुर्दन्तः, संततभूभार-परिश्रान्तदिगन्तदन्तावलराजदृष्टिपथान्निलीय विष्टिग्रहणशङ्कया विनिर्गतः स्वयमेव बहिरिव केनापि पथा विस्मयनीयविग्रहो महानैरावतो नाम मतङ्गजः प्रादुरभूत् ॥

एकतान हृदय होकर देवों तथा दानवोंने जब मूलपर्यन्त सागरको मथना प्रारम्भ किया, तब वह परम अमृतको प्रकट करेगा, इसीलिये प्रसन्न होने लगा, जैसे महादेव क्रमशः प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

इसके बाद मथे गये समुद्रसे ऐरावत नामका महान् गज निकला जो स्वसदृश प्रतीत होनेवाले मन्दर पर्वत द्वारा समुद्रके मथे जानेको नहीं सह सकनेवाले मैनाक पर्वतके समान लग रहा था, ऐसा लगता था जैसे गिरनेवाले दानवारिसे सम्भवी कलुषतासे बचनेके लिये निर्मलतापर एकमत होकर पानीमें रहनेवाले जन्तुओंने उसे पानीसे बाहर कर दिया हो। जलमें सदासे वप्रक्रीड़ा करते रहनेके कारण क्षीरसागरके कमलनाल सदृश लगनेवाले वज्रवलय ऐरावतके चारो दाँतोंमें लिपटे हुए थे। वह ऐरावत ऐसा लगता था मानो सर्वदा भूभार धारण करनेसे परिश्रान्त दिग्गजगणकी आँख बचाकर भाग खड़ा हुआ हो। वह छिप तो गया था परन्तु उसे पुनः पकड़े जानेकी शङ्का सताती रहती थी, इसीसे वह स्वयं बाहर निकल आया था। उसका शरीर आश्चर्यकारी था।

परिचलितदुग्धवेलापरिचयविमलस्य मन्दरस्य गिरेः ।
अभ्यर्णमुपसरन्नयमर्भक इव तस्य संददृशे ॥ २ ॥

आजिघ्रन्निव पुष्करेण जलधेरर्धं पिबन् शीकरै-
रासिञ्चन्नभितस्तनूमिव सुरान् स्रोतोभिरास्रावयन् ।
वप्राघातमिवाचरन् शिथिलयन्मन्थानमेवाचलं
हर्षायाजनि पश्यतां दिविषदामैरावणो वारणः ॥ ३ ॥

स च बहिर्निःसरन्नशिक्षिताधोरणनियन्त्रणतया मनागप्यगणयन् देवासुरान्, अमृतोपयोगसुहिततया किमप्यनालोकयन्नुपनीयमानानि-क्षुलताभारानुपह्रियमाणानि कदलीकाण्डानि संभ्रियमाणानि पिप्पल-पल्लवानि च, सर्वतः परामर्शं यादांसि । तमित्थमतर्कितोपनिष्क्रान्त-मालक्षयन्तः पुनरपि यावदाविलयांबभूवुरर्णवं देवासुराः, तावदुद्वेलहेषा-

---

क्षुभित क्षीरसागरकी बेलासे परिचय होनेके कारण मन्दर गिरि भी स्वच्छ वर्ण हो रहा था, उसके समीपमें वह मैनाक पर्वत ऐसा लगता था मानो मन्दर का ही बच्चा उसके समीप आ रहा हो ॥ २ ॥

अपने शुण्डादण्डसे वह समुद्रको सूँघ रहा था, समुद्रका आधा भाग वह पी रहा था, दूधके फुहारेसे अपनी देहको सींच रहा था, जलधारासे देवोंको नहला रहा था । वप्रक्रीड़ा-सा करता हुआ तथा समुद्रमन्थन-प्रवृत्त मन्दराचल को शिथिल करता हुआ वह ऐरावत नामका गज जब दृष्टिगोचर हुआ तब देवोंको बड़ा हर्ष हुआ ॥ ३ ॥

जब वह बाहर निकला उस समय उसे हस्तिपककी शिक्षा प्राप्त नहीं थी अतएव वह देवों तथा दानवोंको कुछ नहीं गिनता था, बराबर अमृत पीनेसे वह तृप्त हो रहा था अतः उपहृत किये गये ऊँखकी ओर दृष्टि भी नहीं डाल रहा था, उपहृत कदलीस्तम्भ एवं पीपरके पत्तोंकी ओर नजर भी नहीं कर रहा था, चारों ओर जलको उछाल रहा था ।

अतर्कित रूपमें उपस्थित होनेवाले उस ऐरावतको देखकर देवों तथा दानवों ने क्षीरसागरको फिर मथा, तब उससे उच्चैःश्रवा नामका अश्व निकला । वह

हलहलोन्मेषपोषितकल्लोलकोलाहलः, चटुलखुरपुटाविद्धदुग्धसागरशीकरासारदुर्दिनदुर्दर्शदिङ्मण्डलः, संततसलिलनिमज्जनोन्मज्जनक्लेशसहनाक्षमतया सैन्धव इव कुमुदबान्धवस्यन्दनसंदानितः, कोऽपि समुन्मुच्य बन्धनमुच्चलितो बहिरुच्चैःश्रवा नाम यथार्थनामा समुन्ममज्ज सज्जीकृतो वाजी ॥

आप्योऽसि रंहसा गच्छन्ननाप्यो मारुतेन यः ।
सैन्धवः सैन्धवाद्भर्मादुत्ततार स पाण्डरः ॥ ४ ॥

स च किंचिदुदञ्चिताग्रपादतया मुहुर्मुहुराधित्सन्निव शिरसि पदमनलसारथेः, अपहसन्निव हेषारवैरवनितलमात्रसंचारशिक्षिता इत्यारट्टजवनायुजान्, सलिलमात्रसंचारशीलिनो मत्स्यमण्डूककर्कटका इवेति वाजिनो वरुणस्य, तैलयन्त्रनियन्त्रिता बलीवर्दा इव संततभ्रमणमात्रगर्विता इति सैन्धवानम्भोजबान्धवस्य, मारुतविजयादेव मनांसि

अपने हेषा शब्दसे कल्लोल-कोलाहलको पुष्टकर रहा था, चञ्चल खुरों द्वारा उछाले गये क्षीरसागरके दुग्धकणोंकी वृष्टिके द्वारा दिङ्मण्डलको दुर्दर्श बना रहा था। वह ऐसा लगता था मानो चन्द्रमाके रथमें बँधा हुआ अश्व सदा जलमें डूबने-उतरानेके कष्टको नहीं सह सकनेके कारण बन्धन तुड़ाकर भाग खड़ा हुआ हो। उसके कान खड़े थे जिससे उसका उच्चैःश्रवा नाम चरितार्थ हो रहा था। वह सजा-सजाया था।

आप्य—जलसे उत्पन्न—होकर भी वह वेग में हवाके लिये अनाप्य—अप्राप्य-दुर्लभ था। ऐसा वह श्वेतवर्ण अश्व सागरके गर्भसे प्रकट हुआ ॥ ४ ॥

उसके चरणका अग्रभाग कुछ उठा हुआ था जिससे वह ऐसा लगता था मानो वायुदेवके सिर पर चरण रखना चाह रहा हो, अरबी घोड़ोंको वह अपने हेषा शब्दसे यह कहकर हँस रहा था कि उन्होंने केवल जमीनपर ही चलना सीखा है। वरुणदेवके अश्वोंको वह यह कहकर हँस रहा था कि वे तो केवल जलमें चलना सीख सके हैं अतः वे मछली, मेढक एवं केकड़ोंके समान ही हैं। सूर्यके अश्वोंको वह यह कहकर हँसता था कि बराबर घूमते रहनेसे गर्व करनेके कारण ये कोल्हूमें जुते हुए तेलीके बैलके सदृश हैं ॥

जिगाय । अपि च । वाडवानामाजानसिद्धो मनोजयः कस्तत्र यत्न इति कथयितुकाममिव चलप्रोथतया, वालविक्षेपनिर्धूतमेघमण्डलतया वाहनं प्राचीनमभिभवन्तमिवाखण्डलस्य पश्यन्नुच्चैःश्रवसमनिमेषेण चक्षुषा, पद्मनाभः स्वयमङ्गीकृतहयग्रीवतनुरध्यापनमात्रनिर्वृतः सर्वतोऽपि विस्मयनीये तदीये गतिचातुर्ये सासूय इव बभूव ॥

यावद्यावत्सागरं ते ममन्थुस्तावत्तावत्सोऽर्पयन्नेकमेकम् ।
भूयो भूयः क्षोभमेवाप देवैर्दृष्टास्वादास्तत्र किं ते दयन्ते ॥५॥

ततश्च—

साध्वी गौः सुरभिर्नाम सागरादुदभूत्स्वयम् ।
गोप्रसूता हि गावीस्यामसाधुश्चेति जानती ॥ ६ ॥
स्नातुं वाञ्छति शंकरोऽपि पयसा स्तन्येन यस्याः स्वयं
तोयं पावनमुत्तमं त्रिजगतां यद्गात्रनिष्यन्दजम् ।

वायुपर विजय प्राप्त करके ही उसने मनको भी जीत लिया था। उसके थूथन चल रहे थे मानो वह कह रहा था कि अश्वोंके लिये मनको जीतना स्वभावसिद्ध वस्तु है, उसमें क्या प्रयास है। गलेके ऊपर वर्त्तमान केसरको हिलाकर वह मेघमण्डलको इतस्ततः प्रक्षिप्त कर दिया था मानो उसने इन्द्रके प्राचीन वाहन मेघको परास्त कर दिया था। उस उच्चैःश्रवाको निर्निमेष नयनोंसे देखनेवाले भगवान्ने यद्यपि स्वयं हयग्रीवका रूप धारण किया था, परन्तु उस रूपमें वह केवल अध्यापन ही कर सके थे, गतिचातुर्य नहीं सीखा था, इस समय जब उन्होंने इस उच्चैःश्रवाके विस्मयजनक गतिचातुर्यको देखा तो उन्हें असूया होने लगी।

जैसे-जैसे देवों तथा दानवोंने समुद्रका मन्थन किया वैसे वैसे समुद्रने एक-एक रत्न उन्हें अर्पित किया, फिर भी समुद्रको देव–दानव मथते ही रहे, भला स्वाद पानेके बाद वह उसके ऊपर क्यों दया करते ? ॥ ५ ॥

इसके बाद सुरभि-कामधेनु समुद्रसे स्वयं पैदा हुई, उसने सोचा कि यदि मैं किसी गायसे पैदा होऊँगी तो इतनी भली नहीं हो सकूँगी ॥ ६ ॥

स्वयं शङ्कर भी जिसके दूधसे स्नान करनेकी इच्छा रखते हैं, जिसके शरीरसे

यद्रूपां समुपासते शमधना वाचं पुराणीं परां
सा दिव्या सुरभीकरोतु सुरभिर्वाचं कवीनामपि ॥७॥
प्रथमसमुद्गतामखिलकामदुघामनघां
सुरभिमभिप्रपद्य सुरसिद्धमहर्षिगणे ।
स्तुवति धृताक्षमा इव वदान्यशिखामणयः
समसुदयांबभूवुरथ पञ्च महातरवः ॥ ८ ॥

अमीषां च पुनरखिलभुवनाद्भुतानां किसलयान्येव कनकांशुकानि, जीर्णपर्णान्येव चीनाम्बराणि, मुकुला एव मुक्ताफलानि, निर्यासा एव वैडूर्याणि, फलपाका एव पद्मरागाः, परागा एव पटवासाः मधुकरा एव महेन्द्रोपलाः, प्ररोहा एव हारलताः, प्रसवासवा एव परिणामाः सुधारसस्येत्याचक्षते ॥

किं कर्म दुष्कृतमिदं तरुजन्महेतुः
किं वा महत्सुकृतमीदृशकीर्तिमूलम् ।

निकला हुआ पानी—स्वेदजल त्रिजगत्को पवित्र करता है, तपस्यापरायण मुनिजन पुरानी वाणीको जिसका स्वरूप मानते हैं, वह दिव्या कामधेनु कवियोंकी वाणीको भी सुरभित किया करे ॥ ७ ॥

पहले प्रकट होनेवाली, समस्त दोषरहित, अखिल कामनाको सफल करनेवाली—कामधेनुको प्राप्त करके देवगण तथा सिद्ध समुदाय उसकी प्रशंसा कर रहे थे, उनके द्वारा की गई उसकी प्रशंसाको नहीं सहन करनेके कारण दानियोंके अग्रगण्य पाँच कल्पतरु प्रकट हुए ॥ ८ ॥

अखिल विश्वको आश्चर्यमें डालनेवाले इन कल्पवृक्षोंके नये पत्ते ही स्वर्णमय वस्त्र, पुराने पत्ते रेशमी कपड़े, मुकुल मुक्ताफल, लस्सा वैदूर्यमणि, पके हुए फल पद्मराग, पराग पटवास, भ्रमर नीलमणि, अङ्कुर हारलतायें एवं प्रसवासवही अमृत परिणाम हुआ करते हैं—ऐसा सभी कहते हैं ॥

कल्पवृक्षोंके प्रकट होनेपर मुनियोंके बीच इस प्रकारकी वादकथा प्रारम्भ हो गई, कुछने कहा कि इन्हें जो यह वृक्षका जन्म प्राप्त हुआ है उसका मूल

किं वा तृतीयमिदमीदृशमन्यदेवे-
त्यद्यापि शाम्यति न वादकथा मुनीनाम् ॥ ९ ॥

अवस्थाप्य च तानानुपूर्व्येण परिहृतजरारोगपरिश्रमासु पञ्चेन्द्रियसमुज्जीविनीषु छायासु तेषामायासमवधूय पुनरपि ते ममन्थुरमृतार्णवम् ॥

अभ्युद्यतीं मथनतः किल निष्कलङ्का-
मानन्दकन्दलमयीममृतांशुरेखाम् ।
उत्तंसपुष्पकलिकेयमुमापतेरि-
त्यालोचयन्नुपददे मनसा मुकुन्दः ॥ १० ॥

ततश्चिन्तित एव संनिहितो नन्दी शिव इव सभाजितो देवासुरैः समर्पितां मधुसूदनेन शशाङ्करेखामाददानः सादरमिदमवादीत्—

कोई पाप होगा, दूसरेने कहा कि इस प्रकारकी कीर्तिका निदान कोई महान् पुण्य ही हो सकता है। तीसरे पुरुषने कहा कि यह कुछ दूसरा ही पदार्थ है जो स्वयं अनन्य सदृश है, इस प्रकार चलनेवाली मुनियोंकी वादकथा अभी भी शान्त नहीं हो रही है ॥ ९ ॥

जरा, रोग एवं परिश्रमकी कथासे रहित पाँचो इन्द्रियोंको समुज्जीवित करनेवाली छायामें क्रमानुसार उन कल्पवृक्षोंको स्थापित करके तथा उनकी थकावट दूर करके उन लोगोंने पुनः सागर मथना प्रारम्भ किया।

समुद्रमन्थनसे निकलनेवाली आनन्दप्ररोहसदृश उस निष्कलङ्क चन्द्रलेखाको देखकर, यह महादेवके शिरोभूषणकी पुष्पकलिका है—ऐसा समझकर भगवान् अपने मनमें अत्यधिक आनन्दित हुए ॥ १० ॥

इसकी चिन्ता करते ही नन्दी आकर उपस्थित हो गये, देवों और दानवोंने शिवकी ही तरह उनकी अभ्यर्थनाकी, भगवान्ने समुद्रसे निकली इन्दुलेखा नन्दीको सौंप दी, उसे ग्रहण करते हुए नन्दीने सादर कहा—

'किमिव दयितं शंभोः केन प्रसीदति देव इ-
त्यविरतसमासक्तं चित्तं तवैव हरे हरे ।
तदिह भगवन्माहाभाग्यं तव प्रणुमः कथं
त्वमसि शरणं शैवानां नस्त्वमेव महागुरुः ॥ ११ ॥
जानीषे ननु नाम केशव जगन्नाथस्य नाथस्य नः
प्रीतिं पारमिकीमनन्यसुलभां पुष्पेषु नीलोत्पले ।
अस्मिन्नुत्पलबन्धुरित्यतितनूभूतेऽपि भूतेशितुः
प्रीतिं चिन्तय तावतीमुपचितामिन्दौ ततो वाधिकाम् ॥१२॥

तदहमेव प्रसाधयन्नेन भगवतः कपर्दपदमाराधयामि हस्तेन ते परमात्मानम् । अग्रभुजे च विश्वेषामग्रपूजनमेतदुचितमाचरितम् । तदितो यथाभिमतमिमानि वस्तून्युपयुज्यन्तां' इत्यभिधाय तिरोभवति शिलादनन्दने, पुनरपि संचुक्षोभ सारस्वतो गर्भः ॥

महादेवको क्या प्रिय है, वह किस वस्तुसे प्रसन्न होते हैं, हे हरे, इस विषयमें आपका ही हृदय सदा संलग्न रहा करता है। इस विषयमें आपके अहोभाग्यकी हम किस प्रकार स्तुति करें ? आप हम शिवभक्तोंके आश्रयदाता तथा महागुरु हैं ॥ ११ ॥

हे केशव, हमारे स्वामी तथा जगत्के नियन्त्रक महादेवकी अन्यदुर्लभ परमप्रीति पुष्पोंमें नीलोत्पलपर है इस बातको आप जानते हैं। उत्पलबन्धु होनेके कारण इस अतिलघुकाय चन्द्रमाके प्रति भूतनाथकी प्रीति नीलोत्पलकी तरह ही है अथवा उससे भी अधिक है, ऐसा आपको विचार लेना चाहिये ॥ १२ ॥

अतः मैं इस चन्द्रकलाके द्वारा शिवके जटाजूटको सजाकर परमात्मा शिवकी आराधना कर दूँगा। शिवजी संसारकी सारी वस्तुओंके अग्रभोक्ता हैं अतः इस चन्द्रकलासे उनकी ही अग्रपूजा उचित है। अतः इसके आगे निकलने-वाली वस्तुओंका आप लोग यथारुचि उपभोग करें। इस प्रकारसे कहकर नन्दीके अन्तर्हित हो जानेपर पुनः समुद्रका अभ्यन्तर भाग मन्थनसे क्षुभित हो उठा।

नैर्मल्यादुपसंभृताः फणधरस्त्रैणानुबिम्बाः शतं
स्वस्थानक्षुभितोद्गतामृतरसस्यन्दोपसंदानतः ।
प्राप्तप्राणसमागमा इव ततः प्रादुर्बभूवुः स्त्रियो
नासीराग्रपताकिका रतिपतेर्नानाजयाङ्का इव ॥ १३ ।

ततश्च विद्रुमलता इव वीचीभिराहृताः, तटित इव तत्तत्समयोपनम्र-पयोधरोत्संगपरिभ्रष्टाः, कौस्तुभरत्नपाञ्चालिका इव कौतूहलाय विनिर्मिताः केनापि, पञ्चशरराज्यलक्ष्मीविभूतीरिव परिगृहीतविग्रहाः, तुल्यवयोरूप-विभ्रमाः, तुल्याम्बरविभूषणाः, हंसीरिव मानसादम्भोदविगमे समुत्त-रन्तीस्ता बहिरालक्ष्य सर्वेऽपि सुरासुराः विरम्य सागरमथनवृथाक्लेशा-दुत्तरमप्यमृतमुपेक्ष्य संनिहितेऽधरामृत एव दृष्टिमादधिरे । तापसा अपि तद्दर्शनक्षुभितहृदया मन्त्रजपादुपरम्य मणितभेदानधिजिज्ञासांचक्रिरे । पञ्चाग्निमपि विमुच्य पञ्चास्त्रविद्यामेव परमर्षयोऽपि बहुमेनिरे ।

बहुत-सी नागलोक–ललनाओंकी प्रतिच्छवियाँ स्वच्छ होनेके कारण क्षीर-सागरमें प्रतिफलित हुईं, वह प्रतिच्छवियाँ क्षुभित सागरके सुधारससे मिलकर जीवित हो उठीं, वही हैं यह अप्सरायें, ऐसी वह अप्सरायें क्षीरसागरसे प्रकट हुईं जो कामदेवकी सेनाके आगे-आगे चलनेवाली नानाजयचिह्नोंसे भरी विजय पताकाओंके समान लग रही थीं ॥ १३ ॥

इसके बाद तरङ्गोंके द्वारा लाई गई विद्रुमलताओंके समान, किनारेपर, आनेवाले मेघोंकी गोदसे गिरी बिजलियोंके समान, किसीके द्वारा लोगोंको आश्चर्यमें डालनेके लिये निर्मित कौस्तुभमणिकी पुतलियोंके समान प्रतीत होनेवाली सागरजलसे निकलती हुई अप्सराओंको देखकर देव तथा दानवगण सागर-मंथन-परिश्रमसे निवृत्त होकर तथा अतिशीघ्र प्राप्त होनेवाले अमृतकी भी उपेक्षा करके उनके अधरामृतपर ही दृष्टि डालने लगे । वे अप्सरायें शरीरधारिणी कन्दर्पराज्य-लक्ष्मीकी तरह लगती थीं, उनके उम्र, वस्त्र तथा भूषण एकसे थे, वे ऐसी लगती थीं मानो वर्षा ऋतुके बीत जानेपर मानससरोवरसे उतरती हुई हंसियाँ हों । उन अप्सराओंको देखकर चलितहृदय तपस्वीगण मन्त्रजपसे निवृत्त होकर रतिकूजितोंकी जिज्ञासा करने लगे । महर्षिगण भी पञ्चाग्नि-विद्याको

किं बहुना । श्रुतिन्यायविदोऽपि सूक्ष्मदर्शिनः, तासामालोकनमग्निष्टोमस्य, द्वारोपसर्पणं द्वादशाहस्य, गाननिषेवणं गवामयनस्य, नाट्यावलोकनं नक्षत्रसत्रस्य, वाङ्मिश्रणं वाजपेयस्य, परिष्वङ्गं पौण्डरीकस्य, वदनास्वादनं वाजिमेधस्य, दन्तक्षतं दाक्षायणयज्ञस्य, नखलेखनं नानाविधानां संस्थानां, कुचमर्दनं कुण्डपायिनामयनस्य, रशनावमर्शनं राजसूयस्य, विपरीतरतं विश्वसृजामयनस्य, चरणताडनं चान्द्रायणस्य, परिभाषणं च पराकसान्तपनयोः फलमाचक्षते ॥

सौहार्दं परमेयुषामपि तदा संनह्यतां विग्रहे
तासामेव कृते शनैः सुमनसां दैत्येश्वराणामपि ।
सद्यः क्षालयितुं विवादमनतिप्रौढं सरोजेक्षणः
संगृह्णन्नुभयानिमानभिदधे तथ्यं च पथ्यं वचः ॥१४॥

'हन्त भो देवासुराः, किमिदमजानतामिव भवतामपि वैमत्यम् ।

भूलकर पञ्चास्त्र विद्याका आदर करने लगे । अधिक कितना कहाजाय, वेद-वेदान्तके ज्ञाता सूक्ष्मदर्शीजनभी उनके दर्शनको अग्निष्टोमका, उनके दरवाजेपर आनेको द्वादशाह यज्ञका, उनके गान सुननेको गवामयन यज्ञका, उनके नृत्य-दर्शनको नक्षत्रसत्रका, उनके साथ बात करनेको वाजपेयका, उनके आलिङ्गनको पौण्डरीकका, उनके मुखचुम्बनको अश्वमेधका, उनके द्वारा किये गये दन्तक्षतको दाक्षायणयज्ञका, नखक्षतको नानाविध संस्थानोंका, कुचमर्दनको कुण्डपायी अयनका, करधनी खोलपानेको राजसूयका, विपरीत रतिको विश्वसृजामयनका, चरणताडनको चान्द्रायणव्रतका तथा कथोपकथनको पराकसान्तपनका फल कहने लगे ।

देव-दानवके बीच उस समय बड़ी मैत्री थी, परन्तु उन अप्सराओंके लिये आपसमें लड़नेकी तैयारी करने लगे, जब भगवान् कमलनयनने यह देखा तब तत्कालही उनके सद्यःप्ररूढ विवादको समाप्त कर देनेके लिये दोनों—देवों तथा दानवोंको सत्य तथा पथ्य वचन कहे ॥ १४ ॥

हे देवो तथा दानवो, आपलोग भी अनजानकी तरह आपसमें क्या मतभेद

तुल्ये परिश्रमे, तुल्ये चाभिजने, तुल्येनैव वो भवितव्यं फलेनापि तदिमाः समुद्रसंभवा अप्सरसो नाम तरुण्यः साधारण्यो भवन्तु भवताम् ॥

गजमेकमश्वमेकं गामेकां पञ्च च द्रुमान् दत्त्वा ।
संभावयत विनाशितसर्वस्वं वासवं यदि प्रीतिः ॥१५॥

इत्यभिहितमात्र एव सादरमाधाय शासनं शिरसि 'किं प्रतिब्रूमो भवच्छासने, किंतु स्वामिने किमप्यनुपहृत्य न युक्तमस्माभिरियदासेवितुं, तदग्रे यदुत्पत्स्यते तद्भवाननुमन्यतां' इति प्रार्थ्यमानः सुरासुरैरन्तरेव कृतस्मितः किंचिदन्वमन्यत रमारमणः ॥

अथ पुनरपि यावदाविलं ते
व्यधुरुदधिं विबुधाश्च दानवाश्च ।
सममखिलजनुष्मतां मनोभिः
समजनि तावदनाविला त्रिलोकी ॥ १६ ॥

कर रहे हैं ? आपने समान परिश्रम किया है, आप सभी समान हैं, फिर फल भी आप सभीको समानरूपमें मिलना चाहिये । अतः समुद्रसे निकलनेवाली युवती अप्सरायें भी आपलोगोंकी साधारण रहेंगी ।

आपलोगोंके हृदयमें यदि वस्तुतः प्रीति है, तो आप एक हाथी, एक घोड़ा, एक गाय तथा पांच वृक्ष देकर आप सर्वस्वसे वञ्चित इस विपन्न इन्द्रको सत्कृत करें ॥ १५ ॥

भगवान्के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर दानवोंने उनकी आज्ञाको सिरपर धारण किया और कहा—आपके आदेशपर हम क्या उत्तर दें, परन्तु हमारे लिये यह उचित नहीं है कि स्वामीको बिना कुछ दिये हुए हम इतनी वस्तुयें ले लें, अतः अब आगे जो निकलेगा, उसे आप स्वीकार करें । इस प्रकार देवों तथा दानवोंसे प्रार्थित हो भगवान्ने थोड़ा मुस्कुराकर अनुमति देदी

इसके बाद देवों तथा दानवोंनें जब पुनः सागरको मथकर मलिन बनाया तब समस्त प्राणियोंके हृदयोंके साथ-साथ समस्त त्रिलोकी प्रसन्न हो उठी ॥१६॥

अभ्यग्रावतरिष्यदर्णवसुताहस्ताग्रसंभावना-
संहृष्यत्कनकारविन्दकलिकासौरभ्यसारस्पृशः ।
मन्दं मन्दममन्दचन्दनकिरः पस्पन्दिरे मारुताः
कालोन्निद्रकदम्बडम्बरमभूद्येनाङ्गभङ्गं हरेः ॥ १७ ॥

ततश्च समसमयसमुन्मिषत्कनकारविन्दकाननश्रीरिव नयनानन्द-संदायिनी, समभागयोजितशरदिन्दुकन्दलबालारुणप्रविलापनचाकचक्य-लक्ष्मीरिव चमत्कारकारिणी, सागरावर्तविवरसमुत्थितफणासहस्रमणि-प्रभेव फणिराजस्य, काचन कान्तिधोरणी संमूर्च्छिता दुग्धकल्लोलेषु सन्ध्येव चन्द्रातपे, सफलीचकार कमलाक्षतां कमलाक्षस्य । तत्र च तालवृन्तचामरताम्बूलकरङ्ककनकालुकादिपरिकरपाणयो भावानुभावदेवता इव परिणताः शरीरबन्धेन शृङ्गारस्य, रम्भादिरामणीयकमात्रनिर्वर्णन-निर्वृतानि लज्जयन्त्यो नयनानि नाकसदां, प्रादुर्बभूवुरग्रतः परिवारशक्तयः

अभी निकट भविष्यमें अवतार लेनेवाली लक्ष्मी अपने हस्ताग्र भागमें ग्रहण करके आदर प्रदान करेंगी, इस खुशीसे विकसित होनेवाली कनक-कमलकी कलिकाओंकी सुगन्धसे परिपूर्ण तथा चन्दन-विन्दुओंकी वर्षा करने वाली वायु मन्द-मन्द बहने लगी, जिससे वर्षाकालमें विकसित कदम्बकी तुलनाको भगवान्के अङ्गोंने धारणकर लिया, अर्थात् शीतल वायुके संपर्कसे भगवान्का शरीर रोमाञ्चित हो गया ॥ १७ ॥

इसके बाद एक साथ विकसित होनेवाले कनक-कमलवनकी शोभाकी तरह आंखोंको आनन्दित करनेवाली, समानमात्रामें एकत्र की गई—शरद् ऋतुकी चन्द्रकला, बालसूर्यप्रभा तथा चाकचक्य-लक्ष्मीकी तरह चमत्कारकारिणी, सागरके जलराशिके घूमते रहनेसे बननेवाले विवरोंमें होकर निकलनेवाले शेषफणामणि-प्रभाके सदृश कोई प्रभाप्रवाह क्षीरसागरके तरङ्गोंपर प्रकट हुआ जो चन्द्रातपमें सन्ध्याकी तरह लगा, उसने भगवान्के नयनोंका कमलरूपत्व प्रमाणितकर दिया। ऐसी समय पङ्खा, चामर, पानके पात्र, तथा स्वर्णमय उगलदान प्रभृति साम-ग्रियोंको हाथोंमें धारण करनेवाली, शृङ्गाररसकी शरीरधारिणी भावानुभाव-देवता-ओंकी तरह लगनेवाली, लक्ष्मीकी परिवारशक्तियाँ आगे प्रकट हुईं, उन शक्तियोंने

कमलालयायाः । तदनु च परमानन्दघनीभावपरिणाममयी मातृकावर्ण-संपन्नमकुटादिचरणान्तसर्वाङ्गसुन्दरी पतिदेवता धर्मनियन्त्रणेन पतिमुख-लक्ष्यैकपातिनीभिरपि कटाक्षवृत्तिभिः परिसरनिष्यन्दमात्रपरिपोषित-जगत्त्रयी, जातजायमानजनिष्यमाणरूपापि जातरूपैकमयीव लक्ष्यमाणा, धर्ममयी धार्मिकेषु, विज्ञानमयी विप्रेषु, पराक्रममयी बाहुजेषु, संपन्मयी राजसु, साहसमयी शरारुषु, कारुण्यमयी भक्तेषु, कामकलामयी परिणे-तरि, विजयपताकिका जनार्दनस्य, जीविका मकरध्वजस्य, माता चरा-चराणां, महिषी नारायणस्य, समालक्ष्यत सौभाग्यदेवता ॥

विरहासहेव सततं विहितस्थितिराननेन्दुना सविधे ।
कुवलयवनीव रेजे कुटिला कचसंहतिस्तस्याः ॥ १८ ॥

कपोलौ निर्मातुं किल शकलमेकं हिमरुचे-
र्यदादायात्याक्षीदसममिदमस्या इति विधिः ।

रम्भा आदि अप्सराओंकी सुन्दरताको देखकर सुखी होनेवाले सुरनयनोंको लज्जित कर दिया । अनन्तर परमानन्दके घनीभावकी परिणामस्वरूपा, मातृकावर्णसे सम्पन्न, मुकुटादि, चरणान्त अङ्गोंमें सुन्दरी लक्ष्मी प्रकट हुई । वह पतिपरायणा थी, धार्मिक नियन्त्रणसे उसकी कटाक्षवृत्ति यद्यपि पतिके मुखमात्रको लक्ष्य बनाती थी, तथापि समीपदेशमें जो कटाक्षवृत्तिके अंश फैल जाते थे, उतनेसे ही जगत्त्रयका पोषण हुआ करता था । उसका सौन्दर्य जात, जायमान तथा जनिष्यमाण था (शाश्वत था) फिर भी वह जातरूपमयी—सुवर्णमयी दीख पड़ती थी, वह धार्मिकोंके प्रति धर्ममयी, ब्राह्मणोंके प्रति विज्ञानमयी, क्षत्रियोंके प्रति पराक्रममयी, राजवर्गके प्रति सम्पत्तिमयी, युद्धप्रियजनोंके प्रति साहसमयी, भक्तोंके प्रति करुणामयी, विवाह करनेवाले पतिके प्रति कामकलामयी, जनार्दनकी विजय-पताकारूपा, मकरध्वजकी जीवनदात्री, चराचरकी माता तथा नारायणकी पटरानी थी।

मुखस्वरूप चन्द्रमाके विरहको नहीं सह सकनेके कारण कुवलयवनी कुटिल कचभारके रूपमें सदा उसके मुखके पास बनी रहती है, ऐसा मालूम पड़ता था ॥ १८ ॥

इसके कपोलोंका निर्माण करनेके लिये ब्रह्माने चन्द्रमाके एक खण्डको हाथ में लिया और यह कहकर छोड़ दिया कि यह चन्द्रखण्ड इसके कपोलकी

तदासीदाश्चर्यं परममखिलानां दिविषदां
तदुत्तंसीभूतं पुरमथितुरद्यापि मकुटे ॥ १९ ॥

अपिच कमलासनपदप्रदस्य कमलोपमां मीनकेतनजनकस्य मीनसादृश्यमपि कथयितुमपत्रपन्ते कवयोऽपि तन्नयनस्य । करगतकमलं घ्राणसंसक्तं तत्रत्यमौक्तिकमिव तस्या नासामणिः परिणेमे ॥

कस्यां श्रुतावधिगता मणिकर्णिकेति
मूढात्मनां प्रलपतां मुखमुद्रणाय ।
आसीदशेषजनताभवतापहन्त्री
मातुः श्रुतावधिगता मणिकर्णिकैव ॥ २० ॥

पद्महस्तायाश्च तस्याः पाणिकमलयोर्विवेकाय कल्पितानि चिह्नतयेव कङ्कणानि प्रचकाशिरे । आजानसरलमस्या हृदयमावृण्वतोरनवशेषमेव

रचनामें लगाये जाने योग्य नहीं है । समस्त देवमण्डलीको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वही चन्द्रखण्ड अभी भी महादेवके मस्तक पर अलङ्कार बनकर वर्त्तमान है ॥ १९ ॥

कमलासन—ब्रह्माके पदको देनेवाले उनके नयनको कमलसे उपमा देने तथा मीनकेतन—कन्दर्पके जनक उसके नयनको मीनसदृश कहने में कवियोंको लाज लगती है । उसके हाथका कमल जब नासिकासे जा मिलता है तब वह नासामौक्तिककी तरह (नासामणि) प्रतीत होता है ।

मूढहृदय विवादीजन एक दूसरेको परास्त करनेके लिये पूछा करते हैं कि मणिकर्णिका किस श्रुति में वर्णित है ? अशेष जनताके सांसारिक सन्तापको दूर करनेवाली मणिकर्णिका (मणिमय कर्णभूषण) तो माता लक्ष्मीके कानोंमें ही पाई गई थी ॥ २० ॥

हाथ में कमल धारण करनेवाली लक्ष्मीके हाथ तथा कमलमें अन्तर उत्पन्न करनेके लिये कल्पित चिह्नके समान शोभित होते थे उसके हाथके कङ्कण । उसके स्तनों पर लगाये गये कुङ्कुमलेप ऐसे लगते थे मानो स्वभावसरल उसके

कुकुचकुम्भयोः कोपारुणाः कटाक्षा इव पुण्डरीकाक्षस्य कुंकुमपत्रभृ दद्दशिरे ॥

वक्त्राक्षिपाणिचरणासनधारणानि
पद्मानि यानि षडिमानि हरिप्रियायाः ।
उद्बुद्धमेकमपि तेषु किल व्यनक्ति
संसारमोहरजनीमणुमात्रशेषाम् ॥ २१ ॥

पद्मे निवेश्य परिगृह्य च पद्ममेव
या पद्मरागमखिलं स्वमुदाजहार ।
तस्याः श्रियः समुचितानि हि तन्मयानि
ताटङ्ककङ्कणमुखानि विभूषणानि ॥ २२ ॥

विहारोऽप्येतस्या विकसति सरोजे चरणयोः
प्रसूते लौहित्यं यदि चरतु सा कुत्र सुमुखी ।
इति ध्यायंध्यायं मृदुनि नवनीतादपि निजे
हृषीकेशो मेने हृदयभवने वासमुचितम् ॥ २३ ॥

हृदयको समस्तरूपमें आवृत करनेवाले कुचकुम्भों पर पड़नेवाले भगवान् पुण्डरीकाक्षके कोपारुण कटाक्ष हों ।

मुख, नयन, चरण, हाथ, आसन तथा हाथमें धारण किये गये लक्ष्मीके जो यह छः कमल हैं, उनमें एक भी यदि विकसित हो जाता है (वास्तविक रूपमें ज्ञात हो जाता है) तो संसाररूप रात्रिका अवसान हो जाता है, उसके ज्ञानमात्रसे मोक्ष सुलभ हो जाता है । ॥ २१ ॥

पद्मपर आसन लगाकर, पद्मको हाथसे ग्रहण करके, जिसने अपने हृदयमें वर्त्तमान समस्त पद्मानुरागको व्यक्त कर दिया, उचित ही है कि उस लक्ष्मीके ताटङ्क, कङ्कण प्रभृति सारे भूषण पद्मरागके ही बने हों ॥ २२ ॥

लक्ष्मीके चरण जब विकसित कमलपर सञ्चरण करते हैं तब भी उनमें लाली दौड़ जाती है, फिर वह सुमुखी लक्ष्मी संचार करे तो कहाँ करे ? इस विषय पर विचार करके भगवान् हृषीकेशने यही ठीक समझा कि मक्खनसे भी कोमल भगवान्के हृदयमें ही लक्ष्मीका वास उपयुक्त है ॥ २३ ॥

ततस्तदिङ्गितवेदिनी मङ्गलदेवता परिवृता विभूतिभिः पश्यत्सु देवासुरेषु, सहस्रादित्यवर्चसा सह कौस्तुभेन सागरादुत्तरन्ती पद्मेन सह चिन्तामणिमपि पाणिना धारयन्ती भुजाद्भुजान्तरं संक्रम्य भूभुजां कृतशिक्षेव भुजान्तरमेव भूवल्लभस्य समारुरोह ॥

दिव्या दुन्दुभयो विनेदुरभितः स्निग्धं जगुः किन्नरा
जानन्तः परदेवतां जय जयेत्यस्तावि पुस्तापसाः ।
अम्लानैर्ववृषुः सुमैः सुरभिलैराश्चर्यमेघाश्च ता-
मारूढां हृदयं हरेरपि सुरैरज्ञातमन्तःपुरम् ॥ २४ ॥
चन्द्रं चन्द्रिकयेव चण्डकिरणं दीप्त्येव शक्त्या तया
नित्याश्लिष्टमनन्ययापि मिलितं देवं तदानीमिव ।
दृग्दर्शमनिर्वृतां दशशतीमक्ष्णां किरन्पादयो-
रस्तावीत्कमलालयामभिमुखीकर्तुं पुनर्वासवः ॥ २५ ॥

इसके बाद भगवान्‌के इशारेको समझने वाली मङ्गलदेवतालक्ष्मी अपनी विभूतियोंके साथ, देवों तथा दानवोंके समक्ष, सहस्रसूर्यप्रकाश कौस्तुभके साथ समुद्रसे निकली, उसके हाथमें चिन्तामणि था, उसने सीधे भगवान्‌के भुजान्तर में प्रवेश किया, क्योंकि उसे एक राजाके भुजासे दूसरे राजाके भुजान्तरमें प्रवेश करनेकी आदत थी ।

दिव्य दुन्दुभियाँ बज उठीं, किन्नरगण मधुर गीत गाने लगे, तपस्वीगण परदेवता लक्ष्मीको जानते थे अतः 'जय जय' कहकर लक्ष्मीकी स्तुति करने लगे, आश्चर्यमेघ, सुगन्धित तथा सदाबहार फूलोंकी वृष्टि करने लगे, लक्ष्मीने देवोंके द्वारा भी अज्ञात भगवान्‌के हृदयरूप अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

जैसे चन्द्रमा चन्द्रिकासे तथा सूर्य दीप्तिसे नित्यमिलित रहते हैं उसी तरह भगवान् भी अपनी उस शक्तिसे नित्यमिलित रहते हैं, फिर भी भगवान्‌को उस अपनी अनन्य शक्तिसे उस समय मिलित देखकर इन्द्रने अपने अतृप्त हजार नयनोंको भगवान्‌के चरणोंमें लगा दिया, और उस कमलवासिनी लक्ष्मीको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये पुनः स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

भगवति जगज्जननि भक्तवत्सले, परमः पुमानपि भवत्या विनाकृतो नीहार इव भानुमान्, निदाघान्त इव चन्द्रमाः, नानन्दयामास नयनानि मादृशाम्। अधुना तु—

या त्वेषा तुलसीति वक्षसि हरेर्या कापि वन्यौषधि-
र्यश्चासौ तिलकालको बहुमतः श्रीवत्स इत्याख्यया।
हन्तासीत्तदपि द्वयं शमवतामालम्बनं ध्यायतां
चारूणामपि चारु चारुचरणन्यासेन पद्माक्षिते ॥२६॥

अपि च। यामेव भवतीमियन्तं कालमासेदुषीमरातिभवनानि मणिप्रभामिव महोरगफणागतामालक्ष्य चकितोऽस्मि तामेव सर्वलोकशरण्यस्य भगवतः सरसिजेक्षणस्य वक्षोगतामालक्ष्यच सर्वतो निर्वृतोऽस्मि॥

अज्ञानादतिलालनादपि च ते मातर्मया माद्यता
निर्माल्ये परदैवतस्य चलितं यत्किंचिदुच्छृङ्खलम्।

हे जगत्की जननि, हे भक्तकल्याणकरे, भगवति लक्ष्मि, तुमसे रहित होकर परमात्माभी पालेमें सूर्यकी तरह. वर्षा ऋतुमें चन्द्रमाकी तरह, हमारी आंखोंको आनन्दित नहीं कर रहे थे। इस समय तो—

भगवान्की छाती पर यह जो जंगली दवा तुलसी है या काले धब्बेकी तरह यह जो श्रीवत्स नामका कोई चिह्न है, यह दोनों ही योगियोंके ध्यानका आलम्बन बन गया है, रमणीयोंका भी रमणीय बन गया है, क्योंकि हे कमलनयने लक्ष्मि, तुमने अपने चरण उनपर रखे हैं ॥ २६ ॥

आप लक्ष्मी इतने दिनों तक शत्रुओंके घरमें थीं, उस समय आपको देखकर हम चकित हो उठते थे जैसे महासर्पके फणामणिकी प्रभासे कोई चकित हो उठता है। उसी लक्ष्मीको सकललोकशरण्य भगवान् कमलनयनकी छातीमें वर्तमान देखकर हमारी आंखें आज शीतल हो रही हैं।

हे मातः, अज्ञानसे तथा आपके द्वारा किये गये अतिलालनसे मत्त होकर मैंने परम दैवत शिवके निर्माल्यके प्रति जो उच्छृङ्खल व्यवहार कर दिया था,

तत्क्षन्तव्यमनन्यवेदिनि चिरापन्ने प्रपन्ने मयी-
त्याख्यान्तं मघवन्तमादिजननी दृष्ट्या दयामास सा ॥

अपि च पुनरेवंवादिनि मघवति पतन्तीं पश्यन्ती प्रसादविमलां दृशं प्राणवल्लभस्य, चिन्तानुरूपमेव तस्य, चिन्तामणिना तमाह्लादयामास । इत्थमियत्यपि चलति संविधाने, प्रव्यक्ते च पशोरपि पक्षपाते मघवति परमेश्वरस्य, मदान्धाः प्रकृत्यैव मायया च विशिष्य मोहिता महासुराः—किं गतमेतैरतिक्षुद्रैः किंचित्तु वयमनुवर्तमानाः क्षणमपहरिष्यामः सुधामित्यन्तर्निहितेन छद्मना पद्मनाभमनुरुध्यावतस्थिरे ॥

अथ मथनविषण्णदेवासुरस्तोमजीवातुभिः
श्रमशिथिलितबन्धवातंधयप्राणनाडिंधमैः ।
शिशिरितहृदया दयासारतुङ्गैरपाङ्गैः श्रियः
पुनरपि जलराशिमक्षोभयन् देवरक्षोभटाः ॥ २८ ॥

आप उसे क्षमा करें, मैंने कुछ दूसरा समझकर उस निर्माल्यका अपमान नहीं किया था, वह मेरा अविवेकमात्र था, मैं उसके चलते बहुत आपत्ति भोग चुका हूँ, मैं आपकी शरणमें हूँ, इन्द्रने जब इस प्रकार कहा तब आदिजननी लक्ष्मीने अपने कटाक्ष-निक्षेप द्वारा उनके ऊपर दया प्रकटकी ॥ २७ ॥

फिर इन्द्र जब इसप्रकार कह रहे थे तब लक्ष्मीने देखा कि भगवान् की प्रसन्नता व्यक्तकरनेवाली दृष्टि इन्द्रपर पड़ रही है, अतः भगवान् की इच्छाके अनुसार लक्ष्मीने चिन्तामणि देकर इन्द्रको प्रसन्न कर दिया ।

भगवान्का इसप्रकार इन्द्रके ऊपर पक्षपात चल रहा था जिसे पशु भी स्पष्ट समझ सकते थे तथापि स्वभावतः मदान्ध होने एवं मायासे मोहित होनेके कारण असुरोंने सोचा कि इन क्षुद्र वस्तुओं से क्या होता जाता है, कुछ देर तक हमलोग मिलकर रहें और क्षणभरमें सुधाके मिलने पर उसे छीन लें, इस प्रकार का छल हृदयमें रखकर राक्षसगण भगवान्के अनुरोधमें बने रहे ।

समुद्रमथन श्रमसे खिन्न देवों तथा दानवोंके दलको नवजीवन प्रदान करनेवाली, तथा श्रमशिथिल शरीर-बन्धनोंमें उत्साहका सञ्चार करके प्राणनाडीको उत्तेजित करनेवाली एवं दयाकी वृष्टि करनेवाली लक्ष्मीकी दृष्टियोंने देवों तथा दानवोंके हृदयोंको शीतल बना दिया, अनन्तर उन लोगोंने पुनः समुद्रको मथना प्रारम्भ किया ॥ २८ ॥

ततः संततसंतन्यमानमन्थननिर्बन्धनिर्विण्ण इव, सर्वस्वहरणसमुत्पन्नवैराग्य इव, तनयावियोगतरलान्तःकरण इव, वरुणालयः त्रिजगद्गदङ्कारबिरुदाङ्कितेन दिव्यौषधिपरिवृतेन करकमलगृहीतकनककुम्भसंभृतामृतगन्धमन्थरगन्धवहस्पन्दमात्रनियन्त्रितजरामरणक्लेशपाशेन जगदनुजिघृक्षागृहीतेन जनार्दनस्यैव मूर्तिभेदेन भगवता धन्वन्तरिणा सममाविर्भूय भूयसा भक्तिभारेण पुरुषोत्तमं प्रणिपत्य परिष्टुवन्नादाय तस्य करादमृतकलशमग्रे निवेदयन्निदमाचचक्षे—

'त्वमसि परमं ब्रह्म त्वं नाथ सर्वजनान्तर-
स्तव किमवशे रम्यं वस्तु स्थलेषु जलेषु वा ।
तव किमुपदातव्यं लक्ष्मीपतेः कृपणैर्जनै-
स्तदपि दयसे स्वामिन्नस्मासु तत्त्वनिवेदनात् ॥ २९ ॥

अपि च—

गामश्वं करिणं मणिं हिमकरं कन्यास्तरूनद्भुता-
नन्नं चामृतमन्ततस्त्रिजगतीजीवातुमेतां सुताम् ।

इसके बाद निरन्तर प्रकट किये जाने मथनाग्रहसे खिन्न, सर्वस्व हरणसे विरक्त, पुत्रीके वियोगसे विचलित हृदय-सा समुद्र, त्रिलोकीके रोगों को दूर करनेकी प्रतिष्ठासे युक्त, दिव्यौषधियोंसे घिरे, हाथमें लिये गये स्वर्ण-कलशमें निहित अमृतकी गन्धसे मन्दगति वायुके सञ्चारसे बुढ़ापे तथा मरणके क्लेशोंको नियन्त्रित करनेवाले, संसार पर कृपा करनेकी इच्छासे स्वीकृत भगवान्के स्वरूप भेद भगवान् धन्वन्तरिके साथ प्रकट हुए, श्रद्धा-भक्तिके साथ भगवान्को प्रणाम किया और धन्वन्तरिके हाथसे अमृत-कलश लेकर भगवान्के आगे रखकर इसप्रकार से कहा—

हे नाथ, आप परब्रह्म तथा सर्वान्तर्यामी हैं, जल या स्थलमें वर्त्तमान कौन-सी ऐसी वस्तु है जो आपके वशमें नहीं है, आप लक्ष्मीपति हैं, हम कृपणजन आपको कौन-सी चीज उपहारमें दे सकते हैं, तथापि तत्त्व निवेदन करनेसे आप हम पर अनुग्रह किया करते हैं ॥ २९ ॥

कामधेनु, ऐरावत, चिन्तामणि, चन्द्रमा, अप्सरायें, कल्पद्रुम, अमृत-स्वरूप

प्राणाचार्यममुं च ते चरणयोः प्राणैः समं विन्यसन्
स्वामिन् कामपि ते प्रसादकणिकां याचे दया चेन्मयि ॥'

वदति मधुरमित्थं वल्लभे वाहिनीनां
जनयितरि रमाया जातहर्षो मुकुन्दः ।
सकरुणमनुगृह्णन् सानुरागैरपाङ्गै-
रकिरदमृतवर्षैरेनमार्द्रैर्वचोभिः ॥ ३१ ॥

तदनु यथागतं गते सरस्वति, सरस्वतीरमणशतमन्युमुखा बर्हिर्मुखाः प्रतीक्षमाणा निदेशं परमेश्वरस्य परिवार्य केशवमवतस्थिरे । दानवास्तु मध्ये निधातव्यममृतकलशं मधुसूदनस्य पुरोनिहितमन्यथाशङ्कमानाः, गणयन्तः पक्षपातं गरुडध्वजस्य, चिन्तयन्तश्चिन्तामणिप्रदानं वैषम्यकारणं, आलोच्य परस्परं, आसीदन्त इव सान्त्वनाय सामाजिकानां परिवृत्य सुधाकलशं, परिगृह्णन्तः प्रहरणानि, परिमेलयन्तः स्वबान्धवान्,

---

खाद्य, और लोकत्रयको अनुप्राणित करनेवाली यह कन्या लक्ष्मी तथा प्राणाचार्य धन्वन्तरिके साथ अपने प्राणोंको आपके चरणोंमें समर्पित करते हुए हम आपकी प्रसन्नतामात्र चाहते हैं ॥ ३० ॥

लक्ष्मीके जनक नदी नायकके इस प्रकार कहने पर प्रसन्न भगवान्ने प्रेमपूर्ण दृष्टिपातसे—अमृत वर्षणसे—उनको आनन्दित करते हुए दयापूर्वक इस प्रकारके सरस वचन कहे ॥ ३१ ॥

इसके बाद समुद्रके वापस चले जाने पर ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवगण भगवान्के आदेशकी प्रतीक्षामें उनको घेरकर खड़े रहे । दैत्योंने देखा कि जिस अमृतकलशको बीचमें रखना चाहिये वह भगवान्के आगे रखा गया है, इसमें उन्हें कुछ गोलमाल मालूम पड़ा, उन्होंने सोचा कि भगवान् पक्षपात कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने चिन्तामणि इन्द्रको दे दिया है । ऐसा सोचकर उन लोगोंने एक दूसरेकी ओर देखा, सभीको सान्त्वना प्रदान करनेके लिये जरा समीप आ गये, अमृत-कलशको घेर लिया, अस्त्र थाम लिये, अपने बान्धवोंको एक

अवतारयामासुरादितः कामपि विवादकथाम् 'भगवन्तौ चक्रायुधचतुर्मुखौ कथमत्र भवितव्यं विभागेन । अथवा न पृच्छामो युवाम् ।

आमन्त्रिताः स्मो न वयं युवाभ्या-
मभ्यर्थिताः स्मो न च सान्त्ववादैः ।
अस्माभिरादौ समयं बबन्धु-
रागत्य ये तान्वयमालपामः ॥ ३२ ॥

ननु च भो भ्रातरः सुपर्वाणः, शृणुत यूयम् । अपि जानीथ समयमाचार्येण वः कृतमस्मासु ।

क्व मन्दरो महागिरिः क्व सागरो दुरुत्तरः
क्व वा स वासुकिः फणी फणीन्द्रमण्डलाग्रणीः ।
भवन्त एव साधयन्तु भावयन्तु चामृत
पिबन्तु चातिथीनिमान् सुरान्विधाय दानवाः ॥ ३३ ॥

साथ कर लिया, और प्रारम्भसे विवादकी बात करने लगे—हे ब्रह्मा तथा भगवान्, इस अमृतका बटवारा किसप्रकार होना चाहिये, अथवा हम आप दोनोंको नहीं पूछते हैं,

आप दोनोंने हमें नहीं बुलाया है, आपने मीठी बात कहकर हमें अभ्यर्थित नहीं किया है । जिन लोगोंने हमारे पास जाकर वादे किये हैं, हम उनको ही पूछ रहे हैं ॥ ३२ ॥

अजी हमारे भाई देवगण, लोग सुन लें, क्या आपके गुरुदेवने हमारे साथ क्या वादे किये हैं यह आपको मालूम है ?

कहाँ महागिरि मन्दराचल ? कहाँ यह दुस्तर सागर ? और कहाँ यह सर्पोंका अगुआ वासुकि ? आप दानवगण ही इस कार्यको सिद्ध करें, अमृत उत्पन्न करें, देवोंको भी उस अमृतके पानमें अतिथि बनावे (सामिल करें) और स्वयं अमृत पान करें ॥ ३३ ॥

किं बहुना—

शक्ता भवेम यदि किं वरयेम युष्मान्
तत्साधका मथनकर्मणि यूयमेव ।
शक्त्या यतेमहि वयं च परं तु तस्मिन्
यत्नानुरूपमितरानपि भावयध्वम् ॥ ३४ ॥

इति । तदिह भवन्त एव विदांकुर्वन्तु ।

कति भग्ना गिरिवहने कति पतिता वासुकेः समानयने ।
कति दग्धा भुजगविषैः कति भागानिह पिबेमेति ॥ ३५ ॥'

इति वदत्सु दानवेषु वाचस्पतिरिदमभाषत—

'यद्भग्नेषु भवत्सु पूर्वमनिलेनैवाद्रिराकम्पितो
यच्चापत्यकलत्रदर्शनकृते यूयं गता भूतलम् ।
यद्वा भोगिपतेः फणाग्रवहनं युष्माभिरेवार्थितं
सर्वं वेद स एष एव भवतामाचार्यपादः कविः ॥ ३६ ॥

(बृहस्पतिने कहा था कि) यदि हम स्वयं समुद्रमथन समर्थ होते तब आपसे क्यों प्रार्थना करते ? अतः समुद्र-मथनमें समर्थ आपही हैं । अमृतके लिये समुद्रमन्थनमें हमलोग भी यथाशक्ति प्रयास करेंगे, हाँ आपलोग हमारे प्रयत्नके अनुसार हमें भी फलभोगी बनावें ॥ ३४ ॥

यहाँ आप ही सोच लें—

कितने दानव मन्दारके ढोनेमें गिरे, कितने वासुकि नागके लानेमें धराशायी हुए, कितने दानव सर्पविषसे दग्ध हो गये, आपही बताइये हम ऐसी स्थितिमें अमृतके कितने भाग पियें ॥ ३५ ॥

दानवों के द्वारा इस प्रकारसे कहे जाने पर बृहस्पतिने कहा—जब आपलोग मन्दराचलको उखाड़नेमें भग्नोद्यम हो रहे थे तब वायुदेवने ही मन्दराचलको दिखाया था, आप लोग अपनी स्त्री तथा बच्चोंको देखने पाताल भी चले गये, आप लोगोंने स्वयं कहा कि वासुकि नागके फण भागको हमलोग ही पकड़ेंगे, इस समस्त कथाको आपके आचार्य शुक्र अच्छी तरह जानते हैं ॥ ३६ ॥

इत्युत्तरोत्तरयुक्तिवादिनि वाचस्पतौ, प्रतिवदति च यथाशक्ति भार्गवे, परिणमति शनैः कलहे, प्रहरणादानभीषणेषु दानवेषु, परिकरमाबध्नत्सु निर्जरेषु, चिन्तयन्मनसा चिरमाराध्य परां शक्तिं, आसाद्य तदीयमेव मोहनं रूपमतिसंधाय दानवाननुग्रहीयाममरानिति कृतनिश्चयः सद्य एव तिरोदधे सह कमलासनेन कमललोचनः। ततश्च—

दोर्भिर्दुर्भरशैलनिर्भरपरीवर्तावसीदद्बलै-
र्गात्रैरुद्भटकालकूटगरलज्वालावलीढोज्झितैः।
उत्तालैः श्वसितैरुपर्युपरि च प्राणैः प्रतिष्ठासुभिः
स्पर्धामात्रबलोत्तरा युयुधिरे देवैः समं दानवाः॥ ३७॥

भग्नरथा भग्नाश्वा भग्नबला भग्नशस्त्रास्त्राः।
निर्विद्य भुवि निषेदुः सममुभये सर्वतो भग्नाः॥ ३८॥

परिश्रान्ताश्च ते परितोऽपि चक्षुर्व्यापारयांचक्रिरे। अद्राक्षुश्च ते तत्र

बृहस्पति इस प्रकारकी युक्तियोंसे भरी बातें कहने लगे जिनका यथाशक्ति शुक्रने प्रतिवाद किया, धीरे-धीरे कलह बढ़ने लगा, अस्त्र धारण करके दानव भीषण हो उठे, देवोंने भी तैयारी करना प्रारम्भ कर दिया, तब भगवान्‌ने अपने मनमें पराशक्तिका ध्यान किया, आद्याशक्तिका मोहन रूप धारण करके देवोंपर अनुग्रह करनेके लिये राक्षसोंको ठगना स्थिर किया, और तदनुसार भगवान् ब्रह्माके साथ अन्तर्हित हो गये।

देवों तथा दानवोंके हाथ दुर्वह मन्दराचलके चलानेसे अस्तबल एवं उनके शरीर भयङ्कर कालकूटकी ज्वालासे अर्धदग्ध हो रहे थे, उनकी सांसे लम्बी-लम्बी चल रही थीं, उनके प्राण जाने पर थे, केवल स्पर्धाभावसे वह बलका प्रदर्शन करना चाहते थे, इस प्रकारसे वह देव-दानव परस्परमें लड़ रहे थे॥ ३७॥

उनके रथ टूट गये, घोड़े गिर पड़े, उनकी सैन्यशक्ति क्षीण हो गई, उनके शस्त्र-अस्त्र चुक गये, इस प्रकार चारो ओर से हताश देव-दानव खिन्न होकर पृथ्वी पर बैठ गये॥ ३८॥

थके हुए देवों तथा दानवोंने चारो ओर देखा, उन्होंने एक समस्त गुणोंसे

किंचिदपर्यायसमुन्मिषच्चम्पकबकुलहरिचन्दनतिलकमल्लिकासहकारमाधवीकरवीरवासन्तिकाकुसुमपरिमलोद्गारिमारुतानुसारिमधुकरीगानकलकलोन्मिश्रकलकण्ठकण्ठनादमेदुरं, दुरन्तविरहोदन्तदूयमानमानिनीजनावनितपल्लवशयनसमुल्लसितलताकुञ्जमञ्जुलं, वञ्जुलविटपिसंचरदलिकुलभारपराकीर्णपरागपुञ्जपिञ्जरासारसारणीसलिलपूरपूरितालवालवालपादपच्छायसुखनिषण्णकिन्नरीसंलापसमाकर्णनोल्लसितकर्णिकारकलिकानिकारमणीयं, अनतिक्रमणीयशम्बरशासनशासनचोटिकायमानपल्लवभङ्गधारणनिरातङ्कशारिकासंघकिङ्करीभूतयुवलोकलोचनानन्दनं नन्दनमिव भुवि निवेशितमखिलगुणाभिराममारामम् । तत्र च—

मन्दस्पन्दरसालसालशिखरक्रोडत्पिकश्रेणिका-
कण्ठोद्भ्रितपञ्चमध्वनिचमत्कारप्रकारस्पृशः ।
कन्दर्पाहवखिन्नकिन्नरवधूकण्ठोन्मिषत्काकली-
काकुव्याकुलिता गिरो दिविषदां जीवातवो जज्ञिरे ॥३९॥

मणीय उद्यान देखा जो एक साथ विकसित होनेवाले चम्पक, वकुल, हरिचन्दन, तिलक, मल्लिका, आम, माधवी, करवीर, वासन्ती प्रभृति पुष्पोंकी सुगन्धको लेकर आनेवाली हवाके पीछे पड़ी भ्रमरी तथा मयूरोंके गानसे मुखरित हो रहा था, जिस उद्यानका लताकुञ्ज कष्टप्रद विरहसे खिन्न मानिनी स्त्रियोंके पल्लवशयनसे युक्त था, वह उद्यान नागकेसर वृक्षपर इधर-उधर चक्कर काटने वाले भ्रमरों द्वारा बिखेरे गये पुष्परजसे पीताभ धारावाली नदीके जलसे पूरित आलवालवाले वृक्षोंकी छायामें आनन्दसे बैठी हुई किन्नरियोंके संलापको सुनकर विकसित होनेवाली कचनारकी कलियोंमें रमणीयतम हो रहा था, वह उद्यान अनुल्लङ्घनीय शासनवाले कामदेवकी आज्ञापत्रिकाके समान पल्लवोंको धारण करनेसे निर्भय होकर घूमनेवाली शारिकाओंके वशमें रहनेवाले युवकोंके लोचनको आनन्दित कर रहा था, और वह उद्यान पृथ्वीपरके नन्दनवन सा लग रहा था ।

मन्द-मन्द हिलने वाले आम्र वृक्षके शिखरों पर खेलनेवाली कोकिलमण्डलीके कण्ठोंसे निकलने वाली पञ्चम स्वरकी धुनके चमत्कारोंसे युक्त, तथा रतिक्रीडाश्रान्त किन्नरबालाओंके कण्ठोंसे निकली काकलीसे आकुल वचनावली देवोंके कण्ठोंसे निकलने लगी ॥ ३९ ॥

उपवने च तस्मिन्नुपान्तनिरूढकदलीगर्भकन्दलितहिमवालुकापराग-वालुकानुरागजनितजडिमहिमकुल्यानिपातशीतलितालवालमूलसुखशयि-तकेकिकेकानिनादमनोरमे हरिमणिहरितपरिसरधरणिनिपतदविरलबकुल-मुकुलपरिमलपरिमिलदलिकुलगरुदुपचितमरुदुपहृतकुसुमजरजोराजिनि-र्मले मूले बकुलस्य, निटिलतटनिर्माणकौतुकाविष्टनीरजसंभवापास्तशशा-ङ्कशकलानुकारिकेतकीपत्रचित्रितवेणीपदां, नभोनभस्यरजन्योः केशपक्षयोः नवनवोन्मिषद्विवादपरिहारकसीमाविभागवीथिकयेव सीमन्तरेखया पद्मरागसिन्दूरपाटलीकृतया संघटयन्तीमिव सान्ध्यरागसंपदं, किङ्करीकृ-तभुवनमण्डलेन किंचिद्घटितेन भ्रूभङ्गेन परिहरन्तीमिव प्रामादिकं भङ्गमनङ्गवीरस्य, अनासेवितमधुरैरिव अमृतैः, अनालिप्तशीतलैरिव कर्पूरपरागैः, अवतंसोत्पलमिव हस्तग्राह्यं ग्रहीतुमनुधावद्भिरनुक्षणं कर्णपथं, आक्रामद्भिरिव शनैर्मुखमण्डलं, संजीवनैर्मदनस्य, संप्रदाय-गुरुभिः शृङ्गारस्य, विलासभवनैर्विभ्रमाणां, तारुण्यचान्द्रकोल्लासितैस्त-

---

उस उद्यानमें समीपमें वर्त्तमान कदलीगर्भमें एकत्रित कर्पूर चूर्णरूप बालूकी शीतलतासे अतिशीतल जलप्रणालीके गिरनेसे शीतल आलबालोंके पास आराम से सोने वाले मयूरोंके शब्दसे रमणीय, एवं हरितवर्ण समीपस्थ पृथ्वीपर गिरने वाले बकुल कुसुमके सौरभपर आकृष्ट होकर आने वाले भ्रमरोंके पङ्खों की हवासे लाये गये पुष्परजसे निर्मल नागकेसर तरुके मूल भागमें, उन लोगोंने एक अदृष्ट-पूर्व कन्या देखी, जिसके केशपाशमें कपार बनानेके लिए उद्यत ब्रह्मा द्वारा रद्दी बनाये गये चन्द्रखण्डकी तरह लगने वाले केतकी-पत्र गुँथे हुए थे, श्रावण-भाद्रमासकी रातोंके समान उसके केशभाग थे, उनके सीमाविवादको दूर करने के लिए बनायी गयी गलीके समान थी मांग, वह मांग पद्मरागवर्ण सिन्दूरकी रेखासे युक्त होनेके कारण सान्ध्यरागकी सम्पत्तिको धारण कर रही थी। संसार को वशमें करनेवाले ईषद्वक्र भ्रूभङ्गसे वह कन्दर्पके पराजयके भयको दूर कर रही थी। अनास्वादित-माधुर्य अमृतके समान, बिना लेपके ही शीतलता प्रदान करने वाले कर्पूररागके सदृश, कर्णभूषण कमलको पकड़नेके लिए सदा कानकी ओर दौड़ते हुए से प्रतीत होने वाले, मुखमण्डल पर आक्रमण-सा करते हुए, कन्दर्प को जीवित करने वाले, शृङ्गारके उपदेशक, विभ्रमोंके आवास, तथा तारुण्य

रङ्गैरिव लावण्यसागरस्य, कटाक्षैरेव जगदाखिलं कन्दर्पनिदेशवशमापादयन्तीं, ताटङ्कमरीचिवीचिभिस्तटित्पुञ्जमिव युगपदुद्गिरन्तीं, आदिमरसाभिवर्षणाय निरन्तरपरिवहदाननसौन्दर्यनिष्यन्देनेव नासामणिना, प्रतिबिम्बितेनेव तस्य पाटलाधरपर्यस्तेन मन्दस्मितेन च मदयन्तीमिव मनांसि महायोगिनामपि, नवनवोपचीयमाननखंपचस्तनभारपरिणाहवशात्परिश्लथयन्तीमसकृदपि वेणीलतां कञ्चुकस्य, कन्दुकाघातजनितारुण्यकरपल्लवाभ्यर्णपरिभ्रमद्भ्रमरिकानुकारिणा कमलाक्षवलयेन परिभ्रमयन्तीमन्तःकरणान्यपि पश्यतां, कलमधुरगानामृतद्रवीभूतपर्यन्तमणिकुट्टिमपतनसंभावितामार्द्रतां परिहर्तुं कन्दुकस्य चलन्तीमितस्ततोऽपि, चरणतलरणितमञ्जीरशिञ्जानुविद्धेन काञ्चीकलकलेन घोषयन्तीमिव वीरघोषणां कन्दर्पस्य, विद्युतमिव विश्रमितुमागतां, सालभञ्जिकामिव संचारशालिनीं, रत्नशलाकिकामिव लब्धजीविकां, शारदचन्द्रिकामिव संपन्नविग्रहां, सौन्दर्यसंपदमिव सान्द्रीभूतां, साम्राज्यदेवतामिव तारुण्यस्य, संप्रदायविद्यामिव मदनागमस्य, कामप्यदृष्टचरीं कन्यकामुपलेभिरे ॥

चन्द्रिकासे बढ़ी हुई, लावण्यसागरकी तरङ्गोंके सदृश कटाक्षोंसे वह जगत्को कामदेवके वशमें कर रही थी। वह ताटङ्ककी कान्तिसे एक साथ बहुत-सी बिजलियाँ चमका रही थी। उसके नाकमें वर्त्तमान नासामणि ऐसा लगता था मानो शृङ्गाररसकी वृष्टिके लिए निरन्तर प्रवाहशील सौन्दर्यकी धार हो। रक्तवर्ण ओठ पर प्रतिबिम्बित हाससे वह महायोगिओंके हृदयोंको भी मदमत्त कर रही थी, नव-नवरूपमें बढ़ने वाले कठोर स्तनोंकी विशालताके कारण वह स्तनावरणकी वेणीलताको शिथिल बना रही थी, कन्दुकक्रीड़ाके श्रमसे रक्तवर्ण कर पल्लवके समीप घूमने वाली भ्रमरीकी तरह लगने वाले कमलाक्षकी मालाके साथ वह देखने वालोंके हृदयोंको भी घुमा रही थी। मधुर गानके रससे गीली मणिमयभूमिमें गिरनेसे उत्पन्न गेंदकी आर्द्रताको दूरकरनेके लिए वह उसे इधर-उधर चला रही थी। चरणोंमें वर्त्तमान मञ्जीरके शब्दसे मिलित काञ्ची-शब्दसे वह कन्दर्पकी वीरघोषणा सुना रही थी। वह ऐसी लगती थी मानो घूमने आयी हुई बिजली हो, सञ्चरणशील कठपुतली हो, रत्ननिर्मित मूर्ति सजीव हो उठी हो, देहधारिणी चाँदनी हो, घनीभूत सौन्दर्य-सम्पत्ति हो, तारुण्यकी साम्राज्य देवता हो या कामशास्त्रकी सम्प्रदाय विद्या हो।

सायोन्मिषत्कुवलयोदरसोदराणि
सा यत्र यत्र विचकार विलोचनानि ।
आविर्बभूवुरवशादिव तत्र तत्र
सज्जीकृतैक्षवशरासभुजा मनोजाः ॥ ४० ॥
कटाक्षैः कन्दर्पज्वरजनितमोहान्धतमस-
प्रतापव्यापन्नत्रिजगदगदङ्कारविरुदैः ।
प्रगल्भैश्चालापैः परिमृदितकर्पूरशिशिरै-
र्द्रवीभूतं जज्ञे सलिलमिव विश्वं मृगदृशः ॥ ४१ ॥
दिशि दिशि विकिरन्ती दीर्घदीर्घानपाङ्गान्
करसरसिजघातैः कन्दुकं नर्तयन्ती ।
तटिदिव जलदेभ्यो विच्युता सा सुराणां
सविधमवजगाहे शाम्बरी शम्बरारेः ॥ ४२ ॥
भ्रामं भ्रामं करकिसलयं कन्दुके पातयन्ती
स्रस्तं स्रस्तं कुचकलशयोरर्पयन्त्युत्तरीयम् ।

वह सुन्दरी सन्ध्या समयमें विकसित-कुवलयके सदृश अपने नयन जिधर फेरती थी, उधर परवशसे होकर धनुषबाणधारी कन्दर्प प्रकट हुआ करते थे ॥४०॥

काम-सन्तापसे उत्पन्न मोहान्धकारसे पीड़ित लोकत्रयको नैरुज्यप्रदान करनेमें यशस्वी तथा चूर्णीकृत कर्पूरकी तरह शीतल प्रगल्भ वार्त्तालापसे उस मृगनयनीने विश्वको जलकी तरह द्रुत बना दिया ॥ ४१ ॥

महादेवकी वह मोहिनीमाया दिशाओंमें विशाल नयनोंका निक्षेप करती तथा करकमलके आघातोंसे कन्दुकको नचाती हुई मेघसे निकली बिजलीकी तरह देवों के पास पहुँची ॥ ४२ ॥

हाथको घुमा-घुमाकर—कन्दुक पर गिराती, बारबार खिसकने वाले उत्तरीय वस्त्रको स्तनों पर रखती तथा मनोहर स्वरमें कुछ गाती हुई वह मृगनयनी कुछ

उद्वायन्ती किमपि किमपि स्वैरमुत्कूलरागं
चित्रन्यस्तं कुलमकृत सा दारुणं दानवानाम् ॥ ४३ ॥
स्वच्छन्दप्रचलत्सुधार्णवसुधाकल्लोलवल्लोलया
संदृष्टाः शुभया दृशा सुमनसो धन्या जनन्या तया ।
पञ्चब्रह्मविनिर्मितासनपरब्रह्माङ्कपर्यङ्किनीं
पञ्चाम्नायशिरोगतां बुबुधिरे तां ते परां देवताम् ॥४४॥

पश्यन्तश्च तां परिसर एव चरन्तीं प्राणशक्तिमिव पञ्चशरस्य, भाग्यदेवतामिव शृङ्गाररसस्य, बालिकामुपेक्षितुं सुधाकलशमुदासितुं च तस्यामपारयन्तः क्षणमनुबभूवुः संशयान्दोलनं यावदसुरवराः—

तावद्धावत्कन्दुकग्राहमोह-
व्याजात्प्राप्ता मध्यमेषां द्वयेषाम् ।
सिञ्चन्तीव व्याजहारामृतौघैः
शस्त्राशस्त्रिक्लेशितान्यङ्गकानि ॥ ४५ ॥

ऐसा व्यापार करने लगी जिससे दानवोंका वह भयङ्करदल चित्रलिखित-सा हो उठा ॥ ४३ ॥

स्वच्छन्द भावसे प्रवाहशील सुधासागरकी तरङ्गोंके सदृश कल्याणमय-दृष्टिसे उस जगन्माता द्वारा अवलोकित होकर देवगण धन्य हो उठे । देवोंने उस जगन्माताको पाँच ब्रह्मोंके ऊपर रहने वाले परब्रह्मके अङ्कमें रहने वाली तथा पाँच प्रकारके वेदों द्वारा प्रतिपाद्य परदेवता समझा ॥ ४४ ॥

उस जगन्माताको देखते हुए दानवगणने उसे समीपमें सञ्चरणशील कामदेवकी प्राणशक्ति समझा । दानवोंकी दृष्टिमें वह शृङ्गाररसकी भाग्यदेवता प्रतीत हुई । वे उस बालिकाकी उपेक्षा करें या उसके हाथोंमें अमृतकलशको डालकर उदासीन बन जायें इस विषयमें संदेह दोलारूढसे हो गये ।

इसी समय वह सुन्दरी दौड़ते हुए कन्दुकको पकड़नेके व्याजसे देवों तथा दानवोंके बीचमें चली आयी । वह सुन्दरी उस समयमें युद्धमें शस्त्रप्रहारसे क्षत-विक्षत देवों तथा दानवोंके अङ्गोंको अमृतसे सींचतीसी कहने लगी ॥ ४५ ॥

'के यूयमाधिकारिका इव विगृह्णन्त इव विषण्णा इव संरम्भमात्र शेषा इव च लक्ष्यध्वे। किंकारणं विस्रब्धविहारिणीनां बालिकाः विहारवनोपकण्ठमसृग्वसामांसकर्दमैरभिपूरयथ, इति। आकर्ण्य च तां गिरमतिभूमिं मनोरथानां, अभ्यर्हितामृतादपि दानवा इदमूचिरे—

'निर्वासिता निजपदात् त्रिदिवौकसोऽमी
प्राप्ता वयं भुजबलेन पदं मघोनः।
सर्वेऽप्यमी सुमुखि दानवदैत्यसंघाः
सत्यं वदेम तव संप्रति किंकराः स्मः॥ ४६॥

किं बहुना।

त्वं नो राज्यं त्वं बलं त्वं धनानि
त्वं नः प्राणास्त्वं भवस्यन्तरात्मा।
त्वद्दासाः स्मस्त्वत्कटाक्षप्रतीक्षा-
स्त्वं यद् ब्रूयास्तत्प्रमाणं परं नः॥ ४७॥'

आप लोग कौन हैं? आप लोग अधिकारके लिए झगड़ते हुए विषादग्रस्त तथा प्रयासमात्रावशेष मालूम पड़ रहे हैं। आप लोग क्यों यथेच्छ विहार-परायण बालिकाओंके विहारवन-प्रान्तको चर्बी, मांस तथा रक्तकी कींचसे दूषित कर रहे हैं?

मनोरथोंकी पराकाष्ठापर पहुँची तथा अमृतसे भी मधुर उसकी बातें सुनकर दानवोंने कहा—

यह देव हैं जो अपने पदसे हटा दिये गये हैं, हम दानव हैं जिन्होंने अपने बाहुबलसे इन्द्रके पदको प्राप्त किया है। हम देव तथा दानवों का यह समुदाय इस समय आपके दास हो रहे हैं, यह हम सत्य कह रहे हैं॥ ४६॥

तुम ही हमारा राज्य, बल, धन, प्राण, तथा अन्तरात्मा हो, हम तुम्हारे कटाक्षकी प्रतीक्षा करनेवाले तुम्हारे दास हैं, तुम जो कहोगी हमारे लिये वही प्रमाण होगा॥ ४७॥

इति निःशेषनिवेदितात्मसु दानवेषु, किं करिष्यति किं वक्ष्यतीति कृतसंशयेषु दिक्पालेषु, मन्दस्मितसुन्दरमिदमाह महामाया 'हन्त कथमभिज्ञाततत्त्वा अपि भवन्तः पौरोगवा इव पाकशेषेषु कलशामृते कलहायन्ते । तदलमुपविशत यूयमुभयेऽपि वीथीभूय, प्रदास्याम्यहमेव भवतामिदं कलशामृतम् । तत्र च प्रथममिमानन्नार्थिनः पदभ्रष्टानग्रभिक्षया परिविष्य, पात्रेणैव भवत्सपतिष्टे' इति । ततश्च साधु साध्वित्युपलालयन्तस्तदीयं वचनं, द्वेधा पङ्क्तीभूय, देवासुराः प्रथममेव संतर्पिता वागमृतैः, प्रतीक्षांचक्रिरे परिवेष्यमाणं कलशामृतम् । ततश्च सा संनिहितसखीकरन्यस्तकन्दुका ससंभ्रमोपनतचेटीजनामृष्टमुखमण्डला प्रत्यग्रकर्पूरपरागपरिधौतकरपल्लवा भ्रूभङ्गचोदितभुजिष्याजनोपहृतममृतकलशमादाय भुवनत्राणबद्धकङ्कणेन सव्येन पाणिना, दर्वीकरशिरोरत्ननिर्मितां दर्वीमनुगृह्णती दक्षिणेन करेण, नीवीपदनिगूहितोत्तरासङ्गपल्लवा, वेणीदृढग्रन्थितविस्रंसमानकुसुमदाममनोहरा, निस्तरङ्गमिव सागरं,

---

इस प्रकार दानवोंने आत्म-निवेदन किया, दिक्पाल संशयग्रस्त हो उठे कि न जाने यह क्या करेगी ? क्या कहेगा ? तब महामायाने मुस्कुरा कर कहा— हाय, जैसे कुत्ते जूठनके लिये झगड़ते हैं उस तरह आप लोग क्यों इस अमृतकलशके लिये झगड़ रहे हैं जब कि तत्त्व आपको ज्ञात है । अतः झगड़ना व्यर्थ है, आप लोग दो पंक्तियोंमें बैठ जाइये । मैं स्वयं आप लोगोंके बीच इस कलशामृत का वितरण किये दे रही हूँ । पहले मैं इन पदभ्रष्ट तथा अन्नप्रार्थी देवोंके बीच अग्रभिक्षा दे देती हूँ, फिर पूरे पात्रके साथ आप लोगोंकी मण्डली में उपस्थित हो रही हूँ । इसके बाद उसके वचनरूप अमृतसे तृप्त देव तथा दानव 'ठीक है' 'ठीक है' इत्यादि शब्दों द्वारा उसकी बातका अभिनन्दन करके दोपंक्तियोंमें बैठकर परोसे जानेवाले अमृतकी प्रतीक्षा करने लगे । उस सुन्दरीने समीपस्थित सखीके हाथमें अपना कन्दुक रख दिया, झटसे आकर दासीने उसका मुख पोंछ दिया, ताजे कर्पूरचूर्णसे उसने हाथ पवित्र किया, तदनन्तर भ्रूभङ्गके इशारेसे प्रेरित दासी द्वारा लाये गये अमृतकलशको संसारकी रक्षा करने के लिये बद्धकङ्कण वामहस्तसे पकड़कर नागमणिसे निर्मित कलछीको दाहने हाथसे लेकर, चादरकी छोरको कमरमें खोंसकर, केशपाशसे गिरते हुए फूलोंको अच्छी तरह दृढ़करके, निस्तरङ्ग सागर तथा शान्त मेघमण्डलके

निस्तनितमिव संवर्तमेघमण्डलं, निखिलमपि देवासुरबलं नियमयन्ती कटाक्षेणैव, यदा कश्चिदत्र करं प्रसारयति, कश्चिदुपमन्त्रयते रहसि, कश्चिदुच्चैः प्रलपति, कश्चित् त्वरते, कश्चिद्वा प्रतिब्रूते, तदा तिरोभवेयमिति प्रतिज्ञयैव परित्रासयन्ती, संमुखीभूय देवपङ्क्तौ संननाह परदेवता ॥

प्रत्यासन्नसखीवितीर्णमुकुलद्वीटीदलग्राहिणा
सव्येनादधती करेण मृदुना दर्वीं मणीनिर्मिताम् ।
कुर्वाणा करपल्लवे तदितरे कुम्भं सुधापूरितं
चिद्रूपा परमा कला पुरभिदश्चित्ते ममास्ते तु सा ॥४८॥

आनम्य किंचिदवमुच्य षिधानपात्र-
मादाय रत्नकलशादमृतं समग्रम् ।
दर्व्या मणीखचितया ददती सुरेषु
दिव्या कला भुवि चचार तडिल्लतेव ॥ ४९ ॥

समान लगनेवाले समस्त देव-दानव-सैन्यको कटाक्ष द्वारा नियन्त्रणमें रखती हुई वह सुन्दरी कहने लगी कि आप लोगोंमें से कोई भी यदि हाथ फैलायेगा, आपसमें कानाफूसी करेगा, जोरसे बोलेगा, जल्दी करेगा, या प्रत्युत्तर देगा तो मैं अन्तर्हित हो जाऊँगी। उसकी इस प्रतिज्ञासे ही सभी भयभीत हो गये, देवों की पंक्तिके सामने आकर वह परादेवता अमृत-वितरणकी तैयारी करने लगी।

समीपस्थित सखी द्वारा दिये गये पानके बीड़ेको ग्रहण करनेवाले बायें हाथमें मणिकलछीको पकड़कर दाहिने हाथमें अमृतपूर्ण घटको लिये हुए वह ज्ञानमयी शिवकी आद्या शक्ति हमारे हृदयमें वास करे ॥ ४८ ॥

महाशिवकी उस आद्या शक्तिने थोड़ा झुककर कलशका ढक्कन हटाकर रत्नकलशसे समस्त अमृत निकाल लिया, और उस मणिनिर्मित कलछीसे देवोंके बीच अमृतका वितरण करती हुई वह शिवकी आद्या शक्ति पृथ्वीपर बिजलीकी तरह संचार करने लगी ॥ ४९ ॥

मात्रार्पितं गरलमप्यमृतं शिशूना-
मित्यामनन्ति यदिदं विशदं तदासीत् ।
दर्वीकरत्वमपि सा दधती यदित्थं
दिव्यं ददावमृतमेव शिशुष्वमीषु ॥ ५० ॥

चरन्त्याः स्वच्छन्दं चरणतलमञ्जीररणितैः
कलस्निग्धामन्द्रैर्घनजघनकाञ्चीकलकलैः ।
कदाचित्पश्यन्त्या वलितमुखमस्याः परिजनं
कटाक्षैरप्यासीत्सुखितमखिलं दानवकुलम् ॥ ५१ ॥

ददाना च सा देवेषु दयारसमिव सुधारसं, दैतेयावुभौ राहुकेतू नाम देवपंक्त्युपवेशिनौ भुजगवपुषौ पीतामृतावेव चन्द्रार्कसूचितौ दर्वीकाण्डेन विदारयामास कण्ठपदे ।

माता द्वारा दिया गया विष भी बच्चोंके लिये अमृत हो जाता है यह बात उस समय सिद्ध हो गई, उसके हाथमें दर्वी (कलछी) थी (दर्वीकरत्व—सर्परूपता तथा कलछीका हाथमें लेना) फिर भी उसने शिशुरूप देवोंको अमृत ही प्रदान किया ॥ ५० ॥

स्वच्छन्द भावसे सञ्चरण करनेवाली उस सुन्दरीके चरणस्थित मञ्जीर शब्दसे तथा मधुर गंभीर काञ्चीकलकलसे और तिरछी चितवनके द्वारा अपनी सखियोंकी ओर देखनेके समय सरल कटाक्ष-निक्षेपसे समस्त दैत्यसमुदाय अतिप्रसन्न हो उठा ॥ ५१ ॥

वह जब दयारसके समान सुधारस देवोंके बीचमें बाँट रही थी तब राहु तथा केतु नामके दो दैत्य देवपंक्तियोंमें बैठ गये, सर्पका रूप धारण कर लिया, अमृत पी लिया, तब चन्द्रमा तथा सूर्यने उनके दैत्य होनेकी सूचना उस सुन्दरीको दी, उसने तत्काल कलछीके दण्डसे उनका गला काट दिया ।

अन्तर्निगीर्णममृतं प्रथमं हि येन
तस्यासुरस्य तदशिष्यत भोगमात्रम् ।
यस्यामृतं वदन एव धृतं स राहु-
रद्यापि पर्यवसितः फणमात्रशेषः ॥ ५२ ॥
यद् दृष्टं चन्द्रसूर्याभ्यां तद् दृष्टं निजया दृशा ।
क्षन्तुं शशाक तेनैषा मन्तुं न खलयोस्तयोः ॥ ५३ ॥

अनुगृह्य त्थममरानामृष्टोदरं सुधाकलशमन्तर्निहितदर्वीझणझणत्कार मौखर्यपूरितमग्रे निधाय दानवानामपेक्षमाणेव क्षणं विश्रममासांचक्रे तदनु सुधापानलब्धबलाः सुपर्वाणः परिगलितशङ्कातङ्काः प्रत्यक्षमेव त प्रस्तोतुमारेभिरे ॥

'वन्दामहे कमलनाभमनन्तमाद्यं
वन्दामहे भुवनमोहनशक्तिमैशीम् ।

केतु नामक जिस दैत्यने अमृत उदरस्थ कर लिया था उसका शरीरमात्र शेष रह गया (गला कट गया) और जिस राहु नामक दैत्यने अमृत मुखमें ही रखा था—पी नहीं लिया था—उसका मस्तकमात्र आज भी शेष रह गया है ॥ ५२ ॥

सूर्य तथा चन्द्रमाने जो देखा था वही बात उस सुन्दरीने अपनी आँखोंसे भी देखी अतः वह सुन्दरी उन दुष्टोंके अपराधको क्षमा नहीं कर सकी ॥ ५३ ॥

इस तरह देवोंपर अनुग्रह करके खाली अमृत-कलशमें कलछी डालकर उसे झनझनाहटसे पूर्ण करके आगे में रख लिया, और वह सुन्दरी किसी वस्तुकी अपेक्षासी करती हुई कुछ देर तक विश्राम करती रही। इसके बाद अमृत पीनेसे प्राप्तबल देवगण समस्त आशङ्कायें तथा भयोंसे मुक्त होकर प्रत्यक्षरूपमें उस आद्याशक्तिकी स्तुति करने लगे ॥

अनन्त तथा समस्त जगत्के आदि कारण—ईशकी तथा उनकी भुवन

वन्दामहे तदुभयाद्वयवादमूल-
मानीलकण्ठमवतंसितचन्द्ररेखम् ॥ ५४ ॥
निरातङ्क स्वामिन् निरुपधिदयासार भगवन्
प्रपन्नानुग्राहिन् परमपुरुष त्वत्करुणया ।
जिताः क्षुद्रा दैत्या जितमखिलमेतत् त्रिभुवनं
कृतं कर्तव्यं नः किमिव करणीयं पुनरितः ॥ ५५ ॥
आनीलकेशमरविन्ददलायताक्ष-
माविष्कृतस्मितमपारकृपानिधानम् ।
कूलंकषस्तनतटार्पितकुंकुमाङ्कं
शार्ङ्गिन्निदं शरणयेम तवाद्यरूपम् ॥ ५६ ॥
उल्लङ्घ्य निर्माल्यमुदासितं य-
दजानतानेन पदे भवत्याः ।
तत्स्वामिनि स्वामिनि वासवे नः
क्षन्तव्यमित्येव निवेदयामः ॥ ५७ ॥'

मोहन शक्तिकी मैं वन्दना करता हूँ । उन दोनोंके अभेदको प्रकट करनेवाले नीलकण्ठ चन्द्रशेखरकी भी वन्दना करता हूँ ॥ ५४ ॥

हे निरातङ्क, निष्कारण दयासागर, स्वामिन्, शरणागत-वत्सल, परमपुरुष, आपकी दयासे हमने क्षुद्र दैत्यों पर विजय प्राप्त कर ली है, इस समस्त त्रिभुवन को भी जीत लिया है, हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया है, इसके आगे हमें क्या करना है ? ॥ ५५ ॥

हे शार्ङ्गधर, हम काले केशसे युक्त, कमलदलके समान विशाल नयन, ईषद्हाससे पूर्ण, अपार दयासागर, विशालस्तनों पर कुङ्कुमलेपसे भूषित आपके इस आदिरूपकी शरणमें हैं ॥ ५६ ॥

हे स्वामिनि, निर्माल्यका लङ्घन करके अज्ञानवश इस जनने आपके चरणों के प्रति उदासीनता प्रकटकी थी, हमारे स्वामी इन्द्रके उस अपराधकी क्षमा करें, हमारा यही आपके चरणोंमें निवेदन है ॥ ५७ ॥

इति स्तूयमानैव सा सुपर्वभिः, इदं किमापतितमियं का तरुणीति शङ्काकलङ्कितैरालोक्य रिक्तममृतभाजनमाविष्कृतमहारोषपरुषैरसुरैः संनह्यमानेव युद्धाय सद्य एव शङ्खचक्रगदाखड्गसरसीरुहलाञ्छितमसुरलोकभयंकरमाबभार रूपं नारायणी। 'भो भो महेन्द्रप्रमुखा देवाः, मशकानिवैतानुत्सार्य दानवान्, मन्दरं यथापुरं प्रतिष्ठाप्य, वासुकिं विसृज्य, विरूपाक्षमभिप्रसाद्य, लब्धानुज्ञाः सुखं पालयत स्वाराज्यं' इत्यनुगृह्य देवानन्तर्दधे सह चतुर्मुखेन शार्ङ्गधरः॥

तिरोभूते सद्यस्त्रिभुवनगुरौ स्वामिनि हरौ
विषोदन्तो दैत्या विबुधगुरुमानम्य शतशः।
अयाचन्त स्थातुं निभृतमभयं भोगिभुवने
तथेति स्वीचक्रुस्तदपि विबुधा देशिकगिरा॥ ५८॥

अथ पुनरन्तर्निगूढमत्सरानप्यभिनीतमहाविनयान्, अपनीतविषा-

इस प्रकारसे देवगण द्वारा स्तुतिकी जा रही थी, उसी समय असुरोंने देखा कि यह क्या हो गया? यह तरुणी कौन है? इस तरहकी शङ्कासे युक्त असुरोंने जब अमृतपात्रको खाली देखा तब उन्हें क्रोध हुआ। उनके क्रोधको देखकर वह नारायणी सुन्दरी युद्धके लिए तैयार-सी हो गयी और उसने शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग, कमल आदिसे युक्त असुरलोकभयङ्कर रूप धारण किया।

हे इन्द्र आदि देवगण, इन दानवोंको आप कीटकी तरह निष्कासित कर दें, मन्दराचलको पहलेकी तरह रख दें, वासुकिको विसर्जित कर दें, शिवको प्रसन्न करके उनके आदेशसे पहले की तरह स्वर्गका शासन करें। इस प्रकार देवोंको अनुगृहीत करके भगवान् विष्णु ब्रह्माके साथ अन्तर्हित हो गये।

त्रिभुवनजनक स्वामी भगवान्के अन्तर्हित हो जाने पर खिन्नहृदय दैत्योंने देवगुरुके चरणोंमें शतशः प्रणाम करके शान्तभावसे पातालमें अपने रहनेके लिए प्रार्थनाकी, गुरुदेवके कहने पर देवोंने असुरोंके पातालमें रहनेकी स्वीकृति दे दी॥ ५८॥

इसके बाद असुरोंने नम्रता धारण कर ली, यद्यपि उनके हृदयोंमें द्वेष भरा

निव महोरगानसुरान्विसृज्य सुधारसास्वादसुहिततया कन्दुकमिव मन्दरं करतलेन धारयन्तः, प्रशंसन्तो वासुकिं भवत्प्रसादेन वयममर्त्या अभूमेति, परिरभ्य निर्भरं, प्रस्थाप्य रसातलं, उपनिवेशयन्तो यथापुरं मन्दरं, उपतस्थिरे चन्द्रशेखरम् ॥

'क्षमेथाः श्रीकण्ठ प्रचलनमिदं मन्दरगिरेः
क्षमेथाः काकोलं कवलयितुमाशासनमपि ।
क्षमेथा यत्पूजास्वपचरितमासीदहरहः
प्रपन्नास्त्वामेकं शरणमशरण्या वयममी ॥ ५९ ॥

अक्ष्णोः पुष्पवतोरेकमर्पयन्नीश ते पदे ।
चक्षुषी पुण्डरीकाभे चतुरोऽलभताच्युतः ॥ ६० ॥

देवानामपि दुर्लभं पदमिदं लब्धं मयोपायतो
द्वित्रैर्बिल्वदलैः प्रतार्य शिवमित्येवं जनो मन्यते ।

था, उनका रूप विषरहित सर्पोंकी तरह हो रहा था, देवोंने उन्हें विदा कर दिया, अमृत पीनेके कारण तृप्त देवोंने मन्दराचलको कन्दुककी तरह हाथोंसे धारण किया, यह कहकर वासुकिकी प्रशंसाकी कि—आपकी कृपासे ही आज हम अमर हो सके हैं, गाढालिङ्गन कर देवोंने वासुकिनागको पाताल भेज दिया, मन्दरको यथास्थान बैठा दिया, और शिवकी स्तुति करने लगे ।

हे श्रीकण्ठ, आप कृपया मन्दराचलके इस प्रचलनको क्षमा करें, विषको कवल बनानेके लिए आपसे जो प्रार्थना की गयी थी उसे भी क्षमा करें, प्रतिदिन आपकी पूजामें जो त्रुटियाँ होती रही हैं उसे भी क्षमा करें, हम सभी आज अशरण होकर आपके शरणमें हैं ॥ ५९ ॥

हे ईश, सूर्यचन्द्ररूप अपने दो नयनोंमेंसे एक नयनको आपके चरणोंमें अर्पित करके चतुर अच्युतने कमलतुल्य नयन प्राप्त किये ॥ ६० ॥

लोग समझते हैं कि दो-चार बिल्वपत्रोंसे शिवजीको ठगकर हम देवदुर्लभ पद प्राप्त कर लेते हैं, और हे स्वामिन्, आप समझते हैं कि मेरे भक्तोंके चरण-

मद्भक्तांघ्रिरजःस्पृशोऽपि सुलभं क्षुद्रं पदं वेधसो
दत्त्वा सेवक एव वञ्चित इति स्वामिन् भवान्मन्यते ॥६१॥'

इति स्तुवन्तो विबुधाः, 'प्रसन्नाः स्मो युष्मासु, परिपालयत यथापुरं स्वाराज्यं' इति प्रसन्नगम्भीरामाकर्ण्य पारमेश्वरीं गिरमाकाशसंभवां, परमानन्दनिर्भराः प्राक्प्रस्थापितेन गुरुणा सज्जीकृतां, परित्यक्तामसुरैः, प्रसावितां विश्वकर्मणा, परितोऽप्यभिनवामिव सर्वसौभाग्यवतीममरावतीमासाद्य, प्रणम्य वाचस्पतिं, प्रसाद्य यथोचितं महर्षिगणान्, परिरभ्य परस्परं, प्रतिष्ठाप्य सिंहासने शतक्रतुं, आदिष्टानि तेन स्वानि स्वानि स्थानानि यथापुरममराः परिपालयांचक्रिरे ॥

अर्चन्तस्तरुणेन्दुचूडमसकृत्संकीर्तयन्तो हरिं
ध्यायन्तस्त्रिजगद्विमोहजननीं शक्तिं परां शांभवीम् ।
आज्ञां मूर्धनि बिभ्रतः सुरगुरोरानन्दयन्तो मुनीन्
स्वच्छन्दं त्रिदिवौकसो बुभुजिरे स्वाराज्यमव्याहतम् ॥६२॥

रजको छूनेवालोंके लिए भी ब्रह्माका पद सुलभ है, ऐसी स्थितिमें यदि—मेरे भक्तोंको मैंने देवपद प्रदान किया तो मैंने ही उन्हें ठग लिया ॥ ६१ ॥

इस प्रकार से स्तुति करते हुए जब परमेश्वरकी यह आकाशवाणी सुनी कि—"हम आप पर प्रसन्न हैं, आप लोग पूर्ववत् स्वर्गकी रक्षा किया करें" तब वे आनन्दमग्न हो उठे। बृहस्पतिको पहले ही भेजकर सजाई गई, असुरोंसे त्यक्त, देवपुरीको विश्वकर्माने सभी तरह सजाकर नवीन बना दिया, तब देवगण देवपुरी में आये, बृहस्पतिको प्रणाम किया, महर्षियोंका यथोचित आदर किया, एक दूसरेके गले लगे, इन्द्रको सिंहासन पर बैठाया, और अपने-अपने पदका कार्य प्रारम्भ किया।

बालचन्द्रशेखर शिवकी पूजा, हरिका कीर्त्तन, तथा जगन्मोहिनी शाम्भवी शक्तिका ध्यान करते हुए देवगणने देवगुरु बृहस्पतिकी आज्ञा मस्तक पर रखकर स्वच्छन्द तथा अप्रतिहत भावसे स्वर्गका उपभोग किया ॥ ६२ ॥

वाचं व्याकुरुते चिरंतनगिरं मीमांसते चोभयीं
पान्थः काव्यपथेषु पादकमले सक्तः पुरारेरिति ।
मामेतत्कथयिष्यतीति रचितं काव्यं मया तत्पुन-
स्तावद्द्रक्ष्यति वा न वा तदुपरि न्यस्तः समस्तो भरः ॥६३॥

शिवार्पणम् ।

इति श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमतप्रतिष्ठापनाचार्यचतुरधिकशतप्रबन्ध-निर्वाहकश्रीमन्महाव्रतयाजिश्रीमदप्पयदीक्षितसोदर्यश्रीमदाचार्यदीक्षितपौत्रेण नारायणदीक्षितात्मजेन श्रीभूमिदेवीगर्भसंभवेन श्रीनीलकण्ठ-दीक्षितेन विरचिते श्रीनीलकण्ठविजये चम्पूकाव्ये पञ्चम आश्वासः ।

जो वेदवाणीकी व्याख्या करते हैं, उत्तर-पूर्वभेदसे दो प्रकारकी मीमांसाओं की व्याख्या करते हैं, जो काव्यपथके पथिक तथा शिवके चरणकमलमें आश्रित हैं वह मुझे ऐसा करनेको कहेंगे इसीलिए मैंने यह काव्य बनाया है, यह काव्य उनकी दृष्टिमें उपयुक्त हुआ या नहीं, इसका समस्त भार मैंने उनके ही ऊपर डाल दिया है ॥ ६३ ॥

पं० श्री रामचन्द्र मिश्र कृत नीलकण्ठविजयचम्पूकी
हिन्दी व्याख्या समाप्त

समाप्ताश्चाऽयं ग्रन्थः

परिशिष्टम्

१—'ऊहेन दानव पदानि' १।५०

ऊहो नाम प्रकृतावन्यथा दृष्टस्य मन्त्रस्य विकृतावन्यथाभावः। यथा प्रकृतावाग्नेयचरुनिर्वापे विनियुक्तस्य' 'अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति मन्त्रस्य विकृतौ सूर्यचरौ 'सूर्याय त्वा जुष्टं निर्वपामि इत्यूहः। एवम् 'इन्द्राय स्वाहा' 'वरुणाय स्वाहा' 'प्रजापतये स्वाहा' इत्यादि मन्त्राणां 'हिरण्याक्षाय स्वाहा' 'वलये स्वाहा' 'नमुचये स्वाहा' इत्यादि विपरिणामेन ब्रह्मर्षिभिरूहः कृत इति वक्तव्यार्थः।

२—'आ च शान्त्यतीतकलाभवनात्'।

निवृत्ति–प्रतिष्ठा-विद्या-शान्त्यतीतशान्तयः कलाः क्रमेण पृथिव्यग्नेजोमरुदाकाशेषु पर्यवस्थिताः। तदुक्तम्—'भूमौ निवृत्तिरुदिता पर्यासि प्रतिष्ठा विद्यानले मरुति शान्तिरतीतशान्तिः। व्योम्नीति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं तासां हि दूरतरमम्बपदं त्वदीयम्'। शान्तिं शान्तिनामककलाम् अतीता शान्त्यतीता तस्याः कलाया भवनम् आकाशम् तदभिव्याप्य—"आ शान्त्यतीतकलाभवनात्"।

३—आवसथेषु शाम्भवेषु स्वैरचारी।

शिवक्षेत्रेषु स्वैरचारस्य फलमाह सूतसंहितायां शिवमाहात्म्यखण्डे चिदम्बरमाहात्म्ये—"अन्यत्र पञ्चतपसो मुनेर्वाताशनादपि। श्रीमद्दक्षिणकैलाशे स्वैरचारी विशिष्यते।"

४—'अस्मदानन्दादनेकशतगुणं भवदानन्दम्'

आनन्दतारतम्यमधिकृत्य तैत्तिरीयोपनिषदि आनन्दवल्ल्यामेवं श्रूयते—"ये ते शतं देवानामानन्दाः स एक इन्द्रस्यानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ये ते शतमिन्द्रस्यानन्दाः स एको बृहस्पतेरानन्दः"।

५—भवज्जातीया एव विप्राः भूमिचरान् दिवमारो०।

(क) भूमिचरान् दिवमारोपयितुम्—यथा त्रिशङ्कुं विश्वामित्रः।

(ख) दिविचरान्भुवमारोपयितुम्—यथा नहुषमगस्त्यः।

(ग) सुरापगामास्वादयितुम्—यथा जह्नुः।

(घ) आचमितुं सप्तसागरान्—यथाऽगस्त्यः।

(ङ) विफलयितुं महास्त्राणि—यथा वसिष्ठः ।

(च) विष्टम्भयितुं विश्वम्भरम्—यथा सनत्कुमारः ।

६—यदेतद्वामाङ्गं घनजघनेति०

शम्भो; वामाङ्गं गौरी, सैव श्रीविष्णुः, यदाहुः—

"एकापि शक्तिः परमेश्वरस्य भिन्ना चतुर्धा विनियोगकाले ।
भोगे भवानी समरेषु दुर्गा कोपे तु कालीत्यवने तु विष्णुः ॥"

६—"एकं तद् द्विविभूति त्रिधाम निहितं चतुर्व्यूहम् ।
पञ्चायुधं प्रपद्ये षडगुणम्"

एकम् अद्वितीयम् । लीला नित्याख्ये द्वे विभूती । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तावस्थालक्षणानि सूर्यमण्डलक्षीराब्धिपरमपदलक्षणानि वा त्रीणि धामानि । वासुदेवसङ्कर्षण-प्रद्युम्न-निरुद्धाश्चत्वारो व्यूहाः । शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गनन्दकाः पञ्चायुधानि । ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांसि षडगुणाः ।

८—अन्तःकरणवासनाष्टकम्—

तदुक्तम्—'लोकपुत्रधनग्रामदारशास्त्रगृहेषु च ।
देहे च वासनां त्यक्त्वा सुखी भवति नान्यथा' ॥

९—तार्किककोलाहलोपरमे'

अनेन कविना तार्किककोलाहले स्वीयः प्रद्वेषः शीलार्णवे प्रकटीकृतः—

"अप्यन्तिकस्थैरविभावनीयः सूक्ष्मः प्रकृत्या मृदुसूक्तिजन्मा ।
कुतर्कविद्याव्यसनोपजातैः कोलाहलैर्न ध्वनिरेष वेद्यः ॥
वाचं कवीनामुपलालयन्यां भुंक्ते रसज्ञो युवतिं युवेव ।
तामेव भुङ्क्ते ननु तार्किकोऽपि प्राणान् हरन् भूत इव प्रविष्टः ॥"

१०—'स्यन्दनायितभूमण्डल'

त्रिपुरसंहारे स्यन्दनायितं रथवदाचरितं भूमण्डलं यस्य तत्संबोधने प्रोक्तं रूपम् । दृश्यताम्—

'रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥' (महिम्नः स्तोत्रे)

श्लोकानुक्रमणिका

	पृ०
अक्षोभ्यं भिषजां शतै	१४०
अक्ष्णोः पुष्पवतो	१८९
अगन्तव्यं तकैं	६०
अग्रे पश्चादुभयत	१५
अजनि शनैर्विशदं	१४२
अज्ञानादतिलालनादपि	१७०
अतिप्रबन्धादिषु	२८
अतीतत्रैगुण्यामशरण	१३३
अतो ब्रह्मेशविष्णूना	९२
अत्रान्तरे रणहतो	३७
अत्रान्तरे सुरगुरु	४७
अथ कथमप्यम र्त्यपतयः	६५
अथ तेन बिलाध्वना	११७
अथ दिवसावसान इव	१००
अथ पुनरपि यावदा	१६४
अथ मथनविषण्ण	१७१
अथ यावत्समाधिं तं	१३४
अथ शिथिलांसमांस	११९
अथ सुरगुरुमागतं	५३
अद्याहं परिपालकोऽस्मि	१४७
अनालोच्य निजां	८४
अनितरशरणत्वमा	८६
अन्तर्निगीर्णमपि	१४५
अन्तर्निगीर्णममृतं	१८६
अपि द्रष्टुमशक्यो यः	९८
अपि श्लक्ष्णीकुर्मो मणि	११६
अभिदधति ते मूर्धानं	६४
अभ्यग्रावतरिष्यदर्णव	१६५
अभ्यर्णस्थलभाजि तत्र	१०३
अभ्युद्यतौ मथनतः	१६०
अमुं यं वीक्षध्वे	१५३
अमृतं यदि भोक्तव्यं	९७
अयं कालो बुद्धे	८६
अर्चन्तस्तरुणेन्दुचूड	१९०
अब्याजकोपनिधिना	६२
अष्टत्रिंशदुपस्कृत	४
अस्ति स्वादयितुं	६
अहो ते शक्र धीमान्द्य	३७
आख्याय निखिलं वृत्त	९५
आजिघ्रन्निव	१५६
आनम्य किंचिदवमुच्य	१८४
आनीता वसुधातलात्	९
आनीलकेशमरविन्द	१८७
आपातालनिमग्नमूर्तिनि	१०३

	पृ०
आपातालात्फणधरपते	११८
आप्योऽपि रंहसा	१९७
आमन्त्रिताः स्मो न वयं	१७४
आयुर्येषाममीषां	७१
आराद्धा ननु यूयमेव	९६
आलम्ब्य दैन्य	१९
आलोच्य निजी	८४
आलोड्यमानः पुन	१५५
आवृत्यावर्तयन्तो	३९
आश्चर्यस्तिमित	१४४
इति कतिपये दैत्या	३२
इति परमुपदेशं	८२
इति स्तुतिभिरर्थ्याभि	१३३
इत्याकाशगिरा	३७
इमे वयमिदं तत्त्वं	६४
उड्डीय स्वयमुत्पतन्	१०५
उद्यन्निर्घातघोष	१२७
उद्वान्तसागरपयोभर	११३
उपासीना नानाविधि	८३
उल्लङ्घ्य निर्माल्य	१८७
ऊष्माणाववहद्विभा	१२९
एकं तद्द्विविभूति	७८
एकेन विधृतं राज्य	९७
ओमित्युमेति युवयो	१३८
कटाक्षैः कन्दर्पज्वर	१८७
कति कवयः कति	३
कति भग्ना गिरिवहने	१७५

	पृ०
कतीन्द्राः कति	७२
कत्यसृजं विश्वसृजः	८०
कपोलौ निमातुं किल	१६६
कस्यां श्रुतावधिगता	१६७
कालदण्डहतस्यास्य	२९
कालोऽत्यगादशुभ	४८
किमिव दयितं शंभोः	१६१
किं कर्म दुष्कृत	१५९
किं तन्त्रैः किं मन्त्रैः	१२१
किं तर्कैरतिवक्रैः	७७
किं न निगृह्णन्ति	५२
के देवाः के दनुजाः	८१
क्रुध्यद्दानवयोध	२२
क्व मन्दरो महागिरिः	१७४
क्षन्तारं सकलागसां	७७
क्षमेथाः श्रीकण्ठ	१८९
क्षितिधरपरिपात	१२०
क्षुद्रैः किं करणीय	११६
खर्वोन्नतासुरस्कन्ध	११९
गच्छन्नेव ततः स	७१
गजमेकमश्वमेकं	१६४
गामश्वं करिणं मणिं	१७२
गायन्ति चाटु	९
गौरश्वः करिणः स्त्रियो	८५
घोषे क्वापि पुरा	६९
चकम्पे हन्तायं गिरि	१०१

	पृ०
चकितपलायित	३८
चन्द्रं चन्द्रिकयेव	१६९
चरन्त्याः स्वच्छन्दं	१८५
चेतो यद्भवतश्चिरं	४८
चौर्येण प्रणयेन	४
छन्दो यथा यथा शौरेः	७३
जय जय जगदम्ब	७९
जानाम्यहमुमाकान्तं	८२
जानाम्येव यदाह	८९
जानीषे जगदेव तावं	८८
जानीषे ननु नाम	१६१
ततः शतमखादयो	४५
तत्तस्य कीर्तिदं	८३
तामित्थं स्मरतश्चिरं	१३२
तावद्धावत्कन्दुक	१८१
तिरोभूते सद्य	१८८
तुष्टूषतोऽस्य बहुधा	७८
तेजसाप्याययिष्यामि	१२१
त्वत्प्रसूतास्त्वया	१५२
त्वमसि परमं ब्रह्म	१७२
त्वमसि शतक्रतु	९७
त्वं नो राज्यं त्वं बलं	१८२
ददति च वरं दत्त्वा	९२
दध्युर्यावदुपायं ते	७०
दनुजभुजविकृष्ट	३२
दिव्या दुन्दुभयो विनेदु	१६९
दिव्यैः पञ्चभिरायुधैः	१०८
दिशि दिशि विकिरन्ती	१८०
दिष्ट्या विपेण भग्नाः	१४६
दुःखानां क्षतिरित्यबोध	८
दूरादलक्ष्यत सुरै	११९
दृष्ट्वा कौस्तुभमप्सरो	१
देयं यस्य सदेवमर्त्य	९०
देवद्विषश्चिरतरं	४३
देवानामपि दुर्लभं	१८९
देवानामपि दैवतं	३
दोर्भिदुर्भरशैल	१७६
धावद्दैवतयोध	३५
नन्तव्याः कवयः	३
नवकुवलयदामश्यामल	१०९
न संवर्तः प्राप्तो	१२९
नासौ वह्निर्न हि खलु	१३०
निरातङ्क स्वामिन्	१८७
निर्मग्नमन्दरमणिद्युति	११०
निर्मन्थश्लथसंधि	१२५
निर्मर्यादमदज्वर	१४५
निर्वर्त्यमाना यत्नेन	९३
निर्वासिता निजपदात्	१८२
निःश्वसति भोगिभर्तरि	१२५
निष्ठामाश्रमधर्मपालन	८७
निष्पतद्द्रुमभुत्पत	१०२
निःसंख्यस्फुरदुत्तरो	८५
निःसंख्यस्फुरितस्फुलिङ्ग	१२९
नैर्मल्यादुपसंभृताः	१६२

	पृ०
पथि गिरिकिराटस्मात्	११०
पथि ध्वजं यं गरुड	६६
पद्मे निवेश्य परिगृह्य	१६८
परायणं नः परमं	८३
परिचलितदुग्ध	१५६
परिम्लाना दीना	६१
पर्यासेन्दुशतद्युतिं	१४२
पश्य ज्ञानक्रियेच्छा	७३
पश्यन् पदाग्र	१८
षादाङ्गुष्ठनखाग्र	७३
पायं पायं पवन	११९
पाषाणान् सितनील	१४६
पुत्रा यूयं भुवन	१५२
पुत्रावुभौ प्रथमजौ	८७
प्रणमन्तः स्तुवन्तश्च	१२२
प्रत्यासन्नसखीवितीर्ण	१८४
प्रत्युद्यत्कमठकठोर	११२
प्रथमसमुद्गता	१५९
प्रसजति महोत्सवे	८
प्रह्लादः प्रथमो गुरु	९१
प्राकारगोपुरविहार	५७
प्रागेव पातालजुषां	११३
प्रेक्षावन्तो दिशि दिशि	६३
ब्रह्मर्षयोऽपि दनुजेन्द्र	४३
भग्नरथा भग्नाश्वा	७६
भग्नो यस्य दशाननः	१०६
भवानिति भवानीति	१५३

	पृ०
भव्यैरष्टभिरान्तरैः	१३८
भीमं भीमेन	२४
भुञ्जीथा न हलाहलं	१५१
भूतग्राममिमं	६१
भ्रामं भ्रामं करकिसलयं	१८०
मज्जति मज्जति शैले	१११
मज्जन्मन्दरशैलकन्दर	१११
मञ्जीरैर्नटनार्भटी	१५
मनोरथानामपि यो	८१
मन्दस्पन्दरसाल	१७७
मन्दानिलव्यतिकर	९
मन्दिरं क्षालयन्तस्ते	१००
महद्भिर्ग्रथनीमः स्रज	११६
मात्रार्पितं गरल	१८५
मूले वालधिमग्रतः	११५
मूल्यं तत्किल	६
म्लायन्त्यां वैजयन्त्या	१३१
यच्छैलेषु यदम्बुराशिषु	१४५
यज्जन्मस्थेमभङ्ग	१३२
यत्प्रत्यस्तमितप्रपञ्च	६२
यदादिष्टं पाल्यं	१४१
यदियज्जीवितमेतै	६३
यदेतद्वामाङ्गं	६५
यद्घोरघोरतररूप	१३८
यद्दृष्टं चन्द्रसूर्याभ्यां	१८६
यद्भग्नेषु भवत्सु	१७५
यद्यप्यद्य गतश्रियः	९३

	पृ०
यन्नैश्चिन्त्यं यदौर्जित्यं	९२
यं त्वं चिन्तयसे नान्यं	७२
यल्लक्ष्मीदयितोऽस्मि	१३३
यश्चेष्टतेऽवकाशेषु	३२
यः शक्यो न दृशापि	९१
यस्तल्पेष्वपि कोमलेषु	११५
यस्यैवं भूर्भुवस्स्वर्भुवन	९०
यः संरम्भः कृति	२
या त्वेषा तुलसीति	१७०
यावज्ज्यावलयावलीढ	२५
यावत्सान्त्वयितुं	१८
यावद्यावत्सागरं ते	१५८
युगविगमोन्मिषद्विषम	९९
येनादिश्यत वेधसा	८८
येयं त्रैलोक्यराज्यश्री	१९
लब्धुं तत्पदमूर्जितं	१२
लभ्यन्ते श्रुतिपाठ	११
लीढालीढपुराण	२
वक्त्राक्षिपाणिचरणा	१६८
वत्सेति प्रवहत्सुधा	७९
वदति मधुरमित्थं	१७३
वन्दामहे कमलनाभ	१८६
वन्दे वाञ्छितलाभाय	१
वल्मीकेष्वहयो	३५
वल्लभोऽसि सरस्वत्या	७१
वाग्देवीवदनारविन्द	५४
वाचं व्याकुरुते	१९१
वाय्वर्कशक्र	३२
विद्राणे वरुणे	३८
विद्वांसः प्रथमे	४३
विधातुं कर्माणि	११
विनिघ्नन्तः पादैरथ	१००
विरहासहेव सततं	१६६
विहारोऽप्येतस्या	१६८
विंशत्यापि भुजैः पुरा	९८
वीरभद्र इव क्रुद्धे	१८
वैराजशाकर	१३७
व्यत्यस्तकौस्तुभमव	१०८
शक्ता भवेम यदि	१७५
शस्त्राशस्त्रिक्षत	३९
शाणोल्लीढशरन्मृगाङ्क	१३७
शिवं ध्यायस्यन्तः	९९
शिवा घोरा चेति	१३९
शिष्टं यदत्र दुष्टं वा	८६
श्लथे नीवीबन्धे	१०
सकलभुवनैक	२
सनत्कुमारेण समागमे	५४
स निर्जिहान एव	१२८
सर्वातङ्कविशङ्कशंकर	१४१
संधानं कुरुतासुरैः	८१
संधास्यामः शमधनगिरा	९४
संगच्छते निभृत	३१
संरुन्धन्ति द्विषन्तो	२२
संवेष्टयन्नथ स	१२३

	पृ०
साधु वत्स जगन्नाथ	१३४
साध्वी गौः सुरभि	१५८
सान्निध्यमात्रजो यस्य	१३८
साफल्यं तपसामिदं	९६
सायोन्मिषत्कुवलयोदर	१८०
सिञ्चन्तीं परमामृतानि	१३१
सुरानुरकरोदर	१०९
सौहार्दं परमेयुषा	१६३
स्खलदचलसमुद्रवल्लोल	१०९
स्तुवन्तो दिव्याभिः	१५४
स्तोकस्तोकप्रचल	१०१

	पृ
स्थानं विश्वसृजोऽपि	७
स्थानाच्च्यावयितुं	८१
स्थीयतामग्रजैः स्वर्गे	९३
स्नातुं वाञ्छति	१५८
स्रष्टासि तात	८०
स्वच्छन्दप्रचलत्सुधा	१८१
स्वप्नोन्मादावपि हि	८०
स्वाद्या यत्र सुधैव	६१
स्वाध्यायाध्ययनाहतेन	५७
स्वेनैव भ्रमयति	२६१

015.7K37,1
N64;1

RASHTRIYA SANSKRIT VIDYAPEETHA
LIBRARY, TIRUPATI.
(DEEMED UNIVERSITY)
Acc. No. 38856
Cl. No.

VERIFIED-2001

Acc. No. 38856
015,7K37,1
Call No. N64;1

Author R.C.Mishra

Title Nilakanta Vijaya